ISSN : 2321-3922
जनवरी– 2018

BIHHIN05394
वर्ष – 3 अंक–11

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

www.susambhavya.com

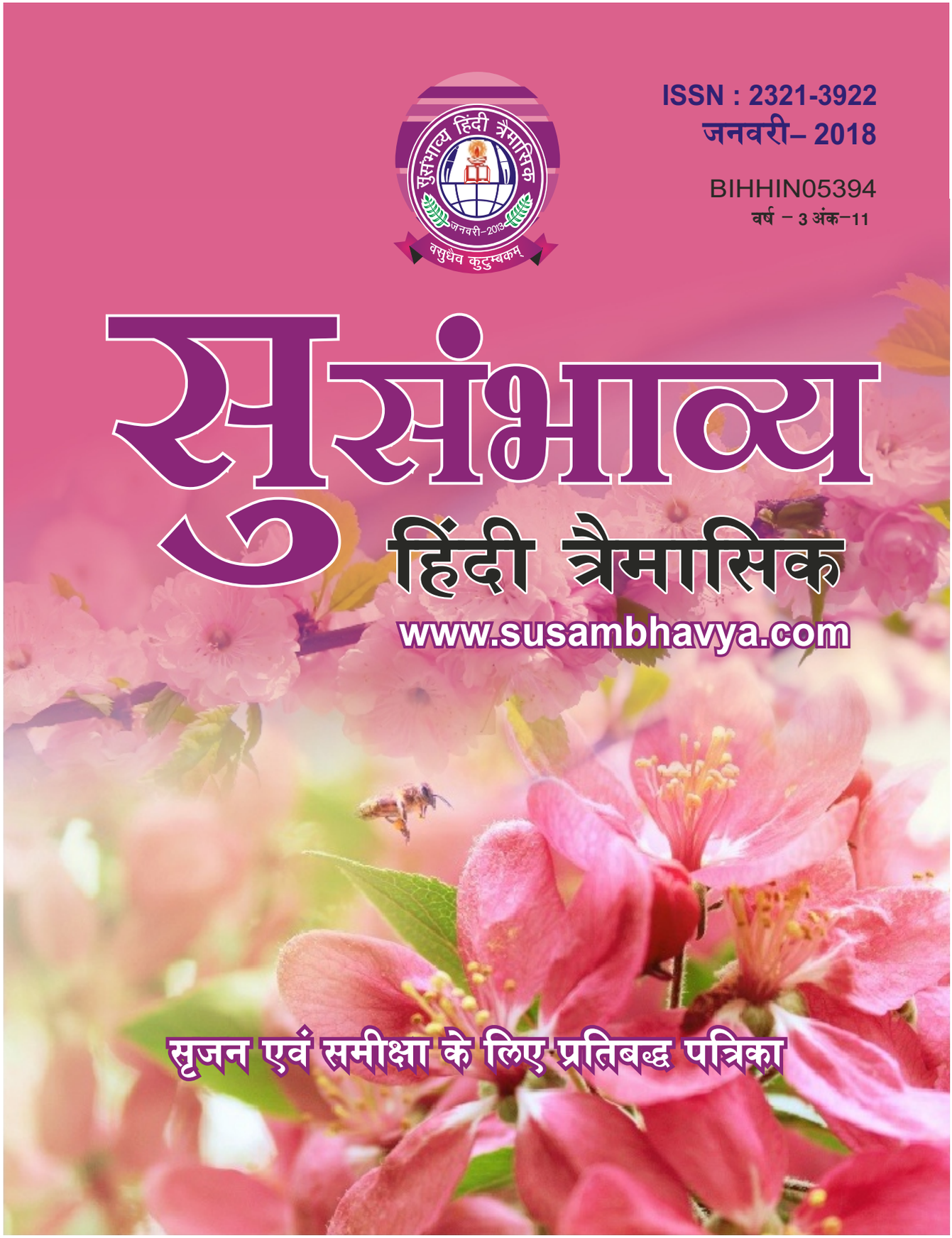

सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका

सुसंभाव्य

(सृजन एवं समीक्षा के लिए प्रतिबद्ध पत्रिका)

जनवरी-मार्च-2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष-3, अंक-11

संस्थापक-सह-प्रधान संपादक
श्री दयानन्द जायसवाल

संयोजक
डॉ. विजय कुमार सिंह

संरक्षक
श्रीमती प्रतिभा सिन्हा

सम्पादक मंडल
डॉ. गिरिजा शंकर मोदी
डॉ. अश्विनी

संस्थापक सदस्य
श्रीमती छाया पाण्डेय
श्रीमती संयुक्ता गुप्ता
डॉ. राम किशोर शर्मा

स्वत्वाधिकारी व प्रकाशक : श्री दयानन्द जायसवाल
संपादन, संचालन, प्रबंधन एवं समस्त
व्यवस्था अवैतनिक एवं अव्यावसायिक ।
रचनाओं के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी।
समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र
भागलपुर।

सम्पर्क : श्री दयानन्द जायसवाल
मौर्या जुबिली प्लेस, जीरोमाईल
भागलपुर-813210 (बिहार)
मो० : 09931240303, 8210079809
वेबसाईट : www.susambhavya.com
ई-मेल : dnj.sambhavya@gmail.com

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394
वर्ष–3, अंक–11

सुसंभाव्य

हिंदी त्रैमासिक

वेबसाईट : www.susambhavya.com

आमंत्रण

'सुसंभाव्य' अंतराष्ट्रीय स्तर की पूर्णतः अमूल्य हिंदी त्रैमासिक है। वर्तमान समय में विश्व के 39 देशों के पाठक सहित भारत के 92 शहरों के सहृदयों का स्नेह इस पत्रिका को प्राप्त है।

इसका ई–संस्करण विश्वग्राम के सभी सुधी पाठकों एवं स्नेहीजन के लिए www.susambhavya.com पर सहजता के साथ सुलभ है। मुद्रित संस्करण यथासंभव रचनाकारों, हिंदी के लिए समर्पित संस्था और संस्थानों को उपलब्ध कराया जाता है।

श्रेष्ठ चिंतन को सहज–सरल अभिव्यक्ति के माध्यम से जब कोई व्यक्ति सार्वभौम होकर जन–गण में व्याप्त हो जाता है तब वह व्यक्ति से व्यक्तित्व और व्यक्तित्व से संस्थान बन जाता है। ऐसे महान विभूतियों से आग्रह है कि अप्रैल– 2018 अंक में प्रकाशन हेतु अपनी मौलिक, नवीनतम एवं प्रतिनिधि रनचाएं अपने पत्राचार–पता के साथ मेल, कोरियर या डाक से सम्पर्क पते पर भेजें।

आइये सब मिलकर सामाजिक सरोकार से संबंधित सार्वभौम, सार्वजनीन एवं श्रेष्ठ साहित्य के माध्यम से धर्म–मज़हब, जाति, लिंग, वर्ण, वर्ग और नस्ल–भेद की दीवार हँटा दें और सिर्फ इंसान बनें तथा उत्तम ज्ञान एवं श्रेष्ठ आचरण से स्वयं का परिष्कार कर विश्वग्राम का सौभाग्य बनें।

रचनाएं भेजें :–
E-mail : dnj.sambhavya@gmail.com

संपादक
सुसंभाव्य हिन्दी त्रैमासिक

सुसंभाव्य

जनवरी–मार्च 2018

ISSN - 2321-3922
TITLE CODE : BIHHIN05394

अनुक्रम

पुरोवाक्	संस्थापक की कलम से	दयानन्द जायसवाल	5
विशिष्ट शोध	मिस्ट्री दाई नेम इज़ वूमेन	सुभाष चन्द्र झा	6
कविता	नदी में सारंगी	राजेन्द्र नागदेव	25
आलेख	साहित्य के सरोकारों पर उठते सवाल	डॉ. सुवंश ठाकुर 'अकेला'	26
स्मृति	शून्य	ज्ञानचंद मर्मज्ञ	28
आलेख	आधुनिक कथा साहित्य और जीवन की वास्तविकता	डॉ. सुनील कुमार परीट,	29
आलेख	अनुवाद के आईने में भारतीय भाषा और संस्कृति की पहचान	डॉ. सजित खांडेकर	30
कविता	मन / अस्तित्व की पहचान	चंचल वैद	32
कविता	चाँद की रोटी	सूर्य प्रकाश मिश्र	32
समीक्षा	स्मृति के वातायन : संस्मरणों की सारस्वत स्रोतस्विनी	आमोद कुमार मिश्र,	33
लघुकथा	पीड़िता / तीसरा ठहाका	राजेन्द्र राकेश जनवृत	35
समीक्षा	गोदानः दलित–विमर्श की कसौटी पर	भगवती प्रसाद द्विवेदी	36
समीक्षा	प्रेमचन्द साहित्य की वर्तमान प्रासंगिकता	नरेन्द्र किशोर सिन्हा	38
समीक्षा	अचल भारती की उद्वेलन क्षमता एवं शिल्प प्रधान लघुकथाएं	डॉ. राधा सिंह,	39
समीक्षा	मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा	डॉ. डी.एन. प्रसाद	40
जीवनी साहित्य	जनउत्थानवादी राजा सयाजीराव गायकवाड	डॉ. अनंत वडघणे	43
लघुकथा	घोड़ा कैसे गुलाम बना	अखिलेशचन्द्र श्रीवास्तव	44
कहानी	पगडंडियाँ	नीरजा हेमेन्द्र	45
लघुकथा	सैम्पल पुस्तकें	उर्मिला प्रसाद	47
कहानी	तोहफा	रामकिशोर	48
गज़ल	जब उन्हें महसूसता हूँ	विज्ञानव्रत	52
कहानी	मिलन की एक आश	वीणा सिंह	53
लघुकथा	सीमा	सविता मिश्रा 'अक्षजा'	54
कविता	अंजाम न जाने क्या होगा, जिंदगी, इरादा	रुचि भल्ला	55
कविता	कोरे कागजों संग, दिल की मरम्मत	अनिला राखेचा	55
कविता	ईमानदारी	कृष्णमोहन सिन्हा 'किसलय'	56
कविता	आस्था लगी है कंपने	मधु प्रसाद,	56
गज़ल	जोश में,	अंजनी कुमार शर्मा	56
गज़ल	जिगर के जख़्म	बच्चू चौधरी अकेला	56

इन्किलाब के दिन

इस देश का आम आदमी
अब चुप नहीं रहेगा
अपनी दुर्दशा के
कारकों के खिलाफ
अब वह उठा लेगा हथियार
उनके खिलाफ
जो छीनता रहा है
अधिकार कानून और न्याय
और दिखाता रहा है ठेंगा
अपने बहशीपन के हद में
और समझा नहीं है कि
यह देश उनका भी है
यहाँ का सब कुछ उनका भी है
जीने के सारे अधिकारों पर
उनके भी अंगूठे के निशान हैं
दूसरे के श्रम पसीने और बहे रक्त पर
ऐयासी के दिन
और कब तक चलेंगे
मलबों में दबे आहों के दिन
अब इन्किलाब के दिन होंगे
आदमी अब चुप नहीं रहेगा
उनकी दु:ख भरी आवाज
अब गूंजेगी
अस्त होते सूर्य के
लाल होते क्षितिज पर

गिरिजा शंकर मोदी

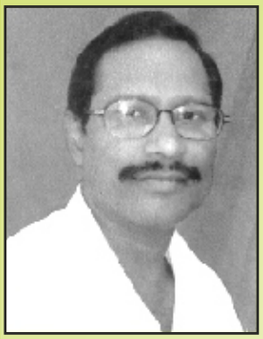

पुरोवाक्

दयानन्द जायसवाल

संस्थापक की कलम से

आज बाजारवादी विश्व व्यवस्था के प्रभाव में मानवीय सम्बन्ध तेजी से बदल रहे हैं। निराशा, कुंठा और पराजय का भाव प्रवल हो रहा है। अस्तित्व के लिए मनुष्य का परिस्थितियों से संघर्ष क्रमश: कठिनतर होता जा रहा है। ऐसे कठिन समय में एक लेखक ही अपने समय और समाज के बारे में सोचता है। यही अनुभूति जनपक्षधर पाठक की चिन्ता के केन्द्र लेखक होता है। उनका साहित्य युग की विडम्बना और बदलाव की चेतना को साहस और ईमानदारी के साथ व्यक्त करता है। यह यदि संघर्ष की प्रेरणा देता है, तो जीवन का सार्थक दिशा भी। इसका रचनात्मक फलक व्यापक होता है। इसमें इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाज, संस्कृति जीवन के सभी पक्ष सामिल होते हैं।

'सुसंभाव्य' आज कलावाद से बचते हुए अपनी चिन्ता को समाज की व्यापक हित चिन्ता से जोड़ कर सामुहिक रूप धारण कर ली है। इसके रचनाकारों की महत्वपूर्ण भूमिका यह है कि ये पाठक को उलझाते नहीं। इनकी भाषा में ताजगी, रवानी तथा विचारों में स्पष्टता है। संवेदना अपने समय के यथार्थ को वहन करने में समर्थ है। मानवीय संबंधों के प्रति गहरी आस्था, स्त्रियों के प्रति सम्मान और प्रेम का भाव तथा समाज दारूण दशा और वस्तुपरक दृष्टिकोण भी है।

साहित्य को प्राय: आदर्श की भावना से देखा जाता है। इसी वजह से इसको साधना कहा जाता है। दुनियावी कार्य व्यापार के लिए आन्य पेशों की तरह साहित्य महज एक पेशा नहीं है। यह समाज को सच्चाई का दर्शन कराता है, ताकि लोग बेहतर भविष्य की ओर आगे बढ़ सके। यह हमारे भीतर श्रेष्ठ मानवीय मूल्यों की लौ को उकसाता रहता है, ताकि हम पशुवत हो कर न रह जाएं, ऐसी कितनी ही बातों की अपेक्षा साहित्यकार से की जाती है। साहित्यकार का सही मतलब ही है कि उनकी कथनी और करनी से उच्च आदर्श प्रस्तुत हो।

आज जहाँ मनुष्य के अमानवीय करण की गति में तीव्रता आई है, वैचारिक दृष्टि से समाजवाद का स्वप्न ध्वस्त हुआ है, यांत्रिक सभ्यता का कहर विद्यमान है, मानवता को खूंटियों पर टांग देने का प्रयास हो रहा है, ऐसे में साहित्यकार को चुनौती है कि वह सामाजिक–सांस्कृतिक परिदृश्य का बहुआयामी विश्लेषण करें, ताकि समाज के जिम्मेदार नागरिकों में जन–जागरूकता और सतर्कता का प्रयास हो और वे अपनी जिम्मेदारी को बखूबी समझ सकें। इसलिए की समाज के नागरिकों में उत्तरदायित्व की भावनात्मक अभिव्यक्ति और शक्ति को उजागर करने तथा उसके क्रियान्वयन हेतु साहित्यकार एक प्रतिबिम्ब के रूप में होते हैं।

राजनीतिक चेतना के प्रसार और मिडिया–जनसंचार में क्रांति के बाबजूद हमारी आँखे उस यथार्थ को देख नहीं पाती, जिनका हमारी सामाजिक–मानसिक बुनावट से कोई साम्य नहीं होता। हमारे साहित्यकार में इससे भिन्न प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं, जिसमें निश्छलता है, सादगी है, परपीड़ा की अनुभूति है, व्यापक मानवीय सरोकार है। उसमें व्यावसायिकता नहीं त्याग का प्रखर भाव है।

इस अंक पर दृष्टिपात करें, तो हमें मौजुदा समय और समाज के समक्ष खड़ी बहुत सी चुनौतियों का एहसास होता है । ये चुनौतियाँ चाहे समाज की हो अथवा साहित्य संस्कृति की। रूचि के अनुरूप मानव भिन्न–भिन्न परिवेशों में रहने लगा है, जिसका परिणाम मानव जीवन के विविध विधाओं में चित्रित है। साहित्य जो कि मानव जीवन की व्याख्या प्रस्तुत करता है, उससे कैसे वंचित रह सकता है। मावनता एक लोकतांत्रिक और नैतिक जीवन दृष्टि है।

संवेदना ही एक ऐसी चीज है जो साहित्य और समाज को जोड़ती है। संवेदनहीन साहित्य समाज को कभी प्रभावित नहीं कर सकता । वह मात्र मनोरंजन कर सकता है। साहित्य मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। मनुष्य न तो समाज से अलग रह सकता है और न तो साहित्य से । साहित्य के बिना राष्ट्र की सभ्यता और संस्कृति निर्जीव है। साहित्यकार की दृष्टि में साहित्य ही अपने समाज की अस्मिता की पहचान होता है। यह जीवन के मूल्यों को प्रतिष्ठित करता है।

हमारे साहित्यकार विश्वव्यापी दृष्टिकोण को अपनाकर ही प्रगतिशील साहित्य का सृजन करते हैं। मैं इन्हें और अपने पाठकों को नववर्ष की हार्दिक शुभकानाएँ देता हूँ और इस अंक को सादर समर्पित करता हूँ।

विशिष्ट शोधपूर्ण आलेख

मिस्ट्री दाई नेम इज़ वूमेन

सुभाष चन्द्र झा
(बिहार प्रशासनिक सेवा)
संयुक्त आयुक्त–सह–सचिव,
क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकार,
भागलपुर प्रमण्डल, भागलपुर–812002
9431208428 7546022022
subhasjha58@gmail.com

सम्पूर्णतः रहस्यमयी.आकर्षणमयी.लावण्यमयी 'नारी' सदैव सर्वप्रकारेण पुरूष के लिए सर्वथा अन्वेषण, तलाश, सतत् उलझन, चिंतन, मनन, समर्पण और घोर अध्ययन का जिज्ञासापरक, शोधपूर्ण, गूढ़, पेंचीदा, प्रेरणास्पद, उत्प्रेरक सरस विषय रही है और उसके तन–मन–जीवन की विशिष्ट महीन बुनावटों, कोमल प्रलोभक स्त्रैण.विशेषताओं का उद्घाटन सभ्यता.संस्कृति के विकास के समानान्तर निरन्तर चलनेवाली संर्घषजन्य अथक श्रमशील प्रक्रिया रही है। चूंकि स्त्री तन. मन प्रारंभ से ही मनीषियों, चिन्तकों, कलाकारों एवं कवियों के लिए '**प्रहेलिका**' बना रहा है, इसलिए मानव.मन की आदिम प्रवृत्ति और सर्वाधिक शक्तिशाली प्रेरणा, कामवासना का मूलाधार भी स्त्री ही है। संसार के लिखित साहित्य का तीन.चौथाई से अधिक स्त्री.केन्द्रित है और सारे ताने.बाने रसमयी स्त्री के इर्द.गिर्द ही बुने जाते रहे हैं। भौतिक जीव से शुद्ध एवं निःस्वार्थ प्रेम के कारण ही स्त्री का सर्वोच्च स्थान तथा महत्व बना रहा, क्योंकि भौतिक साधनों में स्त्री को भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी। नारी की मनोवैज्ञानिक स्थिति का विरल अनुसंधान महज़ जिज्ञासा का परिणाम नहीं, बल्कि मनोविज्ञान के खुले उन्मुक्त द्वार से नारी के उस अन्तःपुर में 'प्रवेश' की भरसक चेष्टा–मात्र है, जिसे अब तक प्रायः गोपन, रहस्यमय, वर्ज़ित, निषिद्ध माना जाता रहा है और दार्शनिकों, शोधार्थियों, तत्वचिंतकों, मीमांसकों ने जिस 'त्रिया–चरित्रम्' को बेबूझ, अगम, अपार, अगाध, अथाह कह कर अपने उत्तरदायित्वों की प्राचीन काल से हीं इतिश्री कर ली ।

स्त्री–मानसिकता

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय स्त्री की मानसिकता को समझना सरल नहीं । मॉडर्न स्त्रियों पर अनेक पश्चिमी प्रभाव हैं, सुदूर अतीत की परम्पराएं हैं, अपनी विवशताएं और अपनी मर्यादाएं हैं। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण, दर्शन तथा पाश्चात्य धर्म.ग्रंथों से स्वतः प्रमाणित है कि सृष्टि के मूल में नारी का अस्तित्व ही है। नारी नहीं, तो सृष्टि नहीं! 'प्रहेलिका–से–अनावृत्ता तक' नारी की संवेदना–चेतना बदलते सन्दर्भों में करवटें लेती रही हैं। यौन.भावना और यौन.जीवन की संगति.विसंगति स्त्री.मनोविकारों के मूल में है। विवाहपूर्व और विवाहेतर यौन.सम्बन्ध के अलावा सामान्य और असामान्य वैवाहिक संबंध की यौनानुभूति से भी उनकी मनोग्रंथियों का, मनोविकारों का जन्म होता है।

'वूमन' ए नेसेसरी एविल : पुरूष की अनिवार्य आवश्यकता

पुराणकथाकौमुदी (पृ० 172) के अनुसार : स्त्री क्रमशः पुरूष के लिए अनिवार्यता बन गई, और स्त्री के बिना पुरूष के चरित्र का स्खलन भी पुराणों में दिखाया गया है। पत्नी ही धर है, जिस घर में पत्नी नहीं, वह घर नहीं है... धर्म, अर्थ और काम में, देश में और परदेश में, सुख में, दुःख में, हर बात में पत्नी ही साथी है। समय के साथ ही स्त्री के रूप बदलते गये, उसकी परिभाषा बदलती गई, उसका स्थान बदलता गया, उसके मूल्य बदलते गये, और वह तरह.तरह के संबोधनों से संबोधित होने लगी। जैन धर्मग्रंथों में "स्त्रियाँ वाणी में अमृत रखती हैं, लेकिन हृदय में विष भरे हुए हैं। वे स्वभाव से ही कुटिल हैं।" नारी को माया, अस्थिर, अपकारी, असत्य भाषण में चतुरा तथा कुल में कलंक लगानेवाली कहा गया ।।–'सुभाषितरत्नसन्दोह' (अमितगति आचार्य, श्लो० 116) कालिदास के हृष्दय में नारी के प्रति जो सम्मान रहा, बाद में उसी रूप में प्रतिष्ठित नहीं रह सका। क्रमशः नारी भोग्या या मनोरंजन की वस्तु बनकर रह गई– "गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ करूणाविमुखेन मृत्युना हरतां त्वां वद किं न मे हृष्तम्।।" (रघुवंश महाकाव्य)। "श्रृंगार.प्रसंग" में स्त्री को ब्रह्मा की अनुपम सृष्टि कहा गया और "वैराग्य .प्रसंग" में उसे पुरूष के लिए वर्जित वस्तुओं की सूची में रखा गया। वैदिक युग में स्त्री भोग्या भी रही और पूज्या भी, प्रेयसी भी रही और प्रेरिका भी, सहयोगिनी भी रही और सहचारिणी भी। वैदिक युग की नारी पूरी नारी थी, आज की तरह अधूरी नारी नहीं। स्त्री के प्रति विचारों में यह आन्दोलन पुराण, सूत्रग्रन्थ और महाकाव्यों में स्पष्ट परिलक्षित है। जबकि स्मृति ग्रंथों में भी स्त्री का पद ऊँचा है। जीवन के मुख्य संस्कारों को सम्पन्न करानेवाली वही है– "गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तो जातकर्म च। नाम क्रिया निष्क्रमणेअननाशनं वदनक्रिया।।" (वेदव्यासस्मृति 13,15) मध्यकालीन भक्त कवियों ने स्त्री को पुरूष के सिद्धि दृमार्ग की बाधा ही माना। मनुष्य के पतन के लिए वही ज़िम्मेदार रहीं। रीति काल में कवियों ने उसके साढ़े तीन हाथ के शरीर में तीनों लोकों के दर्शन किए । हज़ारों.हज़ार पद उसकी आँख, नितम्ब, केश, चाल, वक्ष पर रचे गये। इस प्रकार से वैदिककालीन नारी जो अपने सम्मानपूर्ण पद पर पदस्थापित हो, पुरूष की सहयोगिनी और प्रेरणा की स्त्रोत थी, जिसको सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्त थी और जिसकी वैयक्तिकता पुरूषों द्वारा मान्य थी, आगे चलकर भक्तिकाल तक आते–आते वर्ण–व्यवस्था, नियोग–पद्धति, अशिक्षा, सती–प्रथा, बाधित वैधव्य तथा पर्दा–प्रथा आदि कुरीतियों के विस्तार में अपनी स्थिति को बनाए रखने में असमर्थ हो गई। बीसवीं शताब्दी में स्त्री ने गौरव का अनुभव किया कि देश के विकास में वह भी पुरूषों की तरह ही योगदान कर सकती है। पहली बार उसे लगा कि अबतक पुरूषों ने षड्यन्त्रपूर्वक उसे प्राप्तव्य से वंचित रखा। इस चेतना ने वह शक्ति दी कि स्त्री–वर्ग आन्दोलित हो गया। नारी नई दिशाओं में नई राहों पर चली। उसका सोया हुआ आत्मविश्वास और आत्मसम्मान जगा। वह स्वावलम्बन, स्वार्जन और स्वविकास की ओर उन्मुख हुई। अथर्ववेद का कथन है कि जिस प्रकार प्रकृति जगत् की कर्त्री है, उसी प्रकार पत्नी घर की निर्मात्री है। वह सरस्वती है। वह विद्या तथा ललित कला की प्रतिमा है। वह विष्णुप्रिया है। जिस प्रकार विष्णु संसार के प्रत्येक पदार्थ में लीन है, उसी प्रकार वह भी घर की वस्तुओं से ओत–प्रोत है–"प्रतिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेद सरस्वति"(अथर्ववेद 14/2/15) । ऋग्वेद में स्पष्ट कहा गया है 'हे

पति! वह कन्या तेरे कुल का पालन करने वाली है, उसकी रक्षा करने वाली है। उसके बिना घर की प्रतिष्ठा असम्भव है। उसी ने गृहस्थाश्रम के भार को ग्रहण कर रखा है।' 'स्त्री–पुरूष के सम्पर्क के बिना यह स्थूल जगत् दृष्टिगोचर नहीं होता। दोनों में परस्पर सौहार्द एवं प्रेम है। मानव–जीवन तभी सुख का अनुभव करता है, जबकि उसे ठोस सहारा देने वाला हो। वह थोड़ी देर अपना भार किसी दूसरे पर विश्वासपूर्वक रख सके। श्रान्त दक्ष–हस्त वामहस्त की सहायता प्राप्त कर कितनी शान्ति का अनुभव करता है ! जब विपत्तियों एवं नानाविध कष्टों के जंज़ाल में नर अटक जाता है और बहुत प्रयास करने पर भी वहाँ से छुटकारा प्राप्त नहीं कर सकता; तब यह नारी ही उसे इस जंज़ाल से मुक्त करती है। दो क्षण में ही वह पुरूष की नस–नस में ताज़गी भर देती है। शकट के दो चक्रों की भांति दोनों एक–दूसरे के लिए अनिवार्य हैं।' 'वूमन' नेसेसरी एविल, फ़िर भी पुरूष के लिए अनिवार्य आवश्यकता।

स्त्री–संतानोत्पति

वृहदारण्यकोपनिषद् के संतानोत्पत्ति–विधान अथवा पुत्रमंथन–कर्म–खंड में पहले रेतस् या शुक्र और फिर शुक्रधारी स्त्री का वर्णन है: 'इस सभी भूतों का रस पृथिवी है, पृथिवी का रस जल है, जल का रस औषधियाँ हैं, औषधियों का रस पुष्प है, पुष्पों का रस फल है, फलों का रस (आधार) पुरूष है तथा पुरूष का रस (सार) शुक्र है– "एषां के भूतानां पृथिवी रसः पृथिव्या आपोऽपामोषधय ओषधीनां पुष्पाणि पुष्पाणां फलानि फलानां पुरूषः पुरूषस्य रेतः।" सुप्रसिद्ध प्रजापति ने विचार किया कि मैं इस वीर्य की स्थापना के लिए किसी योग्य प्रतिष्ठा (आधार–भूमि) का निर्माण करूँ, अतः उन्होंने स्त्री की सृष्टि की। उसकी सृष्टि करके उन्होंने उसके अधोभाग की उपासना की, अतः स्त्री का अधोभाग सेव्य है। प्रजापति ने उत्कृष्ट गतिशील प्रस्तरखंड सदृश पुरूष–जननेन्द्रिय की सृष्टि कर उसे स्त्री की ओर प्रेरित किया। इसीलिए पुरूष बिना स्त्री के अधूरा है। स्त्री–पुरूष–संबंध ही लौकिक सृष्टि का मूल है। अकेला पुरूष सृष्टि नहीं कर सकता। छान्दोग्योपनिषद् में स्त्री की तुलना अग्नि से की गई है, और कहा गया है कि गर्भ–धारण कर सृष्टि भी करती है, "हे गौतम! स्त्री ही अग्नि है। उसका उपस्थ ही समिध् है, पुरूष जो उपमान्त्रण करता है वह धूम है, योनि ज़्वाला है तथा जो भीतर की ओर करता है वह अँगारे हैं, और उससे जो सुख मिलता है वह विस्फुलिंग है–"योष वाव गौतमानिग्नस्तथ्या उपस्थ एव समिद्युदुपमन्त्रयते स धूमो योनिरर्चि–यंदन्तः करोति तेड अंगारा अभिनन्दा विस्फुलिंग।" 'उस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं। उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है– "तस्मिन्नेतस्मिन्नग्नौ देवा रेतो जुह्नति तस्या आहुतेर्गर्भः सम्भव (5/8/2)।" स्पष्ट है कि बिना स्त्री के पुरूष प्रजनन–क्रिया सम्पन्न कर ही नहीं सकता। जिस योनि की पवित्रता देवताओं ने स्वीकार की है, उस योनि की निंदा की ही नहीं जा सकती। देवतागण भी स्त्री के गर्भ में आते रहे हैं, और स्त्री के महत्व को स्वीकारते रहे हैं। समग्र सृष्टि स्त्री से ही उद्गत होती है, फ़िर सृष्टि उसी स्त्री में अनुप्रविष्ट भी होती है। भावप्रकाश के अनुसार 'समग्र सृष्टि एक आद्याशक्ति से उद्गत मानी जाती है। स्त्री उस आद्याशक्ति का प्रतिनिधित्व करनेवाली महिमामयी महिला है।' स्त्री में तो लक्ष्मी का भी निवास माना गया है, इसलिए स्त्री यह उद्घोषण करती है– 'मैं मुनष्य के सांसारिक वैभव की प्रदात्री हूँ। मैं सौंदर्य हूँ(श्री)। मैं लक्खी हूँ, मैं भूरिपत्र हूँ।' यानी स्त्री लक्ष्मी, श्री ऐश्वर्य, सृष्टि का पर्याय है।

पुरूष की अपूर्णता और स्त्री

विष्णुपुराण में एक वर्णन इस प्रकार है: 'पुरूष विष्णु है, स्त्री लक्ष्मी। पुरूष विचार है, स्त्री भाषा पुरूष धर्म है, स्त्री बुद्धि। पुरूष तर्क़ है, स्त्री भावना। पुरूष अधिकार, है स्त्री कर्तव्य पुरूष रचयिता है, स्त्री रचना । पुरूष धैर्य है, स्त्री शांति। पुरूष हठ है, स्त्री इच्छा। पुरूष दया है, स्त्री दान। पुरूष मंत्र है, स्त्री उच्चारण। पुरूष आँधी है, स्त्री शक्ति। पुरूष दीपक है, स्त्री प्रकाश। पुरूष दिन है, स्त्री रात्रि। पुरूष वृक्ष है, स्त्री फल। पुरूष संगीत है, स्त्री स्वर। पुरूष न्याय है, स्त्री सत्य। पुरूष सागर है, स्त्री नदी। पुरूष स्तम्भ है, स्त्री पताका। पुरूष आत्मा है, स्त्री शरीर।' इससे यह स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय जीवन–दृष्टि में स्त्री को सदा पुरूष की अपूर्णता को पूर्णता में परिवर्तित करनेवाली और सृष्टि की आधार–शिला तथा सर्वाधिक शक्तिमान तत्व के रूप में देखा गया । स्त्री के प्रति ऐसा दृष्टिकोण पश्चिमी जगत् में नहीं मिलता। भारतीय दर्शन ग्रंथों में, भारतीय संस्कृति में 'पुरूष और प्रकृति' से सृष्टि का उद्भव बताया गया है। सांख्यदर्शन इस तथ्य का विस्तृत विवेचन करता है। पुरूष परमात्मा है, प्रकृति आद्या शक्ति नारी है। प्रकृति में सत्व, रजस् और तमस्, इस तीन गुणों की स्थिति के कारण प्रकृति को त्रिगुणात्मिका कहा गया है, और स्त्री प्रकृति का प्रतिशब्द है, इसीलिए उसे भी त्रिगुणात्मिका माना गया है प्रकृतिरूपा नारी वह आद्याशक्ति है, जिससे पुरूष–संभोग से सृष्टि हुई। सांख्यदर्शन के अनुसार 'चेतन और अचेतन अथवा पुरूष और प्रकृति का अस्तित्व अनादि काल से चला आता है। फ़िर भी इन दोनों में से एक चेतन तत्व परिणामी न होने के जगत् का उपादान कारण नहीं हो सकता। सम्पूर्ण जगत् अपने उपादान (उत्पन्न करने वाले) अचेतन प्रकृति में ही लीन होता है, चेतन परमात्मा में नहीं। सांख्यदर्शन में प्रकृति (स्त्री) के बिना सृष्टि सम्भव नहीं। प्रकृति की प्रत्येक क्रिया चेतन की प्रेरण से ही सम्भव है। इससे सिद्ध होता है कि चेतन ईश्वर अपनी समीपता से ही प्रकृति को चलाता रहता है। इस प्रकार ईश्वर जगत् का उत्पन्न करने वाला नहीं, बल्कि प्रकृति में क्षोभ करने वाला है, जिससे वह (प्रकृति) जगत् की रचना में प्रवृत्त होती है। सांख्यदर्शन की ही तरह वैशेषिक दर्शन में भी प्रकृति को ही जगत् का मूल उपादान कारण माना गया है। इसलिए प्रकृति को जगत् का मूल कारण सिद्ध करने के लिए किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसका कार्यरूप प्रत्यक्ष है, वही उसकी सत्ता को सिद्ध करने के लिए बहुत है। ऋग्वेद की ऋचाओं में संकेत है कि आरंभ में न तो असत् था और न सत्, न पृथ्वी थी और न उसके ऊपर आकाश। आवरण कहाँ था ?सभी वस्तुओं का आश्रय कहाँ था ?क्या गहन गंभीर जल था ?अर्थात् कोई वस्तु नहीं थी। उस समय सर्वप्रथम 'काम' उत्पन्न हुआ। यह मन का प्रथम बीज़ था। इस 'काम' के उदय के साथ ही सबसे पहली प्रक्रिया यही हुई–पुरूष और स्त्री की सृष्टि। बिना दोनों के अस्तित्व का 'काम' भी तो निष्क्रिय ही रह जायेगा। इसीलिए ब्रह्मा ने अपने को ही दो भागों में विभाजित किया। एक अर्द्धांश से पुरूष बना, दूसरे अर्द्धांश से स्त्री और उसी में उन्होंने विराज् को उत्पन्न किया। अतिशयोक्ति नहीं कि स्त्री सृष्टि के मूल में है। स्त्री है, तभी तो सृष्टि है। पुरूष की सृष्टि, पुरूष की दृष्टि स्त्री–से–स्त्री तक ही संसीमित है।

सनातन स्त्रीत्व

साहित्य और कला में भी नारी मुख्यतः आलम्बन की भूमिका में रहती आई है। अनुसंधान के नाम पर कोई प्रच्छन्न रसलम्पटता या कामुकता जब तुष्ट होने की कोशिश करती है, तर्क़ "अश्लील" अश्लील ही बना रह जाता है। नारी की अपचारी प्रकृति को प्रस्तुत करना साहित्य एवं समाज के योगक्षेम के लिए उचित नहीं है। नारी के चारित्रिक स्खलनों

को बढ़ा–चढ़ा कर चित्रित करने से हमें क्या मिल सकेगा ?ये सच है कि स्वातंत्र्य–कामना से तरंगित नारी अब अधिक–से–अधिक बेपर्द होकर अपनी स्त्रियोचित रहस्यात्मकता को हठात् खोने का संकट स्वयं ही निमंत्रित कर रही है। जो भी हो नारी–जागरण, देह–विमर्श, स्त्री–शिक्षा, पोर्नोग्राफ़ी, कामोत्तेजक संचार माध्यम, गर्भनिरोधक साधनों के प्रयोग की छूट, गर्भपात कराने की सुविधा, तलाक देने की विधि के सरलीकरण और आर्थिक आत्मनिर्भरता के कारण नारी–मनोविज्ञान के कई नए आयाम अब हमारे सामने हैं जो रोचक होने के साथ ही सनातन नारीत्व के अपकारक भी हो सकते हैं। अपकारक इसलिए कि मातृत्व–धारण करने की अपेक्षा अप्सरा बनने की अधिक उद्याम लालसा लोकमंगल एवं सृष्टि के ऐन्द्र क्षेम के लिए घातक होती है।

स्त्री–पुरूष की समानता

स्त्री और पुरूष की समानता वैज्ञानिक दृष्टि से असंभव है। स्त्री और पुरूष का बायोलॉज़िकल भेद है। सब भेद हॉरिज़ेन्टल है, वर्टिकल नहीं और भेद रहने ही चाहिए। पुरूष–स्त्री एक नहीं है। पुरूष अलग है, सत्री अलग है। सारा आकर्षण, रोमांस, प्रेम सिर्फ़ इसी भेद पर आश्रित है। इसी फ़ासले से रस पैदा होता है। किसी भी स्त्री का मन प्रेम के स्पर्श को पाकर ही शांत हो सकता है। सेक्स में स्त्री पुरूष को ठीक से प्रेम ही नहीं कर पाती, पुरूष उसके साथ ज़रूर कुछ कर रहा होता है, स्वयं स्त्री पुरूष के साथ कुछ भी नहीं करती होती है।

डॉ० राधाकष्णनन के शब्दों में– 'नारी उस प्रेम का प्रतीक है, जो हमें खींचकर उच्चतम स्थिति की ओर ले जाता है, क्योंकि उसके साथ पवित्रता और रहस्य जुड़ा हुआ है। आज पीड़न–प्रक्रिया की प्रतिक्रिया के रूप में एक ओर तो नारी–मुक्ति आन्दोलन स्त्री चला रही है, दूसरी ओर अपने शरीर का खुला, नंगा प्रदर्शन कर पुरूष की आकर्षण–दृष्टि और शोषण–भावना, दोनों का शोषण करने पर तुली है। यह औरत न पहेली है, न ज़ादू की छड़ी, बस औरत–मात्र है, जो किसी भी स्थिति–परिस्थिति में पुरूष से अपने को हीनतर प्राणी मानने के लिए तैयार नहीं। उसने नारीत्व का नया रूप गढ़ा है, मातृत्व का नया रूप सामने रखा है, प्रणय, पति, परिवार, प्रेमी सबको अपने ही ढ़ंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। नैतिकता को झकझोरा है, मान्यताओं–मूल्यों को चुनौती दी है, पारंपरिक दृष्टि को आघात पहुंचाया है। 'काम' जो पाप और गुनाह, अपराध की ख़ाई में पड़ा कराह रहा था, उसके प्रति भी एक चुनौतीपूर्ण क़दम स्त्रियों ने उठाया। मुक्तकामी स्त्रियों द्वारा 'सेक्स' को बोरियत से राहत दिखलानेवाली वस्तु कहा जाना नैतिकता की नई परिभाषा है। फ्री लव, फ्री सेक्स अब अपराध नहीं, वर्त्तमान आवोहवा में सहज मूल्य बनते दिख रहे हैं। अपने तन–मन और भावनाओं की तष्प्ति के लिए आज की स्त्रियाँ नए–नए संबंधों को अस्थायी रूप से झेलने में भी नहीं हिचकतीं।

स्त्री:प्रहेलिका–से–अनावृत्ता तक

प्रहेलिका रहस्यमय तो होती है, पर इस रहस्य का भी अपना एक अलग ही चुम्बकीय सांवेगिक आकर्षण होता है। ज्यों ही प्रहेलिका की गूढ़ता या रहस्यमयता समाप्त होती है, प्रहेलिका सौन्दर्य की मूर्त्ति बन जाती है, आकर्षण की प्रतिमा बन जाती है। स्त्री के प्रति पुरूष का यह जैविक और मानसिक आकर्षण एक सार्वजनीन, सार्वकालिक सत्य है। श्रृंगार को रसराज और काम–भावना को ही सबसे बड़ी प्रेरणा–शक्ति एवं कार्य–निर्देशिका मान लेना उपयुक्त सत्य ही है, स्वाभाविक स्वीकष्तियां ही हैं। स्त्री के प्रति पुरूष का आकर्षण ही कलाओं को जन्म दे सका, वही कविता या साहित्य के मूल में है। क्रमशः नारी के प्रति यह आकर्षण–मात्र मनोरंजन बन कर रह गया । स्त्री अब प्रहेलिका बिल्कुल ही नहीं रही। नारीत्व प्रकृति की चपल क्रीडा ही नहीं है, वरन् एक जीवशास्त्रीय तथ्य है। वाचालता, लेखन, भाषा–प्रयोग, उच्चारण, सूक्ष्म दृश्य–भेद, दृश्य–साम्य, दृष्टि–संधान और स्मृति में स्त्रियां पुरूषों की अपेक्षा श्रेष्ठ होती हैं। स्त्रियां मानसिक धरातल पर भी पुरूष से ज़्यादा मज़बूत हैं, कम नहीं, यद्यपि मानसिक विकार और ग्रंथियां नारी को कभी भी स्पष्ट व्यवहार नहीं करने देतीं।

शारीरिक अंतर से स्त्री के व्यक्तित्व में अंतर

विज्ञान द्वारा तो स्पष्टतः यह प्रमाणित है कि बिना स्त्री सृष्टि संभव ही नहीं है। स्त्री ही सम्पूर्ण सृष्टि के मूल में है। संसार के उपलब्ध साहित्य का लगभग अस्सी प्रतिशत् स्त्री–प्रधान या स्त्री–परक है। स्त्री–पुरूष में लिंग–गत वैषम्य है। पुरूष तथा स्त्री में शारीरिक संगठन, उसकी सूक्ष्मतर विशेषताओं, शारीरिक क्रियाओं तथा शरीर के रासायनिक मिश्रण में अन्तर है। रक्तकोश, रक्त–परिभ्रमण, शारीरिक विकास तथा न्यासर्ग आदि सभी दृष्टियों से नारी तथा पुरूष में भिन्नताएँ हैं । यह अन्तर केवल प्रजनन–संस्थानों का ही नहीं, आपादमस्तक है। स्त्री का मुखमंडल पुरूष की अपेक्षा छोटा होता है, उसका वज़न कम होता है, उसकी मांस–पेशियों की शक्ति पुरूष के कम होती है, उसमें वसा का अनुपात पुरूष से अधिक होता है और रक्तचाप पुरूष से कम होता है, सहनशक्ति, रेसिसटेंस पावर अधिक होती है, इन्ट्यूटिव अधिक होती है, ज्ञान कम परन्तु समझ अधिक होती है।

यौन–समागम: स्त्री–मनोविज्ञान

सम्भोग की स्थिति में पुरूष के लिंग की तरह ही स्त्री का भगांकुर कार्य करता है। काम–भावना तथा उसकी अभिव्यक्ति में भी पुरूष तथा नारी में भेद है। पुरूष में काम–वासना इन्द्रिय–विशेष में ही केन्द्रित रहती है, जिसके कारण शरीर के अन्य भाग काम–भावना के अनुभव अथवा अभिव्यक्ति से मुक्त रहते हैं, जबकि नारी में काम–भावना का केन्द्र कोई अंग–विशेष नहीं होता। साथ–ही–साथ उसकी काम–भावना कभी भी पूर्ण रूप में विमुक्त ही नहीं होती, जिसके कारण नारी की संचित शक्ति अन्य कार्यो के उपयोग में नहीं आती। नारी की त्वचा का कोई भी भाग यौन–उत्तेजना के लिए ग्रहणशील है, जबकि पुरूष के साथ ऐसा नहीं होता। पुरूष दो प्रकार के शुक्राणु उत्पन्न करते हैं, स्त्रियों के डिम्ब सभी समान होते हैं। जहाँ तक शारीरिक सम्बन्ध स्थापित करने की बात है पुरूष हर समय सम्भोगरत नहीं हो सकता, जबकि स्त्री अनिछा में भी संभोगरत हो सकती है। उसे सर्वदा आनंदानुभूति नहीं हो सकती, पर वह सर्वदा रति–संलग्न हो सकती है। पुरूष स्त्री को देखकर उत्तेजित हो जाता है, परन्तु स्त्री के साथ ऐसी बात नहीं। वह पुरूष को देखकर उत्तेजना प्राप्त नहीं करती अपितु अपने अन्दर उसे 'महसूस' करती हुई ही उत्तेजना प्राप्त करती है। यही कारण है कि रति–क्रिया में वह पुरूष से ज़्यादा स्थायित्व प्राप्त करती है। पुरूष चाक्षुष बिंबों से ही उत्तेजित हो जाता हैं, पर स्त्री प्रायः अ–चाक्षुष बिंबों से उत्तेजित होती हैं। वे चाक्षुष कामुक बिंबों से तभी उत्तेजित होती है, जब वे स्वयं को उन बिंबों में प्रक्षेपित कर लें या तादात्म्य का अनुभव करें। यही कारण है कि पत्रिकाएँ चाहे पुरूषों के लिए हों या स्त्रियों के लिए दोनों में नारी की ही छवियाँ ज़्यादा रहती हैं। स्त्री पुरूष में काम संबंधी एक बहुत बड़ा अंतर है कि स्त्री में 'काम' की मात्रा अधिक है, जबकि पुरूष में 'काम की गति' अधिक है ! अश्लील पुस्तकें पुरूषों को ही अधिक प्रिय हैं। स्त्रियाँ इससे अधिक प्रभावित नहीं होती हैं। पुरूष इन तस्वीरों को देखकर उत्तेजना प्राप्त करता है, स्त्रियाँ उत्तेजित नहीं होतीं। शारीरिक संरचना के कारण ही वेश्यावृत्ति मात्र स्त्रियाँ ही कर सकती हैं, पुरूष नहीं। कितनी स्त्रियां समलैंगिक इसी कारण से हो जाती हैं कि पुरूषों की तरह सेक्स की स्थिति में सक्रिय होना चाहती हैं। मादा दैनन्दिन की थकान जिस ख़ूबी के साथ झेल लेती हैं, उसकी तुलना में नर मात खा जाता है। नर

अल्पजीवी होता है, जबकि मादा दीर्घजीवी। मेलाहार्मोन का एक गुण यह है कि वह मांस–तंतुओं तथा स्नायुसूत्रों की 'मेटा बौलिक रेट' को बेतरह बढ़ा देता है, जिस कारण पुरूष की जीवनी–शक्ति शीघ्र जल जाती है। इसके विपरीत स्त्री हार्मोन (एस्ट्रोज़ेन) रक्तकोशों को छीज़ने से रोकता है। योनिक अन्तर के लिए स्त्री–पुरूष की शारीरिक संरचना, हार्मोन्स के कार्य, दोनों की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया और व्यक्तित्व का निर्माण यह सभी सामने आते हैं। स्त्रियां जहां आक्रोश का प्रदर्शन मुंह से कर पाती हैं, वहीं पुरूष शारीरिक शक्ति से इसे व्यक्त करते हैं। स्त्रियां घरेलू कामकाजों में ज़्यादा दिलचस्पी लेती हैं, तो पुरूष घर के बाहरी कामों में। चोरी की प्रवृति में जहां स्त्रियां छोटी–छोटी वस्तुओं की, श्रृंगार–प्रसाधन के लिए चोरी जैसे कर्म को सम्पन्न करती हैं, वहीं पुरूष बड़ी–बड़ी वस्तुओं की चोरी करता है। सम्वेदना के लिए स्त्रियां छोटे आघातों से भी परेशान होती हैं, वहीं पुरूष बड़े–बड़े आघातों को भी सह लेता है। पुरूष की तरह स्त्री प्रेम और सेक्स के लिए उतनी आतुर, उत्सुक, व्यग्र, शीघ्रता में नहीं होती।

पुरूष प्रेम और सेक्स में चलता तो बहुत है, मगर पहुंचता कभी नहीं क्योंकि उसके तन और मन दोनों अलग–अलग दिशाओं में भटक रहे होते हैं। स्त्री के लिए सेक्स चूंकि प्रेम से अलग हो ही नहीं सकता। स्त्री के लिए प्रेम और सेक्स राजमार्ग की तरह है, पुरूष के लिए शार्टकट रास्ता–मात्र।

स्त्री–सम्बन्धी: विभिन्न दृष्टिकोण

'भारत में शुरू से जीवन का दृष्टिकोण क्लासिक' रहा है, जबकि पश्चिमी जीवन 'रोमांटिक' दृष्टिकोण को लेकर चल रहा है। स्त्री के सम्बन्ध में आजकल एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठाया जा रहा है कि अगर वह दफ़्तर में काम करें, या पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कर लें, तो गृहस्थी का क्या होगा ?उसका मुख्य कार्य तो घर–गृहस्थी चलाना है। बच्चों को शिक्षित करना है। स्त्री के संबंध में एक और प्रश्न उठाया जाता रहा है कि स्त्री सब कुछ कर सकती है, लेकिन जहां शक्ति का प्रदर्शन हो, जहां जूझने की बात हो, वहां शायद वह असफल रहे। संतति नियोजन, तलाक आदि अब अपराध नहीं, बल्कि सहज मूल्य हो गये हैं। 'मिस्ट्री दाई नेम इज़वूमेन' का मध्यकालीन दृष्टिकोण समाप्तप्राय है। अब नारी 'व्यक्ति' है–पूर्ण और उन्मुक्त।

स्त्री:एक स्वतंत्र मनोविज्ञान

पुरूष एवं नारी में उपलब्धि, प्रवणता, रूचि, व्यवसाय सम्बन्धी रूचि, मान्यताओं का अध्ययन, व्यक्तित्व आदि सभी दृष्टिकोणों से भिन्नता है। धैर्ययुक्तता नारी से सम्बन्धित है, अधिकारप्रियता पुरूष–सम्बन्धी। स्त्री चाहे छोटी उम्र में हो या बड़ी उम्र में, 'सेक्स' की बातों को लेकर अधिक परेशान होती है और प्रेम से अधिक प्रभावित होती है। यौन–सन्तोष में भी अन्तर पाया जाता है। पुरूष अपनी शारीरिक संरचना के बल पर इतनी शक्ति रख पाता है कि उसके साथ कोई बलात्कार नहीं कर सके, लेकिन स्त्री की खुली योनि बलात्कार से उसकी रक्षा नहीं कर पाती। पुरूष मानसिक संवेदना प्राप्त करके अपनी जननेंद्रिय में तनाव अनुभव करता है और संभोगरत होता है, जबकि स्त्री ऐसा चाहते हुए भी उस पुरूष के साथ संभोग नहीं कर पाती जिसकी जननेंद्रिय तनी हुई न हो। पुरूष–मात्र त्वचा–संपीड़न द्वारा ही काम–तृप्त हो जाता है, जबकि स्त्रियां रति–क्रिया के अनेकों फ़ेजों–एक्साइटमेंट फ़ेज, ऑर्गेज़्मिक फ़ेज और रिज़ोल्युएशन फ़ेज. तक पहुंचने में पुरूष की शीघ्रगामी क्रिया से अतृप्ति के महासागर में हिचकोलें ही खाती रह जाती हैं। स्त्रियां तन और मन दोनों स्तरों पर आकर ही चरम सुख पाती हैं। कितना कुछ तो स्त्रियां पुरूष से चाहती होती हैं, जो उन्हें पुरूष से नहीं मिल पाता है। पुरूष उन्हें कभी इतने पास नहीं लगते कि अपने को पूरी तरह उसमें उड़ेल सकें, खो सकें, समर्पित–विसर्जित कर सकें। पुरूष स्त्रियों के प्यार को कभी समझ ही नहीं पाता। स्त्रियों की काम–वासना कितने ही पड़ावों को पार करती हुई अंत में चरम तक पहुंच पाती है, वासना की जैसे उसमें कहीं कोई सीमा ही नहीं होती। किसी भी तरह से तृप्त हो जाना उनका यौन–स्वभाव ही नहीं। उन्हें बहुत कुछ चाहिए होता है तन के स्तर पर, मन के स्तर पर ! पुरूष के समान सहजता से स्त्रियां काम–तृप्त हो ही नहीं सकती। पुरूष को 'एक्टिव' और स्त्री को 'पैसिव' माना गया है। पुरूष दूसरे को कष्ट देकर सुख पाता है, स्त्री अपने को कष्ट देकर आनन्द पाती है। स्त्री कभी–कभी असमानता में भी सेक्स का आनन्द प्राप्त करने लगती है। स्त्री–मनोविज्ञान ज़्यादा ज़टिल है, पुरूष मनोविज्ञान से। आज के बदलते हुए युग में नारी का तन ही नहीं,मन भी बदला है। वह आज एक ओर विज्ञापनों की आधारशिला है, दूसरी ओर अन्तरिक्ष–यात्री, एक ओर वह संसार के विशालतम प्रजातन्त्र की नेत्री के रूप में अपनी एक स्वजातीयता को पाती है, दूसरी ओर करोड़ों महिलाएँ पशुओं से भी निम्नतर कोटि का जीवन जी रही है। एक ओर उसके चरणों में पुरूष सर्वस्व लुटा रहा है, दूसरी ओर उसका शोषण–दोहन भी कर रहा है। आज वह पुरूष की जीवन–संगिनी या सम्पूरिका ही नहीं, प्रतिद्वन्द्विनी भी है। वह एक आर्थिक इकाई भी बन रही है और शिक्षा एवं आर्थिक स्वावलम्बन ने उसे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए विवश किया है। इसीलिए उसे पग–पग पर टकराना पड़ता है, जूझना पड़ता है और उसे अनेक ऐसे तनावों से गुज़रना पड़ता है, जो कल की नारियों के लिए अकल्पित थे और पुरूषों ने जिन तनावों को न कभी भोगा, न कभी भोगेंगे। अतः नारी–मन का अध्ययन क्रमशः जटिल–से–जटिलतर होता जा रहा है, थाह पाना मुश्किलप्राय है।

स्त्री: एक जटिल मनोविज्ञान

जैसे–जैसे विवाह की समस्या ज़टिलतर होती जा रही है, एक और वर्ग की स्त्रियाँ दिखाई पड़ने लगी हैं, जो न तो विवाहिता होकर किसी एक पुरूष के खूंटे से बंधकर सारी ज़िन्दगी जीना स्वीकार करती हैं और न कौमार्यव्रत का पालन करते हुए अपने नारीत्व की बलि ही देती हैं । अवैवाहिक यौन–सम्बन्ध सतीत्व, पातिव्रत्य, मातृत्व और पारिवारिक दायित्व की भावनाओं से शून्य है, और पुरूष–शरीर का आखेट कर एक प्रकार से सम्पूर्ण पुरूष–प्रधान सभ्यता से प्रतिशोध लेना चाहती हैं। स्त्रियों में क्रमशः उन्मुक्ता, स्वच्छन्दता और स्वावलम्बन–भावना बढ़ती हुई दिखाई देती है। आज स्त्री वस्तु नहीं, व्यक्ति है और उनके लिए तन से अधिक मन का महत्व है। बदलते हुए जीवन–मूल्यों का स्पष्ट प्रभाव उनमें दिखता है। आज पातिव्रत्य, गार्हस्थ्य धर्म और लोकलाज़ तथा कुल–मर्यादा की भावनाएँ उसी प्रकार स्त्रियों को नहीं बांधतीं, जिस प्रकार पहले बांधा करती थीं। एक ओर बंधनों का ढीलापन और अभाव, तो दूसरी ओर बढ़ते हुए आकर्षणों का चुम्बक स्त्रियों को प्रायः विचलित कर रहा है और अधिकांश टूट रही हैं, खंडित हो जाती हैं। पूर्ण व्यक्तित्ववाली स्त्रियां अब यदा–क़दा ही मिलती हैं। बहुपुरूष–कामिनी (नयुफ़ोमेनिया) स्त्रियों की संख्या बढ़ती ही जा रही है। उनके लिए यौन–बुभुक्षा पेट की भूख से ज़्यादा अर्थ नहीं रखती और स्वाद–परिवर्तन के लिए भी वे पुरूष–परिवर्तन के लिए तैयार दिखाई पड़ती हैं। अब कुमारिका और विवाहिता के बीच में एक नया वर्ग उभरा है–ब्याह के बंधन को न स्वीकार कर किसी पुरूष के साथ निःसंकोच भाव से रहनेवाली रमणियों का। जब यह संबंध एक–दूसरे को धोख़ा देकर होता है, तब भेद खुलने पर भयंकर रूप धारण कर लेता है, अन्यथा कई बार वह पारस्परिक सहमति या स्वीकृति से सहज भाव से चलता ही रहता है। विवाहिताओं से कम वैविध्य कुमारिकाओं के चरित्र

में दिखाई नहीं पड़ता ! अधिकांश कुमारिकाएँ पुरूषों के प्रति आकर्षण महसूस करती हैं, किन्तु उनमें से एक वर्ग इस आकर्षण को उदात्त रूप प्रदान कर प्रेम को पूजा की वस्तु समझकर तथा अतृप्ति या अस्वाद को दार्शनिक जामा पहना कर रह जाता है। विवाहिताएँ शिक्षिता हों या अशिक्षिता, उनके जीवन में काफ़ी दूर तक एकसमानता मिलती है, किन्तु कुमारिकाओं में समलैंगिकता की प्रवृति तेज़ी से बढ़ती जा रही है। जहां अयाचित एवं असामयिक मातृत्व मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों को जन्म देता है, वहां इच्छित–प्रार्थित मातृत्व अनेका–नेक कुंठाओं और ग्रन्थियों को विरेचित कर स्त्रियों को सामान्य बनाता है। पुरूषों के साथ काम करने वाली औरतों को कई कई बार अनिच्छापूर्वक, विवशतापूर्वक भी वैसे कुमर्मों में शामिल होना पड़ ही जाता है, जिनके लिए न उनका तन तैयार होता है न मन। सामाजिक–राजनैतिक क्षेत्रों में काम करने वाली स्त्रियों को प्रायः मुख़ौटों में जीने का अभ्यास हो जाता है।

विवाहपूर्व यौनसम्बन्ध: स्त्री–मनोविज्ञान

मानव–जीवन में यौन–प्रवृत्ति अत्यधिक महत्वपूर्ण दिखाई देती है, उसका कारण यह है कि सामाजिक वातावतरण में इस प्रवृति से संबंधित प्रेरणाएं अनन्त हैं । उत्तेजक दवाएँ, उत्तेजक चलचित्र, श्रृंगार–प्रसाधन, उत्तेजक पुस्तकें, उद्दीपक दृश्य, विस्मय, आवेश, उद्दीपन, इच्छा, सम्मोहन, नर–मादा की शारीरिक विषमता को अधिक उभारनेवाले आवरण और उन आवरणों को धारण करने वाले असंख्य चेहरे–ये सब यौन–भावना के उद्दीपक हैं। यौन–भावना के प्राबल्य से विवाह–पूर्व स्त्री–पुरूष के संबंध स्वाभाविक हैं, क्योंकि विवाह तो अनेक व्यक्तिगत, आर्थिक और सामाजिक कारणों पर निर्भर है। उसके लिए केवल उम्र ही कारण नहीं है। पश्चिमी देशों में तो अब स्थिति यह है कि 70 प्रतिशत् युवतियाँ कॉलेज में प्रवेश करने के पूर्व ही संभोग का अनुभव प्राप्त कर चुकी होती हैं। विवाह–पूर्व स्त्री–पुरूष के शारीरिक संबंध के कई कारण हैं। दूसरी ओर निर्बन्ध यौन–संबंध परवर्ती दाम्पत्य–जीवन के लिए विष–तुल्य भी बन जाता है। विवाह–पूर्व यौन–संबंध से अनेक प्रकार की ग्रंथियों और चारित्रिक विषमताओं का जन्म होता है। यह सत्य है कि क्रमशः इस प्रकार के संबंधों का विस्तार भारतीय समाज में चोरी–छिपे होता जा रहा है। युवावस्था में प्रवृतियों को लगाम नहीं दिया जा सकता। बाह्य वस्तु–प्रेम (एलोइरोटिज़्म) के प्रति उन्मुख होनेवाली नारियाँ 'कामशक्ति' को किसी पात्र पर केन्द्रित करना चाहती हैं। इस प्रयास में वे छली जाती हैं और गुमराह होती हैं। पुरूष तो पुरूष ही होता है। स्त्री की लाचारी का लाभ उठाकर, उसके शरीर से खेलना चाहता है। विवाह–पूर्व यौन–संबंध स्थापित करने वाली अधिकांश नारियां प्रेमी की नहीं, किसी दूसरे पुरूष की व्याहता बनती हैं, और पूर्वानुभूति तथा 'सेक्स' के प्रथम प्रभाव को तमाम जीवन ढ़ोती रहती हैं।

यौनतृप्ति: स्त्री–मनोविज्ञान

आज की स्त्री स्वीकारती है, 'ज़िन्दगी की यात्रा सिर्फ़ वहीं शेष रहती है, जहां हम अपने आप को पा नहीं लेते, बल्कि सिर्फ़ ढूंढते रहते हैं।' शारीरिक धरातल पर इन्द्रिय मिलन के बदले स्त्री उस स्पर्श को खोज़ती है, जिसे पाकर वह धन्य हो सकती है, लेकिन पुरूष तो पुरूष ही होता है। स्त्री खुद ही इतना प्रोत्साहित न करती, तो यह सब क्यों होता ?यह प्रेम सात्विक न होकर, शुद्ध शारीरिक होता है। बिलकुल ज़गली और बेअदब बदसूरत भी। विवाहपूर्व यौनसंबंध के फ़लस्वरूप नारी महज़ एक बाज़ारू स्त्री मात्र बन कर रह जाती है। उन सारी काम–भावनाओं को सहेज पाने में असमर्थ होती है, जो उस अवस्था की मांग है। कामसंभोग का स्त्रियों के लिए केवल शारीरिक ही नहीं, मानसिक प्रभाव भी होता है। स्त्री को पुरूष का मन चाहिए, लेकिन मिलता है त्वचा–संपीडन। यौन–संबंध मात्र तन का संबंध नहीं, मन के संबंध का पर्याय है–प्रायः हर स्त्री का यही सच है। विवाहपूर्व यौन–संबंधों वाली चिर कुमारियाँ परवर्ती जीवन में भी उसके दुष्परिणाम भुगतने को मज़बूर होती हैं, उसकी त्रासदी भी झेलती हैं। दैहिक व्यभिचार के समानान्तर उससे अधिक गति से मानसिक व्यभिचार की प्रक्रिया भी चलती रहती है और इसके लिए स्त्रियों में उम्र की कोई सीमा निर्धारित नहीं होती। विवाहपूर्व यौन–संबंध स्थापित करनेवाली जीवनभर मनोविकषतियों से आक्रान्त रहती हैं। ग्रामीणाओं के लिए विवाहपूर्व यौन–संबंध आज भी उन्हें अपने परिवेश में असामान्य लगता है और उसके स्वाद के सुख से उन्हें कई गुना अधिक सामाजिक भार का वहन करना पड़ता है, जबकि महानगर की युवतियों में विवाहपूर्व यौन–संबंध किसी पाप–भावना को जन्म नहीं देता, वह मात्र एक क्रीड़ा है और विचारणीय है। उनकी मुक्ति और ज़्यादा सफल होते जाने में है... और कोई जैसे रास्ता ही नहीं हैं। यौन–सफलता की दौड़ में कोई थकता नहीं। इस दौड़ का कोई पड़ाव या मंज़िल होती नहीं... सफल व्यक्ति सिर्फ़ दौड़ता रह जाता है और दौड़ना ही उसकी सफलता बन जाती है।

सामान्य वैवाहिक जीवन : स्त्री–मनोविज्ञान

विवाह मर्यादा है, जीवन की एक विशिष्ट और स्वीकृत पद्धति है। इस स्वीकृत पद्धति में अपने मन को समझाकर, या मारकर फिट करना होता है या इसके प्रति स्वीकृति देकर आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करना होता है। जीवन के प्रति समायोजन (ऐडज़स्टमेंट) या अभियोजन (एडोप्टेशन) ये दो बातें ही संभव हैं। पुरूष 'सबज़ेक्टिविटी' प्रधान है। स्त्री अपेक्षाकृत 'आब्ज़ेक्टिव' होती है। रामधारी सिंह 'दिनकर' के अनुसार 'काम धरातल पर सन्तुष्ट रहनेवाली पत्नियों के जीवन में भी अशान्ति का अभाव नहीं होता, ख़ीझ, परेशानी और घुटन की कमी नहीं होती है। प्रेम स्वतः स्फूर्त भावना है और विवाह एक निश्चय, एक कठोर कर्त्तव्य। प्रेमी भी पति बन जाने के बाद प्रेमी–सा बर्ताव नहीं करता , न प्रेमिका पत्नी बन जाने पर प्रेमिका रह जाती है। अगर पुरूष है, तो पति और प्रेमी की भूमिका अदा करता है; अगर स्त्री है, तो पत्नी और प्रेमिका की भूमिका निभाती है। जब सारे संबंध टूटते हैं, तो देह की परिधि में ही पति–पत्नी संबंधों की सार्थकता का सूत्र ढूंढने लगते हैं। दोनों के 'टूटने' की प्रक्रिया में 'सेक्स' भी बड़ी भूमिका अदा करता है। शीघ्र स्खलित होने वाला पुरूष स्त्री की यौन–भावना के आगे अपने को बेबस पाता है। स्त्री पति के शीघ्र पतन से असन्तुष्ट तथा क्रुद्ध होती है। यह अहं–स्फीत व्यक्तित्व का नवीन यौन–दृष्टिकोण है। अपने प्रति मात्र 'त्वचा संपीड़न' के संबंध को वह स्वीकार नहीं कर पाती। यह एक असन्तुष्टा की यौन–संतुष्टि का उच्छ्वसित उद्रेक है। स्त्रियों की यौन–भूख़–मात्र शारीरिक न होकर मनःकायिक है ! स्त्री को त्वचा–संपीड़न से अधिक मानसिक भोग चाहिए। इसके आभार में वह प्रेम तो रखती है, लेकिन पूर्ण समर्पिता नहीं हो पाती है। विशेष कृतज्ञ या श्रद्धाभिरत नहीं हो पाती।

यौनसंबध: स्त्री–मनोविज्ञान

स्त्री–पुरूष के बीच सेक्स का सच यही है कि पुरूष मात्र त्वचा–संपीड़न द्वारा ही काम–तृप्त हो जाता है, जबकि स्त्री तन और मन दोनों स्तर पर आकर ही चरम सुख पाती है। रति–क्रिया कि अनेकों फेज़ जिसमें स्त्री की भूमिका बिल्कुल अलग बताई गई है– एक्साइटमेंट फेज़, प्लेटो फेज़, ऑर्गेज़्मिक फ़ेज और रिज़ोल्युएशन फ़ेज तक पहुंचने में पुरूष की शीघ्रगामी क्रिया स्त्री को अतृप्ति के ही समुद्र की ओर ढकेलती है। प्रेम की परिणति शरीर की सीमाओं पर हो, यह स्त्री को पसंद नहीं ! वेद, नारी, कभी कायर का प्रेम स्वीकार नहीं करती! वह औरत जिसके भीतर मनोवेग है, आन्तरिक विवशताएँ हैं, जिसे संस्कार अपनी ओर खींचते हैं, अनुभव अपनी ओर। हर चौराहे पर खड़ा एक नया पुरूष उनमें केवल

औरत, ज़िस्म की औरत ढूढंता है। नारी अपने पुरूष को नहीं पाती ! परन्तु आधुनिक युग में यह सूक्ष्मता समाप्त हो गयी है और 'स्थूलता' की ही प्रधानता हो गई। मन की जगह 'तन' स्थापित हो गया। स्त्री कच्ची लकड़ी की तरह धुंआती रहती है, न जल पाती है, न बुझ पाती है। पति उससे अगाध प्रेम करता है, लेकिन उसे वश में करने का 'गुरूमंत्र' नहीं जानता। इस चढ़ी नदिया में तो बड़े–बड़े तारन डूबते नज़र आते हैं। आँखों के सूनेपन में गरज़ता समुद्र दिखाई पड़ता है, एक मुक्त नदी–अथाह जलवाली, जो रेगिस्तान में आकर भी सूखती नहीं है, निरंतर बह रही होती है। दाम्पत्य जब अपनी हदें पहचान लेता है, तो आश्वस्त हो जाता है... सुख चाहे फ़िर रेत हो या पानी, कोई अन्तर नहीं आता। प्रेम के सघन उफ़ान में 'सेक्स' की पूर्ति के साथ ही जीवन के प्रति नवीन आशा का संचार होता है एवं संकल्प लेने की शक्ति उसमें आती है। वासना की अतृप्ति में डूबती हुई भी स्त्री पति के प्रति निष्ठावान ही रहती है। व्याहता नारियां यदा–कदा असामान्या बन जाती हैं, जिनके लिए कभी पति ज़िम्मेवार होता है, कभी वे स्वयं ज़िम्मेवार होती हैं और कभी पूरा परिवेश। उनकी मानसिक विसंगतियों के मूल में जीवन–साथी के साथ सहबुद्धिता या सहनशीलता का अभाव है। स्त्री के लिए मात्र यौनसुख ही सम्पूर्ण सुख नहीं है ! अतीत को नकारने, उसे झटक कर अपने को अलग कर लेने, अत्याधुनिकता के प्रति झुकाव, परंपरा से विलगाव की प्रवृत्ति भी तेज़ी से उभरी है। शिक्षिताओं के लिए अब वर्त्तमान ही सबकुछ है, व्यतीत निरर्थक है, परंपरा मूल्यहीन है और भविष्य अनिश्चित, अज्ञात अपूर्व निर्धारित। यह एक ऐसा तनाव है, जिससे मुक्त हो पाना न तो उनके वश में है और न उसका कोई सहज उपचार ही सुलभ है। ऐसी स्त्रियां स्नायुविकार–ग्रसित दिखती हैं। आकुलता, चिंता, अवसाद, अनिंद्रा, चिड़चिड़ापन और मानसिक दुर्बलता का शिकार हो असामयिक रूप से उनका मनोह्रास होता है। शरीर–संबंध के लिए प्रगाढ़ प्रेम की शर्त बदलते दौड़ में जैसे रह ही नहीं गई है ! पश्चिम की यौन–उन्मुक्त शिक्षिताओं की देहगाथा देह–विमर्श के रूप में सर्वत्र दृष्टिगोचर है।

असामान्य वैवाहिक संबंध : स्त्री–मनोविज्ञान

अक्सर नारियां 'शरीर' और 'मन' के बीच झूलती रहती हैं। कभी मन विजयी होता है, कभी तन। कभी 'भावना' की विजय होती है, कभी 'कटु सत्य' की। भूख़ दबाने के लिए नहीं होती, वह शान्त करने के लिए होती है। कम–से–कम स्त्री–जीवन का अथ और इति सेक्स ही है ! सेक्स के इर्द–गिर्द ही उसका जीवन चक्कर लगाता है। उसके जीवन का निर्माण और क्रम का निर्धारण करने वाली हर बात का संबंध किसी–न–किसी प्रकार सेक्स से ही रहा है। मानसिक व्यभिचार शारीरिक धरातल पर असफल साबित होता है। नारी केवल एक ही पुरूष को सब कुछ दे पाती है। बार–बार उससे आशा और विश्वास रखने पर एक जुठलाहट से अधिक कुछ भी नहीं होता। पहला पुरूष, अच्छा हो या बुरा, सब कुछ ले सकता है, किन्तु बाद में तो वह दया, करूणा या कोई एक ही चीज़ दे पाती है। उसे पाने वाले पुरूष सिर्फ़ 'मांस' ही पाते हैं, कोई गर्मी नहीं, कोई तल्ख़ी और तुर्शी नहीं पाते। जो कुछ जैसे आता है, बिना प्रभावित हुए, स्वीकारती चली जाती है। उसके संबंध में न चिन्ता करती है, न मानसिक संघर्षो में पड़ती है। जीवन कुछ और नहीं, केवल घटनाओं का संयोग है। जीवन तार्किक नहीं, एक ही पैटर्न के संयोग की श्रृंखला है। अधिकांश असामान्य वैवाहिक संबंधों में बंधी हुई स्त्रियों का चरित्र त्रासदीय विभीषिकाओं से युक्त है।

अवैवाहिक यौनसंबंध : स्त्री–मनोविज्ञान

कुछ स्त्रियां पुरूषों के साथ रहती हैं, लेकिन कुमारिका भी नहीं, विवाहिता भी नहीं। शारीरिक संबंध भी इनका है, और पति भी नहीं। ऐसे संबंध को हम अवैवाहिक यौन–संबंध ही कह सकते हैं। पुरूषों के साथ उनके संबंध हुए, घर–गृहस्थी की बातें हुई, लेकिन नाज़ुक क्षणों में ये रिश्ते टूट जाते हैं और फ़िर वह दूसरे की तलाश में निकली। यह तलाश कभी–कभी समाप्त भी हो जाती है और कभी–कभी अनन्त यात्रा के रूप में ऐसी नारियां भटकती ही रह जाती हैं। अपने सौन्दर्य की प्रशंसा में कही गई पंक्तियों को याद कर 'काम–वासना' से अधीर हो उठती हैं और फ़िर बहती गंगा में अपने को बहाती फ़िरती हैं। इसे हम 'चारित्रिक संक्रमण' कह सकते हैं, जिसमें व्यक्ति की स्थिति 'हाँ' और 'ना' के बीच टूटती रहती है। 'निंफ़ोमेनिक' की संज्ञा पाकर 'सोसाइटी गर्ल' हो जाती है। यह स्वेच्छया चरित्र–ह्रास का अन्यतम प्रयास है। पुरूष इस मामले में दोषी साबित नहीं हो पाता । चूंकि यह माना जाता है कि जबतक पुरूषलिंग में उत्थान न हो, संभोग–क्रिया नहीं हो सकती है और लिंगोत्थान तब तक नहीं हो सकता, जब तक पुरूष मानसिक दृष्टि से रति–क्रिया के लिए तैयार न हो।

विवाहेतर यौनसंबंध : स्त्री–मनोविज्ञान

नारी की मनोवैज्ञानिक स्थितियां विवाहेतर यौन–संबंध के कारण और भी जटिल प्रतीत होती हैं। वैवाहिक जीवन में, पति को छोड़कर, पर–पुरूष की अंक–शायिनी बननेवाली पत्नी निश्चय ही 'काम की आग' के लिए दूसरे की संभोग्या नहीं बनती, क्योंकि पति से शारीरिक सुख तो उसे प्राप्त होता ही है। कुछ ऐसे सुख भी होते हैं, जिन्हें पति दे नहीं पाता ! कुछ ऐसी संवेदनाएं भी होती हैं, जिन्हें वह सहला नहीं पाता, तब पत्नी किसी और की तलाश में निकलती है। ऐसे पुरूष की खोज़ करने लगती है, जो उसे सिर्फ़ 'त्वचा संपीडन' ही न देकर, मन की आकांक्षाओं को भी पूरा करें। जिसे हम 'नारीत्व' कहते हैं, वह ब्रह्मा की रचना नहीं, सभ्यता का आविष्कार है। पुरूष 'सेक्स' को भी खाना की तरह कभी स्वाद लेकर पाता है, कभी बिना मन के ही उसे भोग लेता है। प्रेम–भावना प्रकट नहीं करता... उसकी कामचेष्टा भी मुर्गे के समान है, जो एक प्रकार का बलात्कार ही है। वह कबूतर की भांति कबूतरी की ख़ुशामद नहीं करता। स्त्री प्रेम की भूख़ी है और उसकी यह भूख़ कितनी तीव्र है, इस पर पति कभी विचार ही नही कर पाता। पति के इस कठोर व्यवहार तथा संवेदना के धरातल पर निर्मम व्यवहार से स्त्री टूट जाती है ओर प्रेम में नये जीवन की खोज़ करने लगती है। परन्तु यह सब करके भी सुखी नही होती, निश्चिंत नहीं होती, तृप्त नहीं होती। वह 'एकरसता' से ऊब कर, खुशामद नहीं किये जाने की स्थिति में परपुरूष के साथ यौन–संबंध स्थापित कर सिर्फ़ स्त्री ही रहना चाहती है। मात्र नारी ! 'सेक्स–जीवन' में एकरसता (मोनोटोनी) की भयंकरता से हज़ारों स्त्रियां परपुरूष के साथ सोना चाहती हैं ! पुरूष की तरह 'सेक्स' के प्रति अपराध–भाव के बिना, पर–पुरूषों की अंकशायिनी बन वे 'मोनोटोनी' को ब्रेक कर एक ख़ास क़िस्म का आनन्द पाती हैं। इस रूप में वे कामोन्मादिनी नहीं, अपितु 'सेक्स' की सहज भावना से ओत–प्रोत एक सामान्य महिला बन जाती है। विवाहिता होकर भी मुक्त–असंग में विश्वास रखती है। 'सेक्स' में 'परदर्शन' के लिए यह 'मोनोटोनी' बहुत बड़ी भूमिका निभाती है ! भरी–पूरी गृहस्थी के बावजूद स्त्री–पुरूष की तरह कुछ चाहने लगती है, इसी 'कुछ' के लिए उसका पूरा जीवन बर्बाद भी हो जाता है। अचेतन में वासना के प्रति ललक उसे नीचे की ओर गिरने को बाध्य करती है। लेकिन कहीं परकीया प्यार भी पुनीत होता है। पुनीत तो सिर्फ़ पति का प्यार ही होता है, चाहे उसमें संतोष न मिले। परकीया प्यार पुनीत न हो, पर नारी को उसमें रस मिलता है और वह सदैव इन्छुक रहती है। उसके चरित्र का मात्र स्खलन 'एकरसता' को तोड़ने के लिए ही होता है! अतृप्ति, अवसाद, अभाव, संवादहीनता को भुलाने के लिए भी कई स्त्रियां गृहस्थी की वर्जित चहारदीवारी से बाहर

सेंध लगाने को मज़बूर हो जाती हैं।

यौनानुभवविहीना कुमारिकाएँ: स्त्री–मनोविज्ञान

प्रेम मानव–स्वभाव की एक सरस अनुभूति एवं जीवन का सर्वश्रेष्ठ आनन्द है। कुछ नारी प्रेम की पवित्रता में शारीरिक संबंध को गौण स्थान देकर उदात्तता को प्राप्त होती है। व्यक्तित्व के निर्माण में परिस्थितियों, संदर्भ, वातावरण, संयोग, वियोग, परिवार, समाज, देश, काल, पात्र सब का हाथ रहता है। पुरूष और नारी, एक–दूसरे के संदर्भ में सहज हो ही नहीं सकते, क्योंकि यह संबंध बड़े ही अनावश्यक रूप से आवश्यक है ! इट इज़ बेसीकली क्रूड इन इट्स एप्रीसिएशन आर कन्डेमनेशन। वह जानती है कि प्रेम के प्रतिदान में स्त्री होने के नाते, उसे कोई भी त्वचा–संपीड़न ही देगा, प्रेम नहीं। वह प्रेम चाहती है जब कि पुरूष की आंखों में केवल वासना की छाया ही देख पाती है। अपनी अच्छाइयों के बारे में सुनकर वह गर्व से भर उठती है–'यू सफ़र फ्रॉम सेवरेल एक्सेसेज़, एक्सेस आव् स्वीट्नेस, एक्सेस आव् ज़ेन्टिलनेस, एक्सेस ऑव् बैलेन्स एण्ड सेल्फ़ कंट्रोल'। अधिकांश स्त्री कमज़ोर क्षणों में अपने को रोकती है। वह ब्याहपूर्व शारीरिक संबंध स्थापित करने के विरूद्ध होती है। किन्तु अशरीरी संबंध की भी एक सीमा है ! नारी पत्नी के रूप में प्रेमिका ही नहीं, अपितु प्रेरणा–स्त्रोत भी बनी रहना चाहती है। उसकी प्रेम–प्रवृत्तियां आकर्षण और सम्मोहन उत्पन्न करती हैं। दो प्रकार की कुमारिकाएं मिलती हैं–एक जिन्हें स्वेच्छया या बलात् यौनानुभूति से गुज़रना पड़ता है। दूसरी ओर वे जिनमें उम्र के अनुरूप काम–भावना तो है, किंतु पारंपरिक शील–संकोच या परिस्थितियों के दबाव के कारण जो विवाहपूर्व यौन–संबंध नहीं स्थापित कर पाती हैं और परिणास्वरूप अनेकानेक कुंठाओं को पालती हैं। विवाहिताओं से कम वैविध्य कुमारिकाओं के चरित्र में दिखाई नहीं पड़ता। अधिकांश कुमारिकाएं पुरूषों के प्रति प्रबल यौनाकर्षण महसूस करती हैं, किन्तु उनमें से एक वर्ग इस विपरीत लिंगी आकर्षण को उदात्त रूप प्रदान कर प्रेम को पूजा की वस्तु समझकर तथा अतृप्ति या अस्वाद को दार्शनिक ज़ामा पहनाकर रह जाता है। दूसरी ओर दूसरा वर्ग मानसिक व्यभिचार को अभ्यास बना कर अनेक प्रकार की ग्रंथियों और विकृतियों का शिकार हो जाता है। इस वर्ग में शिक्षिता और अशिक्षिता का भेद विवाहिताओं से ज़्यादा महत्वपूर्ण है। विवाहिताएं शिक्षिता हों या अशिक्षिता उनके जीवन में काफ़ी दूर तक एक समानता मिलती है, किन्तु कुमारिकाओं में बहुत अन्तर हो जाता है। महानगरों की कुमारिकाओं में समलैंगिकता की प्रवृत्ति तेज़ी से बढ़ती जा रही है।

वात्सल्य एवं मातृत्व : स्त्री–मनोविज्ञान

स्त्री जहां 'सेक्स', अवैवाहिक संबधं, वैवाहिक संबंध, मुक्ताचार आदि के कारण अपनी मनः स्थिति में तरह–तरह के मनोविकार और ग्रन्थियां पालती हैं, वहीं वात्स्ल्य और मातृत्व के लिए भी मनोरोग और ग्रंथियों से पीड़ित होती हैं। स्त्री और पुरूष के संबंध का अगर कोई परिणाम सामने आता है, तो वह है संतान–प्राप्ति। पुरूष चूंकि वीर्यदान कर अपनी भूमिका वहीं समाप्त कर लेता है, इसलिए स्त्री–सृष्टि के दुःख और सुख भोगती हुई सन्तान को ही महत्वाकांक्षा के रूप में स्वीकार करती है। प्रजनन की पीड़ा, नौ माह तक बच्चे को पेट में ढ़ोने की त्रासदी को वह त्रासदी न मानकर जीवन का महत्वपूर्ण आनन्द मान लेती है। कुछ नारियां अपने जीवन की रसात्मक अनुभूति में इसे सबसे बड़ी बाधा समझती है। अपने शरीर के क़साव, और स्वच्छन्द होकर 'काम की आग' की शान्ति के लिए सन्तान सचमुच एक रोग बनकर उनके सम्मुख उपस्थित होती है। परन्तु वह सृजन के आनन्द से वंचित, रीती–की–रीती, अतृप्त, अशान्ति की अग्नि में दग्ध ही होती रहती है अन्ततः। संतान नारी की यौनेच्छा पर अंकुश नहीं है, नियंत्रण नहीं है, मर्यादा है। व्यवस्था है, वह पति–प्रेम का विलोम या विलोप नही। स्त्री–चरित्र को समझने की दृष्टि से मातृत्व–भावना का विशेष महत्व है। भारतीय स्त्री के लिए 'अनिच्छित मातृत्व' एक विदेशी धारणा का आरोपण है, उसकी स्वाभाविक गति नहीं। मातृ–रूप ही स्त्री का सर्वश्रेष्ठ रूप है, मातृत्व ही नारीत्व की चरम परिणति है। जैसे–जैसे भोगवादी संस्कृति का विस्तार होता जाएगा, परिवार–नियोजन आदि के कार्यक्रमों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता रहेगा, वैसे–वैसे मातृत्व के प्रति आकर्षण समाप्त होता जाएगा। अपनी ही देह–यष्टि को सर्वस्व माननेवाली स्त्रियां स्तन–पान कराकर किसी जीव के जीवन–निर्माण का सुख नहीं प्राप्त कर सकेंगी। जहां अयाचित एभं असमय मातृत्व मनोवैज्ञानिक ग्रंथियों को जन्म देता है, वहीं इच्छित–प्रार्थित अनेकानेक कुंठाओं और ग्रंथियों को विरेचित कर, स्त्री को सामान्य बनाता है। लोलुप, भेड़िया समाज स्त्री के तन को कभी भी प्रतिष्ठा नहीं दे सकता।'सेक्स' तथा 'रोटी','कर्त्तव्य' और 'परिवार' के बीच पिसती स्त्री खंडिता बन कर ही रह जाती है।

स्त्रीप्रेम: पवित्रता का दृष्टिकोण

जब परिस्थितियां बदल जाती हैं, तो सारे पुराने नियम, क़ायदे, रीति–रिवाज़ एवं परमपराएं स्वतःविदा हो जाती हैं। समय कोई भी हो, आदमी अपनी स्वतंत्रता और नारी की पवित्रता की चाहत रखता है। जबकि स्वतंत्रता और पवित्रता निश्चित करनी है, तो दोनों को ही करनी पड़ेगी। अगर स्वतंत्रता तय करनी है, तो दोनों को समान रूप से स्वतंत्र होना होगा। यौनधर्म का अर्थ है– अधिकतम आनन्द, मंगल, सुख देने की उत्कृष्ट कला! आज मनुष्य न तो उत्पादन का साधन है, न शक्ति का, सिर्फ़ भोक्ता है– कन्ज़्यूमर है। यहां हर आदमी कुछ है और कुछ दिखला रहा है। कुछ है, कुछ बन रहा है और कुछ और ही दिखाई पड़ रहा है। दर्पण के आगे दर्पण, और दर्पण के आगे दर्पण। कोई नहीं जो अभी और यहीं सदा आनन्द में है। हर कोई कहीं और ही है! हमारी सारी यात्रा अप्रेम की यात्रा है। जबकि प्रेम व्यक्तित्व की तृप्ति का चरम बिन्दु है। इसके अभाव में व्यक्तित्व अधूरा, बेचैन और कुंठित बना रहता है, जिस कारण अनाचार का प्रवेश होता है। जहां प्रेम नहीं है, वहां सम्बन्ध केवल कामुक होते हैं। इसलिए कलह है। झूठे चेहरे ही दूसरे को दिखाई पड़नेवाले चेहरे हैं। प्रेम कल्टीवेटेड होता है, स्पोनटेनियस होता है। परन्तु केवल यौन के कारण उत्पन्न मोह प्रेम नहीं होता, क्योंकि वहां प्राणों की ललक, आकर्षण, विद्युत नहीं है। हर कोई दूसरे घरों में झांक रहा है प्रेम के लिए। पीछे के दरवाज़े से पाप के रास्ते निर्मित होते हैं। अब तो कुछ देशों मे पुरूष वेश्या, मेल प्रोस्टिच्युट भी उपलब्ध हैं। प्रेम के अतिरिक्त कोई स्वस्थ नहीं हो सकता। प्रेम, काव्य, संगीत की प्रतिध्वनि एकान्त अकेले में ही मिलती है और उस समय हम बिलकुल दूसरे आदमी होते हैं, पूरी तरह उन्मुक्त। चांद पर पहुच जाने से ज़मीन वैसी नहीं लगती, जैसी पहले लगती होती है। किसी भी विवाह से प्रेम नहीं निकल सकता, क्योंकि प्रेम प्रकषति और परमात्मा की आपरूपी व्यवस्था है और प्रेम न तो किसी प्रकार का बन्धन है, न ही कोई सम्बन्ध है। जो बंधे होते हैं, हरगिज़ आपस में प्रेम नहीं कर सकते। इसमें ज़बरदस्ती नहीं की जा सकती और कोई विवश्ता, मज़बूरी नहीं होती। स्त्री–पुरूष एक–दूसरे से अक्सर कहते पाए जाते हैं कि प्रेम करते हैं, मगर प्रेम का कुछ अता–पता नहीं! प्रेम का कोई विस्फोट नहीं। ज़रूर हमारा प्रेम धोख़े का है, एक–दूसरे का पहरेदार– मात्र! प्रेम अगर होता है, तो कभी नहीं मिटता, शाश्वत् होता है। सच्चा यौन न हो,

तो सच्चे ब्रह्मचर्य की कल्पना नहीं की जा सकती। ऐसे में विवाह लिगलाईज़्ड प्रोस्टिच्युसन, समाज द्वारा आदेशित लाएसेन्सड वेश्यागिरी है– यौन–सम्बन्धों में बाधा नहीं देने के लिए! किसी प्रेमाधिक्य के क्षण में यौनसुख का स्वाद भी अर्थ पूर्ण हो सकता है, मगर वह अनिवार्यतः अनर्थ नहीं है, मगर किसी क्षण– मात्र में ही!

स्त्री: सम्पूर्ण प्रेम का पर्याय

जड़, निष्क्रिय, शान्त, चुप स्वभाव के कारण पता नहीं चलता कि स्त्री की इच्छा क्या है?हम उसकी इच्छा पर अपनी इच्छा ज़बरन थोपते रहते हैं, जबकि जो भी श्रेष्ठ है– वह अतिरिक्त है, अतिरेक है, ओवरफ्लोविंग है, अतिरेक से निकला फूल है। सच तो यह है कि कुछ बातों को छोड़ कर स्त्रियां पुरूषों से कई अर्थों मे ज़्यादा शक्तिवान हैं, उनका रेज़िस्टेन्स, उनकी शक्ति कई आयामों में प्राकृतिक रूप से अधिक है। स्त्री के लिए प्रेम एक अकेली क्रिया है, जबकि पुरूष के लिए कई क्रियाओं में एक! स्त्री पूरी प्रेम है। सेवा ही प्रेम की सुगन्ध है। जबकि पुरूष का मन यौन के आसपास ही घुमता है। जब एक स्त्री और पुरूष परिपूर्ण प्रेम से मिलते हैं तथा उनका यौनसमागम स्थापित होता है, तो उनकी देह, मन, अत्मा का मिलन होता है और वे एक लयपूर्ण संगीत में डुब कर विलीन हो जाते हैं और यह मिलन कामुक नहीं होता, बल्कि आध्यात्मिक हो जाता है, पूरी तरह धार्मिक कृत्य हो जाता है। जो चीज़ प्रेम से रहित हो, वही पाप है! प्रेम से शून्य अपवित्र! प्रेम नहीं है इसलिए कामुकता है और वही पाप है, प्रेम के अभाव का पाप! कोई स्त्री पति को प्रेम करती है तो बच्चे पति की प्रतिकृति होती है, पति का पुनर्जन्म होता है। वही शक़्ल, रूप पति के किए प्रेम की प्रतिध्वनि होती है। प्रेम से रिक्त बच्चे एक दुर्घटना! दूर के विपरीतलिंगी के समागम का मुक़ाबला नहीं हो सकता। पुरूष गणित में सोचता है, प्रेम उसकी सोचने की भाषा नहीं है और गणित से जो चीज़ विकसित होगी, वह विज्ञान है हमारी सारी खोज़ गणित की है, तर्क़ की है। प्रेम की हमारी कोई खोज़ नहीं है। पुरूष का चित आक्रमण और हिंसा का है। स्त्री और पुरूष परिपूरक हैं। वे दोनो साथ हैं, तभी पूरे हैं। हार जाने से जो जीत होती है, यह पुरूष को पता ही नहीं। पुरूष प्रेम की बात भी करेगा, तो अहिंसा से आगे नहीं जा सकता। प्रेम का उसे सूझता ही नहीं। स्त्री का चित्त अहिंसा से राज़ी नहीं हो सकता। उसका चित्त कहता है'प्रेम'– दूसरे को सुख पहुंचाना। स्त्री, पुरूष के पीछे आकर उसका अंग हो जाती है। वो मिसेज़ हो जाती है, लेकिन पुरूष स्त्री का अंग नहीं होता। स्त्री पुरूष का आधा अंग है लेकिन पुरूष स्त्री का अंग नहीं है। पुरूष के लिए प्रेम चौबीस घंटे में आधी घड़ी–भर की बात है! उसके लिए और भी बहुत काम हैं। प्रेम भी एक काम है! प्रेम से भी निपट कर वह दूसरे कामों में लग जाता है। स्त्री के लिए प्रेम ही एकमात्र काम है और सारे काम उसी प्रेम से निकलते हैं और पैदा होते हैं। उसे चौबीस घंटे प्रेम की जंज़ीर है। पश्चिम की स्त्री, पुरूष होने की दौड़ में है। वह जितना अपने को पुरूष जैसा बनाती जा रही है, उतना ही उसका व्यक्तित्व खोता चला जा रहा है। स्त्री के पास एक अपने तरह का अलग व्यक्तित्व है, जो पुरूष से बहुत भिन्न है, बहुत विरोधी, बहुत अलग, बहुत दूसरा है। उसका सारा आकर्षण, उसके जीवन की सारी सुगन्ध उसके अपने होने में है, उसके निज होने में है। परन्तु वह पुरूष के ज़ाल में सिर्फ़ एक खिलौना बन जाती है। प्रेम की कोई सीमा नहीं है और प्रेम की अपनी पवित्रता है। सारी सीमाएं उस पवित्रता को नष्ट करती हैं और गंदा करती हैं। स्त्री का सारा आनन्द दे देने में है और पुरूष का कब्ज़ा कर लेने में। जो हम कब्ज़ा कर लेते हैं, वह सदा मिट्टी का हो जाता है, जो हम देते हैं वह स्वर्ण का हो जाता है। स्त्री और पुरूष भिन्न हैं, लेकिन असमान नहीं। भिन्नता ही स्त्री को व्यक्तित्व देती है। कपड़ों के फ़ासले कम हो जाने से भिन्नता नहीं मिट सकती। भिन्नता गहरी बॉयोलोज़िकल, जैविक और शारीरिक है। भिन्नता साईकोलोज़िकल भी है बहुत गहरे में। स्त्री पुरूष को पैदा करने में इतना बड़ा श्रम कर लेती है कि कोई सृजन करने की ज़रूरत नहीं रह जाती। प्रेम गणित से बिलकुल उल्टा है। गणित की एक दिशा है जहां जड़ नियम होते हैं। चीज़ें तौली और नापी जा सकती हैं। पुरूष सोचता है, स्त्री भावना करती है। उसके पास ठीक हिसाब नहीं है। ज़िन्दगी बहुत बड़े अर्थों में प्रेम है, जहां कोई हिसाब नहीं होता, जहां कोई गणित नहीं होता। भिन्नताए और भेद आनन्दपूर्ण हैं। स्त्री में कुछ डाइनामिकली अपोज़िट है। वह बहुत बुद्धि और तर्क़ की नहीं है, ज़्यादा अन्तर–अनुभूति की है।

स्त्री–सृष्टि: काम–सृष्टि

ताक़त से नहीं जीतना है, अभय से जीतना है, फ़ियरलेसनेस से जीतना है। बड़े–से–बडा ताक़तवर हार जायेगा, अगर भीतर भय हो तो। दूसरा हमें कभी नहीं हराता है। हमारा भय ही हमें हरा देता है। फ़िर इसमें तो इन्कार ही बुलावा है। मन में भीतर ना का मतलब हां होता है। और प्रेम जितना गहरा जाता है, कोई और चीज़ उतनी गहरी नहीं जाती। जिस स्त्री से प्रेम हो, उसके प्रति रस होना स्वाभाविक है। नहीं तो प्रेम भी नहीं होगा। लेकिन किसी अनज़ान स्त्री के प्रति ऐसी बात अशोभनीय होती है। एक–दूसरे के प्रति उत्सुकता स्वाभाविक है। इसमें अशोभन कुछ भी नहीं। पूरी प्रकृति काम का फ़ैलाव है। स्वभावतः काम का आकर्षण सर्वाधिक है, क्योंकि हम उत्पन्न काम से होते हैं। पूरी सृष्टि काम की सृष्टि है, परन्तु जिस चीज़ में भी अपराध–भाव पैदा हो जाए, उसमें सुख नहीं मिलता। दुःख मिलने लगता है और पाप का भाव गहरा हो जाता है। सुख के लिए पहली बात ज़रूरी है कि मन में अहोभाव हो, अपराध भाव न हो। स्त्री–पुरूष के बीच जो आकर्षण है, वह जीवन का ही आकर्षण है। शरीर के तल पर यौन भी इसी लीनता का उपाय है। स्त्री–पुरूष की निकटता जितना गहन हो सके, उतना ही एकात्म का अनुभव होता है। रति की दो स्थिति होती है। पहली स्थिति दूसरे से मिलने की और दूसरी स्थिति अपने से मिलने की! पहली स्थिति में रति स्त्री और पुरूष के बीच होती है, जिसमें क्षण–भर को सुख का आभास–मात्र होता है। एक अज़नबी की तरह। फ़िर उसे नमस्कार कर ज़ल्दी से रास्ता काट कर चल देते हैं। प्रकृति में कुछ भी विष नहीं है, सब अमृत है। प्रेम प्राणों की प्यास है, वह प्राणों की सुगन्ध है प्रत्येक के भीतर। सिर्फ़ अनावृत करने की बात है! प्रेम हम में है, हमारा स्वभाव है। प्रकृति तो एक हारमनी है, एक संगीतपूर्ण लयबद्धता है, प्रकृति का तो एक सहयोग है। काम की शक्ति ही प्रेम बनती है। काम जीवन का प्राथमिक बिन्दु है। उसी से जन्म होता है। सारा जीवन, सारी अभिव्यक्ति, सारी फ़लावरिंग काम की है। काम ही प्रेम बनता है। जबतक काम के निसर्ग को परिपूर्ण आत्मा से स्वीकर्षति नहीं मिलती है, तब तक कोई किसी को प्रेम कर भी नहीं सकता। प्रेम है अनुभव इस बात का कि एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति की सारी दीवारें गिर गई और प्राण संयुक्त हुए, दो ऊर्जायें मिल गई और एक हो गए! जब तक भिन्नता है, तब तक प्रेम का अनुभव नहीं हो सकता! प्रेम हमेशा झुकने को राज़ी है। अहंकार कभी भी झुकने को राज़ी नहीं है। प्रेम के लिए कोई बड़ा छोटा नहीं। जो आ जाए, उसी से सम्बन्ध जुड़ जाता है! प्रेम जब भी कुछ दे पाता है, तब खुश होता है। अहंकार जब भी कुछ ले पाता है, तभी खुश होता है। प्रेम एक प्रतीक्षा है कि आओ, आओ! जब वह दे नहीं पाता, तो उदास हो जाता है। और प्रेम निष्प्रयोजन है। टूट कर भी प्रेम आनन्दित होता है। अहंकार पा कर भी दुःखी होता है। प्रेम कोई शास्त्र नहीं है, न कोई परिभाषा है, न प्रेम का कोई सिद्धान्त है। प्रेम 24 घंटे नहीं रहता। प्रेम माया है।

स्त्री और कामरति

हम जो करते हैं, उसी से हम निर्मित होते हैं । कामरति की घटना में बिजली चमकती है। किसी ग़हराई पर, किसी पीक एक्सपिरयेन्स पर, किसी शिख़र पर पहुंचना होता है, और हम पहुंच भी नहीं पाते और वापस गिर जाते हैं, हम वापस अपनी जगह खड़े हो जाते हैं।

अहंकारमुक्तता और समय–शून्यता में इसकी झलक मिलती है। अन्ततः सब खो जाता है, रिक्तता रह जाती है। लेकिन आदमी हर स्थिति में, हर समय कामुक है। जबकि पशु नग्नता में भी निर्दोष है, सरल और सीधा है। जो लोग जितने कम प्रेम से भरे होते हैं, उतने ही ज़्यादा कामुक होंगे, उनके जीवन में उतनी ही चिन्ता और दुःख होगा। प्रेम बहाव है और एक तर्पित लाता है, जो किसी भी तृप्ति से ज़्यादा ग़हरी है। जितना आदमी प्रेमपूर्ण होता है, उतनी तृप्ति, एक कन्टेन्टमेन्ट, एक ग़हरा संतोष, एक आनन्द का भाव, एक उपलब्धि का भाव उसके प्राणों के रग–रग में बहने लगता है। उसके सारे शरीर से एक रस झलकने लगता है, जो तृप्ति का रस है, आनन्द का रस है। प्रेम अकारण होता है, प्रेम कारणसहित नहीं होता है। प्रेम स्वभाव की बात है, सम्बन्ध की बात नहीं है। जब प्रेमपूर्ण हृदय बनता है, तो व्यक्तित्व में एक तृप्ति का भाव, एक रसपूर्ण तृप्ति आती है। जितना प्रेम बढ़ता है, उतनी ही कामुकता की संभावना कम होती चली जाती है। हर चीज़ अपने विपरीत में विलीन हो जाती है। नाव पर सवार होकर समुद्र की यात्रा करने जैसा है। कितने ही दूर के सागर पार किये हो, कितना ही अनुभव हो सागरों का, बड़े–बड़े सागर पार कर भी...सागर के बीच प्यासा ही रह जाना होता है। सारे प्रयास सुई के जैसे हैं। छोटे हैं। बिन्दु कभी लकीर जैसा नहीं हो सकता। लकीर अनंत बिन्दुओं का जोर है। लकीर बिन्दु जैसी नहीं हो सकती। सब ऊपर–ऊपर ही रह जाता है। मन थोथे को पकड़ लेता है, ग़हरे को भूल जाता है। मन की कोई ग़हराई नहीं। विपरीत जहां मिल जाते हैं वहां वर्णन असमर्थ हो जाता है।

स्त्री–प्रसंग की अर्थवत्ता

लेकिन हम सिर्फ़ बटन दबाना और बुझाना जानते हैं और उसी से हमने समझ लिया है कि हम बिज़ली के जानकार हो गये हैं। जीवनभर इस प्रक्रिया से गुज़र कर भी इसे नहीं जान पाते। जब आनन्द में हों, जब प्रेम में हों, जब प्रफ्फुलित हों, जब प्राण प्रेयर फूल हो, हृदय शान्ति और आनन्द से भरा हो, कृतज्ञता से भरा हो तभी ग़हरी अनुभूति उपलब्ध हो सकती है। स्त्री और पुरूष का मिलन एक बहुत ग़हरा महत्व रखता है, क्योंकि पहली बार इसमें अहंकार टूटता है और हम मिलते हैं, पहला अनुभव है जुड़ जाने का। यह मिलन जितना ग़हरा होगा, उतनी ही पवित्रता, सरलता, वैज्ञानिक्ता और प्राकृतिकता होगी। उतना ही एक प्रेमपूर्ण, पवित्र और शान्त कृत्य होगा! हम जो भी करते हैं, वह हम किस स्थिति में हैं, इसपर निर्भर होता है। यह एक सिचुएशन है, जिसमें एक आकाश में उड़ती हुई आत्मा अपने योग्य स्थिति को समझ कर प्रविष्ट होती है। लेकिन हम उन पात्रों की तरह हैं, जिनमें छेद हैं, जिन्हें हम कुंओं में डालते हैं खिंचने के लिए। उपर तक पात्र तो आ जाता है लेकिन खाली। हम उन नावों की तरह हैं, जिनमें छेद हैं। हम नावों को खेते हैं– सिर्फ़ डुबने के लिए। नावें किसी किनारे तक नहीं पहुंच पाती हैं, सिर्फ़ मझधार में डुबा देती हैं और नष्ट कर देती हैं।

स्त्री–प्रसंग की संपूर्णता

आवश्यकता है काम को प्रेम में रूपान्तरित करने की। शरीर बहुत स्थिर चीज़ है और उसमें परिवर्तन बहुत धीरे–धीरे आता है और पता भी नहीं चलता। शरीर जड़ता का तल है। मन वैसे भी चंचल है। एक यान्त्रिक, एक मैकेनिकल रूटीन हो जाती है। उसी अनुभव को रिपीट करते रहते हैं और जड़ होते चले जाते हैं। काम में कभी तृप्ति नहीं मिलती, इसलिए पति–पत्नी सदा कष्ट में रहते हैं, क्योकि वह यात्रा है और यात्रा सदा कष्ट में होती है। मंज़िल पर शान्ति मिलती है। पति–पत्नी कभी शान्त नहीं हो सकते, क्योंकि वह बीच की यात्रा है। पुरूष के लिए अन्य कोई दूसरी स्त्री दस – पॉच दिन के बाद फ़िर पहली स्त्री साबित हो जाती है और दूसरा पुरूष पन्द्रह दिन के बाद किसी स्त्री के लिए फ़िर पहला पुरूष साबित हो जाता है। प्रेम अन्ततः अध्यात्मिक काम है। स्त्री–पुरूष इस जीवन के दो अनिवार्य अंग हैं। और एक अर्थ में पुरूष भी अधूरा है और एक अर्थ में स्त्री भी अधूरी है।उनकी निकटता जितनी गहन हो सके, उतना ही एक का अनुभव शुरू होता है। जितना ग़हरा स्वीकार होगा, उतना ही स्वस्थ और सहज प्राकृतिक संपूर्ण जीवन होगा। भारतीय स्त्री का परम गुण लज़्जा है। उसकी सृजनात्मक शक्ति चाँद जैसी ठंडी आग है। इस कारण उनमें जो एक ग्रेस, एक प्रसाद, आकर्षण है वह पश्चिम की स्त्री में नहीं। जितनी प्रगट होगी, उतना आकर्षण खो जाता है।

स्त्री–यौनिकता का सच

सच है कि स्त्री–पुरूष के बीच 'यौनिकता' के बिना प्रेम और आकर्षण का ज़न्म नहीं हो सकता। यौनिकता तथा प्रसन्नता, यौनिकता और सुन्दरता तथा यौनिकता एवं संतुष्टि के मध्य प्रगाढ़ नैसर्गिक रिलेशन होता है। प्रेम करनेवाला पुरूष अक्सर यहीं आकर गच्चा खा जाता है कि एक नारी अन्य नारियों से भिन्न होती है! सभी नारियां प्रेम, चाहत और यौन के प्रसंग में प्रायः एक जैसी ही होती हैं। स्त्री को पहले मन, फ़िर तन की चाह होती है। प्रेम स्त्री की कोमलता और रागात्मकता में जहां वृद्धि करता है, वहीं सेक्स उसकी कोमलता को कम कर डालता है। यही वज़ह है कि स्त्री प्रेम में तो सर्वत्र कोमलता पसंद करती है परन्तु सेक्स में पुरूष की कोमलता नहीं, बल्कि कठोरता पसंद करती है। स्त्री का अपना स्वभाव ठंडा होता है और वह जल जैसी होती है जो बाह्य अग्नि की गरमी पाकर ही गरम हो सकती है, स्वयं से नहीं होती। स्त्री चाय के बैग की तरह होती है, जब तक उसे गरम पानी में नहीं डाला जाए, उसके कड़कपन का कुछ अता–पता नहीं चल सकता। प्रेम और सेक्स दोनों को स्त्री उपन्यास की तरह जीती है जबकि पुरूष लघुकथा की तरह मात्र पढ़ता–भर है। नारी के मामले में पुरूष का समय पर चुक जाना सबसे बड़ी भूल मानी जाएगी। कोई भी स्त्री अपना पूरा प्रेम पति या प्रेमी के नाम नहीं कर पाती। स्त्री प्रेम, रोमांस और सेक्स तीनों एक साथ ही पसंद करती है। सबसे पहले वह प्रेम चाहती है, प्रेम के लिए भागती है, तिरछी नज़रों के कामुक वार–प्रहार करती है, नाज़ो–अदा, नख़रों, हाव–भाव, चितवन से घायल करती है। जबकि पुरूष स्त्री के मामले मे परिचित देह से अपरिचित देह की यात्रा मात्र करना चाहता है–चाहे स्त्री सुन्दर हो या असुन्दर! किसी भी परिचित या अपरिचित महिला के साथ पुरूष सीधे–सीधे यौन–संबंध बनाने की ही बात पहले सोचता है और पहली मुलाकात में ही उसे कामुक सेक्सी महिला की नज़र से देखने लगता है। पुरूष के लिए स्त्री के चरित्र और चरित्रहीनता का मामला शारीरिक घटनाओं से तय होता है। स्त्री सेक्स को प्रमुख जीवनशक्ति ज़रूर मानती है, मगर सेक्स के पहले चाहती है कि उसका मन चित्त और तन पहले चुराया जाय! सेक्स उसके लिए आख़िरी कलात्मक एवं सृजनात्मक प्रेमोत्कर्ष का देह–व्यापार होता है। कहा गया है कि स्त्री–पुरूष के बीच बेवफ़ाई, बलात्कार छोड़कर सारे रिश्ते ज़ायज होते हैं। स्त्री प्रेम की मिट्टी से बनी होती है, इसलिए उसके प्रेम को अवैध कहना स्त्रीत्व का अपमान होगा। उसके लिए प्रेम कभी भी अपवित्र नहीं होता! जिस सेक्स से सृष्टि की रचना होती है, उसे अपवित्र कैसे कहा जा सकता है? प्रेम के पावन सघन उफान पर सेक्स अपवित्र, अश्लील, गुनाह, अनैतिक हो ही नहीं सकता। वास्तविक

दृश्यों को क़तई अश्लील नहीं कहा जा सकता! हर काम का एक समय होता है और वह समय अपने स्वभाव के अनुसार परिस्थिति विशेष में स्वतः प्रकट हो जाता है। जब बहुत अधिक उत्सुकता बढ़ जाती है तो परिस्थिति खुद ही सबकुछ समझाने की व्यवस्था कर देती है। एकदम तो कुछ नहीं होता, समयानुसार ही जो होने को होता है, हो जाता है! स्त्री–पुरूष को भिन्न–भिन्न स्थितियों का सामना करना ही पड़ता है। नर–नारी का संबंध बड़ा ही रहस्यमय है और आवश्यक रूप से अनावश्यक है, दोनों एक–दूसरे के मामले में कभी सहज हो ही नहीं सकते। हम किसी नदी के उस जल में पुनः स्नान नहीं कर सकते, जिस जल में पलभर पहले ही डुबकी लगायी गई हो। एक–दूसरे की रिक्तता को भरने के लिए प्रकृति और हालात अनुकूल हो ही जाते हैं।

स्त्री–प्रेमः समर्पित भावदशा

स्त्री का प्रेम अथाह है, अगम्य है, अनन्त है, उसे पूरा नहीं पा सकते। ग़हरा नहीं, ग़हरा होता तो नाप–ज़ोख कर लिया जाता। स्त्री का प्रेमः एक प्रश्न है और प्रश्न क़ीमती है, जिसका कोई उत्तर नहीं है, न हो सकता है! रहस्य का अनुभव किया जाता है, खोला नही जा सकता। इसके होने में डूबना होता है, क्योंकि स्त्री का प्रेम न तो अर्थपूर्ण है, न अर्थहीन है, बस है! इसको जानने की चेष्टा ही क्यों?इसे जीएं। प्यास है तो पीएं, क्या करेंगे जानकर कि प्यास का क्या अर्थ है और पानी का क्या मतलब है। शराब से भरी सुराही से शराब छलकने को राज़ी है, हम जाम बनें, पास आएं, जाम को भर देने को राज़ी है। कवि वही हो सकता है जिसने प्रेम का अनुभव किया है। स्त्री के सघन प्रेम का। मगर यहां दर्पण को कौन देखता है, दर्पण तो बहाना है, दर्पण में हम अपने को देखते हैं। आज के संदर्भ में स्त्री हो या पुरूष किसी को जैसे प्रेम से कुछ लेना–देना नहीं है, अपना गुणगान सुनने को दोनों उत्सुक है। दोनों एक–दूसरे की आंखों में अपनी ही तस्वीर देखते हैं। जो भी तस्वीर को ख़ूब रंगीन बनाकर बता देता है, उसी को हम कहते हैं प्रेम। जिससे भी अहंकार की पुष्टि होती है, उसी को कहते हैं प्रेम। यह तो घूम–फ़िरकर अपने को ही प्रेम करना है। यह दूसरे को प्रेम करना थोड़े ही है। आज का प्रेम छलांग लगाता है। जो मिल गया, उससे हट जाता है ! किसी और पर ख़ोज शुरू हो जाती है। क्योंकि जो मिल गया, लगता है कहां प्रेम है?एक स्त्री मिल गई, एक पुरूष मिल गया, प्रेम कहां है! तीन तरह के प्रेम हैं। एक तो है किसी के शरीर के साथ प्रेम में पड़ जाना। वह ज़ल्दी ही आता–चला जाता है, वासना है। दूसरा प्रेम है–किसी के मन के साथ प्रेम में पड़ जाना, यह ज़्यादा देर टिकता है। तीसरा प्रेम है–किसी की आत्मा के साथ, फ़िर तो पूरा खुला आकाश है। पहला है सेक्स, दूसरा प्रेम, तीसरी प्रार्थना। प्रेम में पड़ी स्त्री की चाल में प्रसाद, वाणी में मिठास, चेहरे पर सौंदर्य स्पष्ट झलकता है। स्त्री–पुरूष प्रेम पाने की दौड़ में कितने संबंध बना लेते हैं! जिस स्त्री से दूर हैं, उसके प्रति प्रेम मालूम होता है, जैसे ही कब्ज़े में आ जाती है, प्रेम छलांग लगाकर किसी और स्त्री पर सवार होने लगता है। जो मिल गयी, उससे हट जाता है। पर स्त्री रस में सुख की भ्रांति बनी रहती है। कोई स्त्री इतनी सुंदर होती ही नहीं जितनी आंख बंद कर लेने से सुंदर हो जाती है। वास्तविक स्त्रीः थोड़े–से परिचय में ही उसका सौंदर्य तिरोहित हो जाता है, सारा रस फ़ीका–फ़ीका! दो–चार दिन में ही स्त्री के शरीर का पूरा भूगोल पहचाना जाएगा, सब नाप–ज़ोख हो जाएगा। फ़िर... पूरब की स्त्री इसलिए अपने को छिपाती है, पश्चिम की स्त्री अपने को उघाड़ती है, इसलिए उसमें रस नहीं दिखता। पुरूष प्रेमी कम, कामी अधिक है–वह कृपणतापूर्वक स्त्री की देह को देखता है। स्त्री के प्रेम में समर्पण होता है, इसलिए प्रेम में हारकर भी जीत जाती है और पुरूष जीतकर भी हार जाता है। स्वीकार और अंगीकार करती है, ग्रहणशीलता में ही स्त्री का सुख है। उसे जीतने की कोई आकांक्षा नहीं है। परिपूर्ण भाव से स्वीकार, इसी से उसमें सौंदर्य है। जैसी है, वैसी ही परम तृप्त, ग़हरा संतोष, एक अहोभाव ! स्त्री को प्रेम का अनुभव पुरूष से ज़्यादा होता है। स्त्री का अनुभव प्रेम का बहुत बड़ा है, बहुत समग्र है। फ़िर भी कोई स्त्री प्रेम–निवेदन नहीं करती, अगर करे, तो फ़िर पुरूष भाग खड़ा होगा ! उस स्त्री से कोई भी पुरूष बचेगा, जो उसका पीछा करे ! पुरूष का अनुभव प्रेम का बहुत छोटा है, आंशिक है। स्त्री में एक काव्य है, सत्य है। चुपचाप मौन में, इशारों में 'नहीं–नहीं' कहती हुई भी स्त्री नहीं कहती है, तो वह भी स्वीकार है। वह 'नहीं' ही कहती है, लेकिन इशारों से 'हां' कहती है। उसके चेहरे, भाव–भंगिका से हां और होठों से नहीं ! स्त्री में धैर्य है, प्रतीक्षा है और एक मौन निमंत्रण है। स्त्री–पुरूष दोनों का सुख अलग–अलग होता है। कहने का ढ़ंग, कहने की सुन्दरता ही स्त्री का काव्य है। जो जाना जाता है, उसे फ़िर अनजाना नहीं किया जा सकता। किसी स्त्री में धोख़ा होता है कि यह रही उर्वशी, फ़िर ज़ल्दी ही धोख़ा टूट जाता है। स्त्री के भीतर भी पुरूष की एक प्रतिमा है, जिसे वह तलाश रही है। मिलती नहीं, कहीं–कहीं, कभी–कभी झलक मिलती है फ़िर ज़ल्दी ही पता चल जाता है कि बहुत फ़ासला है और दूरियां शुरू हो जाती हैं। पास आते–आते सब दूर हो जाता है ! प्रेम नदी का प्रवाह है। कब, किस दिशा में मुड़ जाए, कुछ कहना कठिन है। प्रेम व्यापारियों के लिए नहीं, जुआरियों के लिए है। श्रद्धा है स्त्री ! पुरूष की वह प्रेम की पात्रता, क्षमता नहीं। श्रद्धा है प्रेम की पराकाष्ठा ! तो प्रेम पाने का उपाय है–पाने मत जाओ, देने जाओ। पाने जाते हो, तो चूक जाता है। स्त्री–पुरूष एक–दूसरे के प्रेम में पड़ते हैं, इसलिए कि दूसरे के पास प्रेम मिल जाएगा। न पुरूष के पास प्रेम होता है, न स्त्री के पास। होता तो मांगते क्यों?दोनों में नहीं है। ज़ल्दी ही लगता है कि दूसरा धोख़ा दे रहा है, कुछ मिल नहीं रहा। जैसे दो भिखमंगे भिक्षापात्र लिए एक–दूसरे के सामने खड़े हैं और देने को कुछ है नहीं। जो पुरूष है और स्त्री के विरोध में है उसकी ज़िंदगी में से सारा रस, सारा सौंदर्य सारा प्रेम सूख जाएगा। उसके जीवन में काव्य नहीं होगा। माना कि समस्याएं है, तकलीफ़ें है लेकिन ये सदा से हैं और सदा रहेंगी, इस कारण प्रेम से अपने को बचा लेना ख़तरनाक है। पकड़ने में, मोह में बंधन है, अधर्म है–उपयोग करने में नहीं, भोगने की कला धर्म है, बिना कला के भोगे, तो पशु। सुख को कोई नहीं छोड़ सकता। स्त्री में सुख है–पुरूष की बड़ी भ्रांति है, जैसे रस्सी में सांप ! सत्य के जगत में क्या प्रथम, क्या अंतिम?जैसा है, है ! पाप है तो पाप, बुरा है तो बुरा, भला है तो भला ! स्त्री का प्रेमः एक बार उतर गए, तो डूबते ही चले जाना है। हर घड़ी मिलता है कि पूरा मिला और फ़िर भी बढ़ता है, विस्तृत होता ही चला जाता है। विस्तार की सीमा कभी नहीं आती। फ़ैलाव अंतहीन है। सागर को कहीं चम्मच से तौला जा सका है ! आनंद का फूल खिलता ही चला जाता है, पूरे से भी ज़्यादा और पूरा... और पूरा और परिपूर्ण खिलता चला जाता है। बीच की सीमा टूट जाती है। दोनों एक–दूसरे में बहने लगते हैं। थाह नहीं मिलती। जो थाह लेने का प्रयास करता है, पिघल जाता है, विलीन हो जाता है। मन कहीं खो जाता है। अज्ञात से परिचय होता है, अनज़ान से मुलाकात होती है। इधर खाली हुए, उधर भरे ! सत्य के पास नग्न, शून्य, रिक्त होकर ही जाना पड़ता है। इतना विराट कि कोई फ़ैसला नहीं हो पाता ! नदी स्वयं ही संभाल लेती है, नदी डुबोती नहीं। कोई डूबता है तो अपनी ही उलटी–सीधी हरक़तों से। छोड़ दें स्वयं को पूरी तरह उस पर तो मार्ग मिल जायेगा।

स्त्री–मनः यौनपक्ष

नारी–मन का दमन नहीं किया जा सकता, क्योंकि उसमें भाव प्रबल होता है और मस्तिष्क गौण। क़द–काठी, शारीरिक गठन, सुन्दरता और

बाह्य स्वरूप की ओर स्त्री अधिक आकर्षित होती है। महिलाएं अनाकर्षक और अप्रेमी पुरूष को पसंद नहीं करतीं, क्योंकि उनका आकर्षण प्रत्यक्ष और देखादेखी से प्रभावित होता है। अनाकर्षक पुरूष चाहे लाख गुणवान हो, महिलाएं उसे नकार देती हैं। अस्तित्व में कुछ रहस्य ऐसे हैं जिसे पूरी तरह कोई समझ नहीं सकता। यह संसार है और संसार का ढ़ंग पूरा होने को है ही नहीं! सब कुछ दूर से सुन्दर है, पास आकर सब विकृत! हर घट से यहां प्यास नहीं बुझायी जा सकती। प्याला बदलते ही अमृत भी ज़हर बन जाता है। यहां सारे मधुकलश विषभरे हैं। असलियत तब मालूम होती है, जब पी लेते हैं। प्रेम अगर बोधपूर्वक, होशपूर्वक न हो, तो वासना बन जाता है! कुछ भी पानी पर खींची लक़ीर से अधिक नहीं होता। खींचते ही मिट जाता है। जब पार हो ही गये नदी तो फ़िर नौका की ज़रूरत नहीं रह जाती। बुद्ध पुरूष भी यहां भोजन करके थाली वहीं छोड़ देते हैं। जब भी जो जैसा है, वैसा न देखकर उससे अन्यथा उसे समझना धोख़ा है। पहिये की कील प्रत्येक स्थिति में स्थिर रहती है, पहिया तो सभी स्तरों पर चलता रहता है।

स्त्री–पुरूष दोनों की भाषा

अलग–अलग है, बड़ी विपरीत है, मार्ग अलग–अलग है, लेकिन मंज़िल एक ही है। जब वसंत आता है, वृक्ष अपने पूरे उभार पर होता है तो फूल खिलेंगे ही, गंध बिखरेगी। दीप जलेगा तो ज्योति भी झरेगी। स्त्री का तन पूरी तरह उसके मन और भाव के अधीन होता है। हितोपदेश में पर–नारी, परकीया के संदर्भ में कहा गया है– स्त्री–संग सेक्स में तेज़ का नाश होता है, बात करने से यश का नाश होता है, प्रीति करने से धन का नाश होता है, अधिक आसक्ति से शरीर का नाश होता है, संग करने से पौरूष का नाश होता है, कलह करने से मान का नाश होता है, विश्वास करने से सर्वनाश होता है। पुरूष नारी का आनंद उठा सकता है, उसका उपयोग–उपभोग भर ही कर सकता है लेकिन ज़रूरी नहीं कि उसे समझ भी सके। सदुपयोग करने में कोई अधर्म नहीं! महिलाएं मानती हैं कि जिस ऐन मौक़े पर पुरूष को भय और दबाव से सर्वाधिक मुक्त होकर मन से मज़बूत, निर्बोझ, निर्भार, निर्द्वन्द्व, निष्फिक्र और निश्चिंत होने की ज़रूरत होती है, ठीक उसी समय पुरूष इन्हें अपने उपर लाद लेते हैं और ढ़ह जाते हैं। अधैर्य, गंभीरता और ज़ल्दबाजी ही पुरूष की चूक के स्पष्ट कारण होते हैं। प्रकृति और नारी के लिए न जाने कौन–सी विकृति पुरूष की चूक के स्पष्ट कारण होते हैं। प्रकृति और नारी के लिए न जाने कौन–सी विकृति पुरूष के भीतर घुसती–बढ़ती चली जा रही है कि वह सूना–सूना, खोखला, भयभीत, लुटा–सा दिख रहा है। उमंग–उत्साह से लगातार चूकता हुआ। क्या खो गया है पुरूष से?इस उद्वेग, असंतोष का कारण क्या है?क्या किसी बड़े अभाव ने आक्रमण किया है, कुछ बड़ी चीज़ गुम हो गयी है?जो है प्रेम–भावना का अभाव!जिसने सब कुछ होते हुए भी–कुछ भी नहीं जैसी स्थिति में उसे ला पटका है। स्त्री हो या पुरूष प्रेम जीवन की सबसे बड़ी विभूति है और इसको लगभग विस्मृत जैसा ही कर दिया गया है, अंतरंग को भुला दिया गया है। प्रेम जो आत्मा की प्रकृति और प्रवृत्ति है, स्वभाव है। आज की आंतरिक रिक्तता प्रेम–भावनाओं के कुंठित हो जाने के कारण है। साधन होते हुए भी घोर दरिद्र और दयनीय स्थिति में। एक ही करण है किसी को अपना और अपने को किसी का न समझना। इन्द्रिय सुखों, तृष्णाओं, वैयक्तिक सम्पन्नता की सुखकांक्षा में उलझा मनुष्य तड़प रहा है।

स्त्री की प्रेम–खोज़ : पुरूष से अलग

हाथ तो मिला लेते है, पर जीवंत स्पर्श नही कर पाते हैं। हाथ में हाथ लेकर भी एक–दूसरे से अलग–थलग ही रहते हैं। हम हताश, रिक्त, खाली ही अनुभव करते हैं। हम निगलते हैं। आहिस्ता–आहिस्ता स्वाद–मिठास ही नहीं बन पाते हैं। स्त्री–पुरूष सब अज़नबी हैं। अपनी अलग–अलग यात्रा है। थोड़ी देर का मिलन है। कितने ही निकट आ जाएं, तो भी दूरी रहेगी। जितने ही निकट आएं, दूरी है। पास आकर पता चलता है कि दूरी के मिटने के उपाय ही नहीं हैं। दूरी का मिटना असंभव है। शरीर ही पास–पास होंगे, भीतरी दूरी बनी ही रहेगी। स्त्री अपने ख़्याल में, पुरूष अपने ख़्याल में ! स्त्री के पास उसका मन है। पुरूष के पास उसका मन है। इन दोनों का कैसे मिलन होगा?मिलन झूठा है। सपना है। और जहां बाहर–भीतर की दूरी गिर जाएगी, वहीं प्यार तृप्त होगी। वहीं मिलन हो सकता है। कितने ही कुओं से पानी पी लें, प्यास न बुझेगी। कितने ही घाटों पर भटकें, भटकाव ही रहेगा। अपना तो कोई हो ही नहीं सकता यहां। अपना होने का कोई उपाय नहीं है। पास होकर भी अज़नबी। कोई भी अपने वश में नहीं है। फ़िर किसी और के वश में कैसे हो सकता है?सब अपना–अपना खोज रहे हैं। हर कोई अपना खेल खेल रहा है। स्त्री को कोई ज़ल्दी नहीं है, इसलिए पुरूष हजार बार व्यर्थ जाता है, असफल होता है, वापस भेज दिया जाता है। मुट्ठी के भीतर रहस्य समा नहीं सकता। कितना भी चले। पहुंचता कहीं नहीं। दोनों एक–दूसरे से दूर ही नहीं, विपरीत भी हैं। नदी को क्या लेना–देना?कोई पहुंचे या न पहुंचे। वह तो अपनी धार में बह रही है। इस प्रेम में कोई कहीं पहुंचता नहीं। दोनों वहीं–के–वहीं रह जाते हैं। इसमें बह ही जाना है पूरे। प्रेम को भी थोड़ी दूरी चाहिए, निजता चाहिए, अकेलापन, स्वतंत्रता चाहिए। सात फ़ेरे लगाने से ही स्त्री पुरूष की नहीं हो जाती । कुछ हल नहीं होता । जहां थे वहीं होते हैं।

स्त्री का सहज प्रेमधर्म

हमें समझना होगा कि ऐसा कोई धर्म नहीं जो सर्वदा सर्वथा सबके लिए लागू हो। देश काल पात्र परिस्थिति स्वभाव के अनुसार धर्म भी बदलते रहते हैं। सभी धर्म अपेक्षित होते हैं, अवस्थाओं, परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं और जो बुद्धिमान होते हैं वे स्वयं अपना मार्ग पा लेते हैं। जिससे अपना उपकार हो, आज वही धर्म है और जिससे अपने को कष्ट पहुंचे वही पाप है–यही आज की धारण है। अष्टांग मार्ग नहीं–मिष्टांग मार्ग, मध्यम मार्ग ही सच है! संसार में कुछ सार नहीं है। किसी वस्तु का सार उसमें प्रवेश करने से ही मिलता है। प्रेम एक इन्द्रधनुष है। उसमें सभी रंग है– निम्नतम से लेकर श्रेष्ठतम तक, काम से लेकर राम तक। प्रेम कोई एक आयामी घटना नहीं है, बहु–आयामी है। शरीर का प्रेम पशु जैसा है, इसमें प्रेम की भ्रांति ज़्यादा, प्रेम का अस्तित्व कम है। एक प्रतिशत प्रेम, निन्यानवे प्रतिशत रसायनशास्त्र, शरीर के तल पर मात्र। शरीर के तल पर जो प्रेम है, उसमें प्रेम है ही नहीं, केवल विपरीत का आकर्षण है, रहस्य के प्रति झुकाव। स्त्री की क्षमता, धैर्य, सहनशीलता पुरूष से बहुत ज़्यादा है। उसमें एक तरह की समतुलता है, प्रसाद है, गोलाई है, गहराई है, गंभीरता है, स्थिरता है। स्त्री एक तरह से अनुपात में होती है। पुरूष से कम बीमार पड़ती है, पुरूष से ज़्यादा देर में वृद्ध होती है, ज़्यादा समय तक युवा रहती है, ज़्यादा समय तक सुन्दर रहती है और पुरूष से ज़्यादा जीती है–सारी असुविधाओं के बीच में। प्रकृति ने उन्हें सहने की क्षमता दी है। स्त्री को बहुत लगाव होता है मेरे–तेरे में, इर्ष्या होती है मेरे–तेरे की, स्त्री को रस होता है मेरे में, अकड़ होती है मेरे की। पुरूष को मैं का घमंड होता है और दूसरों की रस्सियों में उसे सांप अधिक दिखाई देता है, अपनी रस्सी में नहीं। पुरूष का मन स्त्री के प्रति स्वस्थ नहीं है। अत्यंत अस्वस्थ, रूग्ण और बीमार है। स्त्री के प्रति पुरूष के प्रेम में देह अधिक है। पूरब में लोग कहते हैं अपनी पत्नी के सिवाय किसी स्त्री से संबंध बनाया तो पाप। पश्चिम का कहना है, जिससे प्रेम नहीं उसके साथ कोई संबंध बनाया, तो पाप! फिर चाहे वह अपनी पत्नी ही क्यों न हो। अगर उससे

प्रेम नहीं है, तो उसके साथ यौन–संबंध पाप है। और जिससे प्रेम है, वह चाहे अपनी पत्नी न भी हो, उसके साथ यौन–संबंध पुण्य है। पूरब की नीति शरीर के तल पर खड़ी है, पश्चिम की नीति मन के तल पर। पश्चिम में कोई पति–पत्नी किसी एक के साथ नहीं टिकता। पत्नियां न मालूम कितने पतियों के पास गई हैं, पति न मालूम कितनी पत्नियों के पास गए हैं, बच्चों की भीड़ बढ़ती जाती है, तया करना भी मुश्किल हो जाता है, कौन किसका बच्चा है?कुछ बच्चे पति के हैं जो वह दूसरी पत्नियों से लाया है। कुछ पत्नी के हैं, जो वह किन्ही दूसरे पतियों से लाई है। कुछ इन दोनों के बीच में। सेक्स है दो शरीरों का मिलन और अंत में विषाद होता है, पश्चाताप होता है। प्रेम सेक्स से बेहतर है। दो दीयों को पास रख दें, तो काम। दो दीयों को कितना ही पास रखो, दूरी रहेगी। सटाकर रख दो, फ़िर भी दूरी रहेगी, उसमें एकात्म नहीं हो सकता। काम है देह से देह की आकांक्षा, शरीर से शरीर का मिलन। स्थूल का स्थूल से मिलन। पदार्थ का पदार्थ से। देह दो हो, हृदय एक हो जाए तो प्रेम। सेक्स के तल पर एक–दूसरे का शोषण है। सागर का पानी पीने से प्यास बुझती नहीं, बढ़ती है। इसीलिए सेक्स के तल पर तृप्ति नहीं है! सेक्स तृप्त नहीं करता, अतृप्त कर जाता है। कौन सी स्त्री किस पुरूष से तृप्त हुई है? सेक्स के तल पर स्त्री–पुरूष दोनों भिखारी एक–दूसरे के सामने होते हैं और किसी के पास देने को कुछ नहीं होता। दोनो की भाषा बड़ी अलग है, बड़ी विपरीत है। जो जहां है, जैसा है, अगर वहीं सुखी नहीं है, तो फ़िर कहीं भी सुखी नहीं हो सकता और जो जहां है, जैसा है, वहीं सुखी है तो वह कहीं भी सुखी हो सकता है। वह जो निष्क्रिय होता है, उसे चरम स्थिति तक जाने के लिए कई स्तरों से गुजरना पड़ता है और उसकी कोई ज़िम्मेवारी भी नहीं होती। स्त्रित्व आलसी, उदासीन और सुस्त होता है। अनंत ग़हरे सागर में नाव की स्थिति है पुरूष की लंबी क्रीड़ा के बाद, लंबे इन्तज़ार के बाद, लंबी प्यास के बाद ही...! उड़न–छू निग़ाह से कुछ भी देखना, भोगना उसके स्वभाव में नहीं। वह जो भी भोगती है अपनी पूरी इयत्ता के साथ! खानेवाले तोड़ने में कोई कोताही नहीं करते परन्तु इससे पेड़ का कुछ नहीं बिगड़ता। विषय भोग से कभी सुखी–संतुष्ट नहीं हो सकती। क्या देवताओं ने भी भोगों के द्वारा अपनी पत्नियों को संतुष्ट किया है?आधान्तवन्तो भार्याया देवा। नारी अविधा है, जड़ है, भोग्य व चंचल है, परिणामशील है। जबकि पुरूष अपरिणामी, चैतन्य, भोक्ता, असंग है।

स्त्री की यौनशुचिता

किसी भी स्त्री की यौनिकता, यौनशुचिता, यौनपवित्रता, यौनस्वतंत्रता, यौनउपयोगिता उसका अपना निजी मामला है। शुचिता अगर स्त्री खोएगी, तो किसी अन्य पुरूष के ही साथ न। अपने जीवन की निजता में कौन, कहां, कैसे, क्यों कितना सुखी–दुःखी है, यह उसका स्वाधीन मामला है, व्यक्तिगत विषय है। इससे हम मतलब रखना छोड़ दें। स्त्री के व्यक्तित्व के बहुत सारे आयाम होते हैं। पुरूष से ज़्यादे, इसलिए उसकी स्मृति अधिक ग़हरी और जीवंत होती है। एक साथ बहुतेरे कामों को सभालने की उसकी क्षमता अधिक होती है। आज सर्वत्र नारी–देह का खुला विज्ञापन है। दर्शन भी 'द' अक्षर से ही प्रारंभ होता है। नारी को न खीज़ते देर, न रिझते देर। भोग ही सभी संबंधों और कर्मों का आधार है। पहले का प्रेम चरम स्तर का था, आज का प्रेम चर्म–कोटि का। आज के प्रेम में रोमांस नहीं– रोम–मांस है। अपने घर की हस्तिनी की गतिविधि से अपरिचित हर कोई पराये घर की परकीया कामिनी के पीछे परेशान है। महानगर की नारियां रस–रंग की गगरियां छलकाती चलती हैं। उनमें अनेक स्वाधिनपतिका होती हैं। कुछ क्षिप्रलब्धा तुरंत ही सेवा में हाजिर हो जानेवाली भी होती हैं। आज की उत्तर आधुनिक नारी स्वयंभरा–अपना भरण–पोषण स्वयं करनेवाली हैं। प्रोषितपतिका–कमा कर पति का पोषणकरनेवाली, पति की मांग पूरा करनेवाली हैं। भोगमाया बनकर रिझाती भी नज़र आती है। केवल बहिरंग देखकर सत्य का ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए सौंदर्य–प्रतियोगिताओं के खुले यौनअखाड़े में ये नागिनें कंचुकी और नीवी के बंधन को केंचुल की तरह उतार फेंकने में भी कोई संकोच नहीं करतीं। मोहिनीमाया बनकर अपना अमृतकलश छलकाती अक्सर दिखाई पड़ती हैं। आज की तेज़–तर्रार आधुनिकाएं दो मुट्ठी मांस को छोड़कर शेष को बंधनमुक्त कर रही हैं, उदारहृदया बनकर जीतने में बाजी मार रहीं हैं। फ़ैशन पैसन है। आधुनिकाएं घाटियों के बीच में ले जाकर गला काटती हैं। इन्द्रिय निरोध के बदले गर्भ निरोध है। उन्मुक्त गंगा बह रही हैं। जो चाहे बहती गंगा में हाथ धो ले, स्नान कर ले, डूब कर पानी पी ले।यहां तो लोग उलटी गंगा बहाने से भी परहेज़ नहीं कर रहे।

धर्मग्रंथों में स्त्री–प्रसंग की उपयुक्तता

पुराणों में क्या कोई कम अश्लीलता या अगम्यगमन है?कुल स्त्री सेवनं कुर्यात् सर्वथा परमेश्वरि। रमेत युवतीं कन्यां कामोन्मत्तं विलासिनीम्। कुल–स्त्री का उन्मुक्त भोग करना चाहिए, विशेषतः कामोन्मत्ता विलासिनी युवती का। मर्य इव युवतिभिः समर्षति सोमः। कलशे शतयाम्ना पथा (ऋगवेद 9/86/16) –"यह रस उसी प्रकार कलश में जा रहा है जैसे युवती में जार काकृकृ–"सरज्जारो योषणां, वरो न योनिमासद्म।(ऋगवेद 9/101/14) "कलश में अनेक धारों से रस का फुहारा छूट रहा है। जैसे युवतियों में..." सीत्कारो मंत्ररूपस्तु वचनं स्तवनं भवेत्। मर्दनं तर्पणं विद्धि वीर्यपातः विसर्जनम्"।। रतिसंगम के समय सीत्कार वचन ही असली मंत्र–स्त्रोत हैं, मर्दन ही तर्पण है, वीर्यपात ही विसर्जन है। प्रकृतिः परमेशानि वीर्य पुरूष उच्यते। तयोर्योगः महेशानि योग एव न संशयः।। प्रकृति (स्त्री) और पुरूष (वीर्य) का संयोग ही योग है–ज्ञानार्णवतंत्र। अग्नि से ईंधन तृप्त नहीं होती, सभी जल समुद्र में प्रवेश कर जाए, तो भी जल से समुद्र तृप्त नहीं होता, सभी जीवों का भक्षण करके भी काल तृप्त नहीं होता, आकाश के सारे बादल बरस जायें, तो भी धरती तृप्त नहीं होती, इन्द्रियां विषयों के सुख से तृप्त नहीं होतीं, मन कामनाप्रों की पूर्ति से तृप्त नहीं होता, स्त्रियां रतिसुख से तृप्त नहीं होतीं– आदि एवं अंत से रहित होती हैं। अविरल मंथन द्वारा शक्ति–सामर्थ्य चुक जाने के बाद भी। बस आग में घी ही का काम करता है–असंतोष ही अधिक भरता है। स्मृतिग्रंथों में उल्लेख है–न स्त्री दुष्यति जारेण–जार–कर्म से स्त्री दूषित नहीं होती। रजःस्त्राव होने पर स्त्री शुद्ध हो जाती है। रजसा शुद्धयते नारी। जिस प्रकार बहती धारा में कोई दोष नहीं, उसी प्रकार स्त्री में कोई दोष नहीं लगता। गीता में कहा गया है–स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः। जब कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं तो वर्णसंकर पैदा होते हैं, जो कुल का नाश कर डालते हैं। न कामिनीनो कामश्च श्रृंगारेण निवर्त्तते। अधिकं वर्द्धते शश्वत् यथाग्निर्घृतधारया।। जैसे घी की धारा से अग्नि की ज्वाला शांत नहीं होती है, उसी प्रकार यौनसमागम से कामिनी कभी तृप्त नहीं होती। यदि समागमक्रिया के बीच में ही बाधा पड़ जाए या पुरूष अन्यत्र स्खलित हो जाए, तो स्त्री के लिए इससे बढ़कर दूसरा दुःख नहीं हो सकता। रतिभंगो दुःखमेकं द्वितीयं वीर्यपातनम्। रतिभंगेन यद्दुःख तत्समं च स्त्रिया (ब्रह्मवैवर्त पुराण) इंगितेनैव नारीणां सद्यो मत्तं भवेन्मनः। करोत्याकृष्य संभोगं यः स एवोत्तमो विभो।। ज्ञात्वा स्फुटमभिप्रायं नार्या संप्रेषितो हि यः। पश्चात् करोति संभोगं पुरूषः स च मध्यमः।। पुनःपुनः प्रेरितस्य स्त्रिया कामार्तया च यः। तयान लिप्तो रहसि स क्लीवो न पुमान हो।। (ब्रह्मवैवर्त पुराण) "उत्तम पुरूष वह है जो बिना कहे ही, नारी की इच्छा जान, उसे खींचकर यौनसमागम कर ले। मध्यम पुरूष वह है जो नारी के कहने पर रतिसमागम करे। और, जो बार–बार

कामातुरा नारी के उकसाने पर भी यौनसम्पर्क नहीं करे, वह पुरूष नहीं, नपुंसक है!" यदि कामवती दैवात् कामिनी समुपस्थिता। स्वयं रहसि कामार्त्ता न सा त्याज्या जितेन्द्रियैः। ध्रुवं भवेत् सोऽपाराधी तस्या अद्यावमानतः।। (ब्रह्मवैवर्त पुराण) "यदि संयोगवश कोई कामातुरा एकांत में आकर स्वयं उपस्थित हो जाये तो उसे कभी नहीं छोड़ना चाकिए। जो कामार्त्ता स्त्री का ऐसा अपमान करता है वह निश्चय ही अपराधी है।"न कांचन स्त्रियंस्वात्मतल्प प्राप्तां परिहरेत् समागमार्थिनीम् "जो स्त्री शय्या पर समागम के लिए आ जाए, उसे नहीं छोड़ना चाहिए।" वृहदारण्यक में लिखा है– यस्य जाया वे जारः स्यात् तं चेद्विष्यादाय पात्तेऽग्निमुपसमाधाय (वृहदारण्यक 6/4/12) किसी की स्त्री हो, किसी के साथ शयन करे, जरा–सा घी में आग डाल दो, किस्सा ख़त्म! व्यभिचार क्या हुआ। एक खेल हो गया। जिन्दगी में हसना चाहिए, फंसना नहीं।शास्त्रानंद प्रिय है, उससे भी प्रिय है काव्यानंद, संगीत का आनंद उससे भी बढ़कर है। उससे भी प्रबल है विषयानंद। शास्त्र, काव्य–संगीत, सबको पछाड़ देती है कामिनी। रति का द्वार अवरूद्ध होने पर उपरति का द्वार खुलता है। 'न जाने संसारः किममृतम् किं विषमयं।'

स्त्री की स्त्रैणता का संदर्भ

प्रकृति का गूढ़ रहस्य है कि वीर्य अन्यत्र उत्पन्न होता है और संतानोत्पादन के लिए अन्यत्र जाता है। कभी तो वह योनि में पहुँच कर गर्भ धारण कराने में समर्थ होता है और कभी नहीं होता। यहां कोई पालकी ढोता है, कोई पालकी में बैठकर चलता है, कोई स्त्री–रहित है, कई पुरूष कई स्त्रियोंवाले हैं। पुरूष घृतकुंभ, स्त्री अग्निकुंड! उसी स्त्री से उत्पन्न पुरूष पुनः उसी का भोग करता है। किसी को उसके स्वभाव के विरूद्ध देखना ही बंधन है, धोख़ा है। मध्यवयसी को प्रेम के साथ शरीर की भी प्यास रहती है। इसलिए अक्सर ठगी जाती हैं। जबकि मध्यवयसी पुरूष भावनात्मक सुरक्षा अधिक चाहते हैं। जैसे दही का सार माखन है, इसी प्रकार धर्म और अर्थ का सार काम है। जैसे फूल से उसका मधुरस श्रेष्ठ है, उसी प्रकार धर्म और अर्थ से काम श्रेष्ठ है। काम ही धर्म और अर्थ का कारण है। धर्म, अर्थ और काम तीनों का एक साथ ही सेवन करना चाहिए। त्रिवर्ग में सम्यकरूप से अनुरक्त उत्तम है। जिस कर्म से कुछ कामना है, वह धर्म नहीं हो सकता।धर्म, अर्थ और काम–अधर्म छोड़कर ही सिद्ध होता है। दृश्य के सम्मोहन मे भाव, विचार कर्म से नहीं जुड़ना ज्ञान है। चिर पिपासु पुरूष सदा से रसकलश की ओर लपकता आया है और मोहिनी माया अपना अमृतकलश छलकाती हुई नचाती आयी है। माया के कारण मुट्ठी–भर मांस पर रोमांस चलता है। कंचनजंघा में सारी शक्ति चुक जाती है। वेदग्रंथों में स्वच्छंदगामिनी नारी को शूकरी समान कहा गया है। पर पुरूष–गामिनी स्त्री को कुंभीपाक नरक में जानेवाली कहा गया है। फ़िर चौरासीलाख़ योनियों में खुल्लमखुल्ला समागम का नियम किसलिए?नर–नारी में फ़िर इस प्रकार का यौन–संबंध क्यों? घृतकुंभ समा नारी तप्तांगार समा पुमान्। एक पति से संसर्ग होने पर पतिव्रता, दो से कुलटा, तीन से घर्षिणी, चार से पुंश्चली, पांच–छः से वेश्या, सात–आठ से पुंगी और उसके उपर महावेश्या! जिससे आत्मरक्षा हो, शरीर का धारण संभव हो, अधिकतम आनंद की प्राप्ति हो, सृष्टि का प्रवाह चलता रहे–वही धर्म है! सवाल है कि कौन बुद्धिमान भूसा छुड़ाने के डर से धान का फेंक देता है?क्या कांटों के डर से कोई मछली खाना छोड़ता है?मच्छरों, मेहमानों के डर से मकान बनाना बंद कर देता है? नीवि–विमोचन में भी कुछ श्रम पड़ता है, तो क्या विवाह नहीं किया जाए?स्त्री प्रसव–वेदना के डर से गर्भ ही धारण न करे?तो पुरूषार्थ क्या रहेगा?स्वार्थ के लिए ही यह संसार है। आज अजंता–एलोरा की मूर्तियां सजीव होकर नगरों में विचरण कर रही हैं। आज जीवन–दर्शन 'यौन–दर्शन' में परिणत हो गया है। आभार प्रदर्शन की जगह 'उभार–प्रदर्शन' शिष्टाचार है।

स्त्रियों के संदर्भ में मध्यकालीन एवं वैदिक प्रवृत्ति

मध्यकालीन स्त्रियों द्वारा लिखे गये कुछेक वैदिक ऋचाओं, मंत्रों एवं तमाम पदों तथा कविताओं से यह स्पष्ट है कि सदियों से स्त्री एवं स्त्री संबंधित प्रश्न उपेक्षित रहे हैं। मध्यकाल में आधी आबादी की भूमिका पर नज़र डालें, तो पाते हैं कि 'मूलतः अनैतिक प्रवृत्ति की मूर्ख' समझी जाने वाली स्त्रियों ने तत्कालीन राजनीति को काफी प्रभावित किया। बावजूद स्त्रियों की स्थिति दोयम् दर्ज़े की ही रही है और अपनी जैविक आकांक्षाओं के साथ कभी नहीं जी सकी। हर युग में स्त्री की यौन–शुचिता और दैहिक पवित्रता आगे आ जाती रही है। मध्यकाल में इसी यौनशुचिता और दैहिक पवित्रता के बंधन में बांध कर स्त्रियों को गुलाम बनाया गया और हरम में क़ैद कर लिया गया। मध्यकाल में स्त्रियों को हरम में भीषण देहशोषण और तमाम तरह की बंदिशों, वर्ज़नाओं एवं यातनाओं से होकर गुजरना पड़ा और उससे पहले धर्म के नाम पर स्त्रियों को भीषण योनिशोषण से होकर गुज़रना पड़ा। वैदिक काल के दौरान सभ्यता के उषा काल में महिलाओं की स्थिति काफ़ी बेहतर थी। लेकिन कर्मकाण्ड और बाह्य आडंबरों के कारण धर्मतंत्र मज़बूत होने से पैतृकसत्ता धर्मतंत्र से गठज़ोर कर अपनी भोगवादी लिप्सा को शांत करने के लिए भीषण योनिशोषण की ओर प्रवृत हुआ, जिसे 'धर्म सम्मत यौन शोषण' कहा जा सकता है। वैदिक परम्पराओं के ही चलते भारत में धर्म के नाम पर देवदासी प्रथा जैसी वैश्यावर्षत्ति तथा यौन–दुराचार की नींव पड़ी। भीषण योनिशोषण वैदिक नैतिकता के अभिन्न अंग है, क्योंकि कर्मकाण्डों में हवनकुंड को योनि तथा पुरूष लिंग को हवि (लकड़ी, घृत आदि) माना गया है। ऐसी मान्यताओं पर आधारित एक ऋग्वैदिक फ़ार्मूला प्रस्तुत है– ''तां पूषंछिवतमा मेरयस्व बीजं मनुष्या एवपंति। या न ऊरू उशती विश्रायते तस्यामुशंतः प्रहराम शेवम्।'' अर्थात् पूसा(एक देव) की वंदना करते हुए पुरूष कहता है कि उस नारी को कामातुर करके भेजो, ताकि वह हमारी जंघाओं की कल्पना करती हुई अपनी जंघाओं को फ़ैलाए और हम उसके जननांग पर अपने प्रजननांग से प्रहार करें। वैदिक आर्य ने पुत्र प्राप्ति या अपनी आबादी की वृद्धि के लिए यौनाचार को यज्ञों से जोड़ दिया था। इसके लिए आर्य यज्ञस्थल पर ही अनगिनत स्त्रियों के साथ सामूहिक संभोग में मस्त हो जाते थे। एतरेय ब्राह्मण नामक ग्रंथ के अनुसार एक प्रचलित कर्मकांड का नाम 'सोम कर्मकांड' था, जिसके तहत् संभोग करना आवश्यक अंग था। ऐसा ही वर्णन 'कौस्तिकी ब्राह्मण' नामक ग्रंथ में भी किया गया है। इन्हीं ब्राह्मण ग्रंथों में स्त्री को हवनकुंड अग्नि माना गया है तथा उसकी योनि को ईंधन तथा पुरूष के लिंग प्रवेश द्वारा संपन्न संभोग को अग्नि, ज़्वाला, चिंगारी आदि माना गया है।''

धर्मसम्मत यौनशोषण महिलाओं पर थोपा जा रहा था। वैदिक समाज में स्त्रियों को देह के उसी दायरे में देखा जा रहा था, जिस दायरे में आज भी देखा जा रहा है। कर्मकांड के नाम पर भीषण देहशोषण किया जा रहा था। वैदिक आर्यों ने पुत्र प्राप्ति या अपनी आबादी की वृद्धि के लिए यौनाचार को यज्ञों से जोड़ दिया था, जो आगे चलकर कर्मकांडों तथा तंत्रसाधना में कामविकृति का रूप ले लिया। निरोग की प्रथा भी इसी कारण प्रचलन में आयी। वैष्णव साहित्य ने स्त्रियों ने माया का प्रलोभन कहा, अस्वच्छता, मिथ्यावादिता, चोरी, व्यर्थ झगड़ालू प्रवृत्ति, हिंसक, इन्द्रियलोलुप कहकर निकृष्ट जाति के रूप में वर्णित किया तथा इनके दासत्व को एक आदर्श तथा आत्मिक समृद्धि के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। भागवत्पुराणकार ने भक्ति में स्त्रीभाव की छवि को उकेरा और ईश्वरोपासना का स्त्रीकरण भी किया, जिसमें संपूर्ण समर्पण के भाव

निहित हैं। भक्त को प्रेमपीड़ित स्त्री कहा और ईश्वर को इसका चित्त चोर।

मध्यकालीन काव्य के अगुआ कवि कबीरदास स्त्रियों को मूलतः अनैतिक प्रवृत्ति का मानते हैं। ये अपनी रचनाओं में लगातार पानी पी–पी कर स्त्रियों को गाली देते हैं। कुलटा, रंडी, नागिन, गंवार, कुलबोरनी आदि शब्दों से सामान्य स्त्रियों का परिचय देते हैं। इनका वैदिक दृष्टिकोण सामान्य स्त्रियों के प्रति विरोधाभासों से भरा हुआ है। मानुष सत्य की बात करनेवाले संत कबीर का स्त्री–संबंधी दृष्टिकोण परंपरागत दुविधाग्रस्त मानसिकता की ओर ही इशारा करता है। तमाम प्रगतिशीलता के बावजूद कबीर नारी की संगति को अत्यंत दूषित और अकल्याणकारी बताते हैं। उनके अनुसार नारी की छाया–मात्र से विषधर अंधा हो जाता है। स्त्री तो सुंदर नागिन(कामिनी सुन्दर सर्पिणी, जो छेड़े तिहि खाए) या उससे भी बदतर है, यहां तक कि सुन्दर स्त्री से अच्छा तो फांसी का फंदा है (कबीर सुन्दरि ते सूली भली)। यदि माया जगत को जलाने वाली आग है, तो स्त्री ज्वाला है। इसलिए कबीर कहते हैं कि, 'स्त्री चाहे पत्नी हो या कोई अन्य, उसकी संगति नरक को ले जाता है– 'कबीर नारी पराई अपनी, भुगत्या नरकि जाये। आगी–आगी सब एक है तामैं हाथ न बांहि।' ''स्त्री न सिर्फ़ 'जगत का मल' है, वह अच्छी वस्तु में भी बुरापन खोज़ निकालती है, अधम नर ही उससे प्रेमलीला करते हैं, चरित्रवान पुरूष उससे परे ही रहते हैं। स्त्री नरक का कुण्ड है, इसमें गिरने से विरले ही बच पाते हैं (कबीर नारी कुण्ड नरक का, बिरला थामे बागि),

स्त्री ऐसा ज़हरीला फल है जिसे छूनेवाला जलता है और खानेवाला तो मर ही जाता है।'' कबीर की रचनाओं के एक खण्ड में स्त्रियों को पुरूष की मुक्ति के मार्ग में रोड़ा बताया गया है। वह भौतिक जगत में माया का मूर्त रूप है और आध्यात्मिक जगत में माया का मानवीकरण। माया एक कामोद्धत दुराचारिणी स्त्री का आदर्श रचती है जिसने विवाह संस्था का उल्लंघन किया है। वह मीठा बोलकर बहकानेवाली स्त्री है(माया महाठगिनि)। वह एक निष्ठुर वेश्या है, जो पुरूष को अपनी अदाओं से रिझाती है किंतु किसी को भी अपना स्वामी नहीं मानती। स्त्री कपटी है, विश्वासघातिनी है, पापिन–डाकिनी है जो पुरूषों को खा जाती है। कबीर के अनुसार, 'वह एक ऐसी कुंवारी है जो विवाह से इनकार करती है, फ़िर विवाह के बाद एक ऐसी अनिच्छुक पत्नी बन जाती है जो माया को छोड़ ससुराल नहीं जाना चाहती। यदि ससुराल में प्रवेश भी करती है तो पति या सांई के साथ दैहिक संबंध नहीं रखना चाहती।' माया रूपी स्त्री पितृसत्ता की मूल्य संरचना को धता बताती है।

कबीर सहृदय जनों से सवाल करते हैं कि, 'यदि कोई वेश्या अनेक पुरूषों के साथ सहवास करती है तो वह जलेगी किसकी चिता पर?चूंकि स्वतंत्र रूप से देहव्यापार करनेवाली वेश्याएं पितृसत्तात्मक मानदंड को तोड़ रही थी, विवाहसंस्था को नकार रही थीं। स्वामी एवं दासी का संबंध टूट रहा था। जिसे लेकर कबीरदास जैसा प्रगतिशील कवि भी अपने आध्यात्मिक क्षणों में बिम्ब गढ़ते हैं, प्रतीक का चयन करते हैं तो उनके मानस–पटल पर स्त्री और स्त्री के ये ही रूप क्यों आते हैं?दरअसल ''स्त्री स्वर एक ख़ास भाव–विन्यास का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक विशेष सामाजिक संबंध को व्यक्त करता है, दासत्व के एक विनम्र किंतु प्रबल रूप का प्रतीक है।'' इसका जन्म पितृसत्तात्मक दासत्व से हुआ है।' स्त्रियां सम्पूर्ण सेवाभाव से पुरूष सत्ता के सम्मुख प्रस्तुत हुआ करती थीं। स्त्रीत्व की अवधारणा आध्यात्मिक क्षेत्र में गुढ़ रहस्यों और अबोध गम्य संबंधों तक संसीमित रही जो स्वैच्छिक गुलामी तथा स्व–अवमानना को एक भावात्मक संवेग प्रदान करता है। स्त्री–पुरूष संबंधों में कोई भौतिक संबंध नहीं हो सका। स्पष्ट है नर स्वभाव ने औरत की सारी स्वतंत्रता को छीन कर उसे अपने ही घर में कैद कर दिया। इस विकृति ने स्त्रियों का लगातार शोषण किया। स्त्रियों की स्थिति न सभ्यता के उषाकाल में सही थी और न ही मध्यकाल में।

प्रेम–अहसास और स्त्रियां

प्यार एक अहसास है, अनेक भावनाओं का सम्मिश्रण है, एक मज़बूत आकर्षण और पर्सनल अटैचमेंट के शक्तिशाली भाव की चरम दशा है। यही वज़ह है कि जिससे प्यार होता है, उसके साथ भावनात्मक संबंध बहुत ही ग़हरा हो जाता है। प्यार की कोई निश्चित उम्र या समय नहीं होता है। यह तो जब होना है, बस हो जाता है, अपने आप। कभी हो सकता है। यह तो एक प्रबल सांवेगिक चुम्बकीय अहसास है जो कभी भी, किसी से भी, कहीं भी और किसी को देखकर हो सकता है, जो समय के साथ गहरा होता जाता है। यह प्यार अनायास ही हो जाता है। अक्सर प्यार वहीं परवान चढ़ता है जहां आकर्षण ज़्यादा होता है। कभी–कभी आकर्षण वासना के कारण भी हो जाता है और ऐसा आकर्षण ज़्यादातर सिर्फ़ दैहिक मिलन और सेक्स पर आकर रूक जाता है या ख़त्म हो जाता है। सच है कि समय के साथ–साथ सब कुछ बदलता चला जाता है, पहलेवाली बात ही नहीं रह जाती। परन्तु सच्चा प्यार हमेशा बना रहता है क्योंकि सच्चा प्यार वासना नहीं, उपासना है, दो आत्माओं का सात्विक व आध्यात्मिक मिलन है। आज के बदलते परिवेश में प्यार के मायने बदलते जा रहे हैं। बदलते दौर में मन के साथ–साथ तन का आलिंगन, दैहिक संसर्ग और यौनसुख पर आधारित हो गया है प्यार। यौन के जैविक मॉडल में प्यार को भूख, प्यास की तरह दिखाया जा रहा है। सीमाओं, मर्यादाओं, लक्ष्मण रेखाओं का उल्लंघन कथमपि प्यार नहीं हो सकता। प्यार तो भावनाओं का परस्पर विनिमय है। सच है कि सच्चा प्यार किसी एक से ही हो सकता है क्योंकि इसमें प्रतिबद्धता और ज़िम्मेवारी होती है। दूर होने पर भी मन और भावनाओं के तार दिल, आत्मा से सीधे जुड़े होते हैं। इसमें सोच, अनुभूति और सपने एक हो जाते हैं। सच्चा प्यार कभी भी किसी को देखते ही नहीं हो जाता है। एक–दूसरे को जानने और समझने के बाद ही होता है। इसमें कोई जल्दबाजी नहीं होती। इसमें एक ठहराव होता है, समझदारी होती है, परिपक्वता होती है, भरोसा होता है और परस्पर भावनाओं का सम्मान होता है।'प्यार' किसी भी स्त्री के लिए सबसे प्यारा, सबसे अज़ीज, सबसे स्पेशल और इस संसार का सबसे खूबसूरत शब्द होता है। प्यार स्त्री के अस्तित्व का सार है, अर्थ है, सारांश है और स्त्रीत्व की महिमा एवं गरिमा है। प्यार ही स्त्री की शक्ति है, सत्ता है, पवित्रता है और सार्थकता है। स्त्री का प्रेम अथाह है, अगम्य है, अनंत है और ग़हरे–से–ग़हरा है। स्त्री का प्रेमः एक प्रश्न है और प्रश्न क़ीमती है, जिसका कोई उत्तर नहीं है, न हो सकता है! स्त्री के प्रेम–रहस्य का अनुभव मात्र किया जा सकता है, उसे खोला नहीं जा सकता। इसके होने में डूबना होता है, क्योंकि स्त्री का प्रेम न तो अर्थपूर्ण है, न अर्थहीन है, बस है! इसको जानने की चेष्टा ही क्यों?इसे जीएं। प्यास है तो पीएं, क्या करेंगे जानकर कि प्यास का क्या अर्थ है और पानी का क्या मतलब है। शराब से भरी सुराही से शराब छलकने को राज़ी है, हम जाम बनें, पास आएं, जाम को भर देने को राज़ी है। स्त्री के प्रेम में समर्पण होता है, इसलिए प्रेम में हारकर भी जीत जाती है और पुरूष जीतकर भी हार जाता है। स्वीकार और अंगीकार करती है, ग्रहणशीलता में ही स्त्री का सुख है। उसे जीतने की कोई आकांक्षा नहीं है। परिपूर्ण भाव से स्वीकार, इसी से उसमें सौंदर्य है। जैसी है, वैसी ही परम तृप्त, गहरासंतोष, एक अहोभाव ! स्त्री को प्रेम का अनुभव पुरूष से ज़्यादा होता है। स्त्री का अनुभव प्रेम का बहुत बड़ा है, बहुत समग्र है। फ़िर भी कोई स्त्री प्रेम–निवेदन नहीं करती, अगर करे,

तो फ़िर पुरूष भाग खड़ा होगा ! उस स्त्री से कोई भी पुरूष बचेगा, जो उसका पीछा करे ! पुरूष का अनुभव प्रेम का बहुत छोटा है, आंशिक है। स्त्री में एक काव्य है, सत्य है। चुपचाप मौन में, इशारों में 'नहीं–नहीं' कहती हुई भी स्त्री नहीं कहती है, तो वह भी स्वीकार है। वह 'नहीं' ही कहती है, लेकिन इशारों से 'हां' कहती है। उसके चेहरे, भाव–भंगिका से हां और होठों से नहीं ! स्त्री में धैर्य है, प्रतीक्षा है और एक मौन निमंत्रण है। कहने का ढ़ंग, कहने की सुन्दरता ही स्त्री का काव्य है। स्त्री–पुरूष दोनों का सुख अलग–अलग होता है। किसी भी स्त्री के लिए प्रेम समर्पित भावदशा का नाम है। प्यार होते ही स्त्रियों की पूरी मेंटलिटी, ज़्योग्राफ़ी, कैमेस्ट्री बदल जाती है। पूरी ज़िन्दगी ही बदल कर नयी–नवेली हो जाती है। प्यार को हर स्त्री किसी रोमांटिक उपन्यास की तरह जीती–भोगती है। चूंकि स्त्री हृदयप्रधान और भावप्रधान होती है, इसलिए प्यार में डूब कर, खो जाती है, चाहत की विशाल ग़हराई में विलीन हो जाती है और प्यार में पूरी तरह एब्ज़ॉर्ब्ड होकर जैसे मुकम्मल प्यार ही बनकर रह जाती है। प्रेम का अहसास स्त्री की सोच में, विचार में चाल में, व्यवहार में, मानसिकता में हर प्रकार से पूरी तरह प्रविष्ट होकर रह जाता है। सच ही कहा गया है कि पुरूष के लिए प्रेम अन्य सारे कार्य–व्यापारों में एक काम है जबकि स्त्री के लिए एक मात्र प्रेम ही काम है। यही कारण है कि किसी भी स्त्री का प्यार पुरूष की तुलना में कहीं अधिक ग़हरा, तरल, सघन और टिकाऊ होता है तथा उसमें स्थायित्व, लगाव, आत्मीयता, अंतरंगता और ग़हराई अधिक पाई जाती है। स्त्री में प्रेम की ऊष्मा, आवेग, संवेग और मात्रा पुरूष की तुलना में सौ गुनी अधिक पायी जाती है। संसार की कोई भी स्त्री अथ–से–इति तक सम्पूर्णरूपेण अद्द शुद्ध प्रेम ही होती है, प्रेम की ही भाषा और परिभाषा होती है, प्रेम और रोमांस की चाहत से लबरेज़ होती है। प्रेम पाने की प्यास हर स्त्री के दिल में स्वतः सहज प्रकृतिवश होती है।

भाव और प्रेम स्त्री की सम्पदा है।कोई भी स्त्री सब कुछ सह सकती है लेकिन प्रेम का अभाव किसी भी सूरते–हाल में बरदाश्त नहीं कर पाती! जब भी कोई स्त्री प्यार में पड़ती है तो उसकी आदतों में कई तरह के बदलाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लग जाते हैं। कहा भी गया है कि इश्क और मुश्क छिपाए नहीं छिप पाते। प्यार में पड़ते ही स्त्रियों की पूरी कैमेस्ट्री ही जैसे बदल जाती है, उसकी ज़िन्दगी ही जैसे महक उठती है। उसके व्यवहार में स्पष्ट परिवर्तन परिलक्षित होने लगते हैं। सिर–से–पांव तक उसमें प्रेम की बारीक भाषा को सहज ही पढ़ा जा सकता है, अनुमान लगाया जा सकता है।

ग्लोबली उत्तर आधुनिक होती स्त्रियाँ : दशा और दिशा

आज की भागदौड़भरी आपाधापीमयी प्रतिद्वन्द्वात्मक बेहद तेज़ रफ़्तार संक्रमित ओपन बाज़ारवादी उपभोक्तावादी तनावपूर्ण अपसंस्कषति की बाढ़ में, ग्लोबली स्त्री–विमर्श की देहवादी सोच और यौन–मानसिकता की विकृत आवोहवा में पश्चिमी यौन–उन्मुक्तता की रंगरेलियों की गुप्त चाहत लिए पोर्न की सक्रिय होती गतिविधियों तले बड़ी ही तेज़ी से आधुनिक होती महिलाओं के लिए अब पूरी तरह बदलने लगी हैं– प्यार, सेक्स, विवाह और रिश्ते की तमाम परम्परागत परिभाषायें ! स्त्री की यौनेच्छाओं, लालसाओं, ख्वाहिशों, चाहतों के व्यापक विस्तष्त क्षेत्र अब अधिक गोपनीय और वर्ज़ित नहीं दिखते। उत्तर आधुनिक महिलाओं की नई ज़मात अब अपने घर, कार्यस्थल और अपने यौन–संबंधों को लेकर अपनी पसंद–नापसंद ज़ाहिर करने में संकोचहीन हो चुकी हैं। महिलाएं लोक–लाज़, आनंद, मर्यादा और ज़रूरतों के बीच झूलती हुई भी बिना किसी कुंठा, हिचक–झिझक के अपने अधिकारों की निःसंकोच मांग करने लगी हैं और हर संभव तरीक़े से अपनी संतुष्टि चाहती हैं, अपने सुख का सर्वोपरि ख़्याल करती हैं। महिलाएं आज ऊपर से सहज और सामान्य भले ही दिखती हों, मगर उनके अंदर में कैसी हलचल मची है और अपने भीतर में क्या महसूस कर रही हैं–यह सर्वथा अलग ही राज़भरी कहानी है। खुलकर आज की नई सोच–विचारवाली महिलाएं उस परम गोपनीय चरम अनुभव की समूची अंतरंग सक्रियता जान लेना चाहती हैं, जिसे 'सेक्स' कहा जाता है। शत्–प्रतिशत् आज की उत्तर आधुनिकाएं बाहर से निर्दोष, मासूम और भोली–भाली, संतुलित तथा बिल्कुल सामान्य–सहज दिखती हैं, पर उनके भीतर क्या तूफ़ान मचल रहा होता है, अन्दर में कैसी ख़लबली ख़ौल रही होती है–पुरूष इस सच्चाई से पूरी तरह बेख़बर होता है, इसका अन्दाज़ा तक नहीं लगा सकता ! यह रहस्य की वह बात है जिसे कोई भी महिला कभी ज़ुबान तक नहीं लाती ! महिलाओं में बाहर की बात कुछ होती है, परंतु उनके अंदर में सुलगते ज़्वालामुखी की ख़बर कुछ और ही विस्फोटक होती है ! आज की उत्तर आधुनिक महिलाओं की निजी इच्छाओं, पर्सनल स्पेस का खुला, कठोर, नग्न सच कुछ अलग ही ख़ास अंदाज़ लिए होता है–आक्रामक, व्यावहारिक, व्यावसायिक और अपने ही मतलबी तेवर में, कभी–कभी प्रतिशोधात्मक भी ! इन महिलाओं की आंतरिक कामनाएं बेहद व्यक्तिगत, अंतरंग और सुदूर ग़हराई तक धँसी हुई होती हैं, उनका कुछ भी सतह पर परिलक्षित नहीं होता। पुरूष यहाँ अक्सर धोख़े ख़ा जाते हैं। फ़ास्ट होती महिलाओं के तन–मन और भावनाओं की सूक्ष्म परख़, उनकी इच्छाओं–ज़रूरतों की समझ वैसे भी पुरूष के वश की बात नहीं होती। आज का खुला सत्य तो यह है कि स्त्री–पुरूष के बीच प्रेम, सेक्स, चाहत, रोमांस, आकर्षण, विवाह, रिश्ते को लेकर धारणाओं, व्यवहार, सोच, मानसिकता और पसंद–नापसंद में काफ़ी कुछ फ़र्क आया है। प्यार का यौन–संबंधों में तब्दिल होना बिना शर्त्त, बग़ैर किसी टैबू के बेरोक–टोक तीव्र गति से निरंतर ज़ारी है। सच तो यह है कि महिलाएं भी आज पुरूष की बराबरी की होड़ में बराबर का 'सेक्स–हक़' चाहने लगी हैं! खुले विचारों की खुली–खुली महिलाएं सेक्स के मामले में भी खुली दिखने लगी हैं, खुला–खुला यौन–व्यवहार चाहने लगी हैं। आज की महिलाएं सेक्स में किसी दूसरी दुनिया की संभावना तलाशती नज़र आ रही हैं। घर–घर संचार माध्यमों से परोसी जा रही अश्लीलता, इंटरनेट पर उपलब्ध पोर्न सामग्रियां, पोर्न फ़िल्में, कामोत्तेजक दष्श्य–संवाद, धारावाहिकों में आगम्य–गमन, परकीया प्रेम, विवाहपूर्व तथा विवाहेतर सेक्स–संबंधों वाली धारावाहिकों, नग्नता की हद तक खुलापन महिलाओं के लिए यौनानंद की अनुभूतियों को परवान पर ले जानेवाले साबित हो रहे हैं! महिलाओं के लिए हर प्रकार के खट्टे–मीठे यौन–अनुभवों के लिए नए–नए मौक़े हर रोज़–रोज़ जैसे द्रुत गति से बढ़ते ही चले जा रहे हैं!

स्त्रियाँ:बदलाव के प्रति कटिबद्ध

हालिया इंडिया टुडे सेक्ससर्वेक्षण रिपोर्ट के अनुसार आज की महिलाएं बदलाव के हर झरोख़े से जैसे झांक लेना चाहती हैं, तन–मन की आज़ादी, अंतरंगता और मान–सम्मान हासिल करने के हर संभव अवसरों को क़ैश कर लेना चाहती हैं। उनके लिए एक क्षण के लिए भी रोमांस, रंगीनी, चाहत, प्रेम, मौज़–मस्ती, यौनाकर्षण और अंतरंग भावनात्मक आत्मीयता और अंतरंगता की ख़ास अहमियत होती है। ऐसी नाज़ुक स्थिति में उनके साथ कभी भी, कहीं भी, कुछ भी ऐसा–वैसा, प्रिय–अप्रिय, अनुकूल–प्रतिकूल घट जाने की प्रबल संभावना से कतई इन्कार नहीं किया जा सकता है। प्यार या भावना आज के बदलते दौर में अब अधिक विशेष मायने नहीं रखती ! देह मात्र उनकी है और अपनी देह पर सिर्फ़ महिलाओं का ही निजी अधिकार है, वो जैसे चाहें अपनी देह का इस्तेमाल करें ! ऐसी सोच उत्तर आधुनिक महिलाओं की बनती हुई दिख रही है। यही कारण है कि उनमें मौज़–मस्ती की खुली चाहत

बढ़ी है ! विवाहपूर्व सेक्स और विवाहेतर सेक्स की बड़े पैमाने पर धड़कनें सुनाई देती हैं! सेक्स से भावना को अलग कर देने का नया फ़ैशन तेज़ी से बढ़ा है। महिलाएं अपनी यौन–इच्छाओं का खुलकर इज़हार करने के प्रति अधिक ढीठ तथा घष्ट होती नज़र आ रही हैं। अपनी यौनेच्छाओं, भावनात्मक, ज़रूरतों और फ़ंतासियों के लिए निरंतर खुलती जा रही हैं! पोर्न की भरमार से महिलाओं का सेक्स–जीवन प्रभावित हुआ है। इसी वज़ह से स्त्री–पुरूष रिश्तों में अनचाहे या ज़बरन सेक्स, आकस्मिक सेक्स, वन नाइट स्टेंड, वाइफ़ स्वापिंग के मामले तेज़ी से बढ़ते ही जा रहे हैं। आज की मॉडर्न बोल्ड प्रगतिशील आधुनिक हो रही महिलाओं के लिए सेक्स कोई रिश्ता, कोई साहचर्य नहीं, भावनात्मक उबाल नहीं, बल्कि काम–उत्तेजना की एक दैहिक क्रिया अधिक होने लगी है, जो औरतों के व्यवहार के बारे में एक शुद्धतावादी नज़रिए से घिरा होता है। कभी–कभार सेक्स के मौक़े तलाशने की संख्या में बेतहाशा वृद्धि होती दिख रही है। 'एक रात का संसर्ग', भावनाओं से इतर कभी–कभार यूं ही अचानक सेक्स की तरफ़ उन्मुक्त सोचवाली महिलाओं के तीखे रूझान का स्पष्ट संकेत है। कुछ तेज़–तर्रार महिलाएं सहकर्मियों के साथ कभी–कभार सेक्स के लिए भी खुली पायी जा रही हैं। आज का पुरूष अपनी पत्नी का कौमार्य अक्षत होने की उम्मीद नहीं पालता। महिलाओं की लालसाओं को पति द्वारा नहीं समझ पाने की स्थिति और पति की मर्दानगी की नाकामी महिलाओं को पराये मर्द के साथ सेक्स करने पर पूरी तरह मज़बूर करती है। चतुर्दिक ओपन यौनिकता की नयी दुनिया में नए–नए प्रयोगों के लिए आज की महिलाएं ग्लोबली ज़्यादे ही निःसंकोच हुई हैं और लगातार खुल रही हैं। सेक्स को लेकर शुद्धतावादी दृष्टिकोण ढ़ीला पड़ने से विवाह से इतर भी देह की दुनिया की संभावना बनने लगी है। सेक्स को महज़ एक गेम, प्ले, फ़न, क्रीड़ा और एक्सपेरिमेंट के रूप में अपनाने का जैसे प्रचलन होता जा रहा है। विवाह एक कर्त्तव्य है लेकिन रोमांचक सेक्स स्त्री–पुरूष के लिए कुछ अलग ही सुखद अहसास–स्वाद देता है। सेक्स अब एक आदत, एक अधिकार का दावा ज़्यादा ही दिखने लगा है। सेक्स में सजग और आक्रामक होती महिलाओं के सामने मौक़े पर पुरूषों को पौरूषहीनता का अधिक सामना करना पड़ रहा है। ग़हरे प्यार में भी पश्चिमी तर्ज़ पर प्रयोगधर्मी यौन–उन्मुक्त महिलाएं कई पुरूषों के साथ हमबिस्तर होने से नहीं झिझकती दिखतीं।

स्त्रियाँ: निःसंकोच स्वीकारोक्ति

महिलाओं की बड़ी संख्या को एक रात के संबंध से कोई आपत्ति नहीं दिखती। सिर्फ़ एक रात के यौन–संबंध के लिए महिलाएं तेज़ी से आगे आ रही हैं। वन नाइट स्टैंड में महिलाओं को अब अधिक दिक्कत महसूस नहीं होती। महानगरों की आवोहवा में अधिकांश एकल महिलाएं सेक्स का अनुभव प्राप्त कर चुकी पायी जाती हैं। एक रात हमबिस्तर होने में कुछ ग़लत तो नहीं, ऐसी सोच महिलाओं की बनती दिखने लगी है। प्रेम, लगाव, संवेदना, भावुकता, अपनापन, ईमानदारी तथा जैसे शब्द से रिक्त होता जा रहा है सेक्स। आज की सुपर फ़ास्ट महिलाएं निःसंकोच स्वीकारती हैं कि पुरूष को उन्हें ढ़ंग से प्यार नहीं कर पाते हैं, बेहतर सेक्स के लिए पुरूषों के पास कम समय होता है। अधिकांश महिलाओं का मानना है कि उनके पति पांच मिनट से भी कम समय के लिए उन्हें प्यार कर पाते हैं। अधिकांश महिलाएं कम समय के प्यार और सेक्स से अधिक असंतुष्टि अनुभव करती हैं। कौमार्य का लेबल अब कम्पलसरी नहीं रह गया है! यौन–शुचिता केवल आदर्श की बात बन कर रह गयी है। हक़ीक़त में यौन–पवित्रता अब अपना गूढ़ अर्थ जैसे निरन्तर खोती ही चली जा रही है। यौन–संबंधों में समर्पणशीलता, एकनिष्ठता, वफ़ा, पातिव्रत्य धर्म पालन में तेज़ी से गिरावट होती देखी जा रही है। मौसम की तरह मानसिकता, सोच–विचार में बदलाव आते जा रहे हैं तथा परस्पर अविश्वास एवं शंका में वृद्धि हो रही है। सच, झूठ, दग़ा, बेवफ़ाई, बेईमानी और फ़रेब–सफ़ेद चादर तले अज़ीब कहानी बन रही है ! महिलाओं के लिए वर्ज़िनिटी की जैसे अहमियत तेज़ी से लुप्त होती जा रही है। पहली बार सेक्स करने की उम्र में भी लगातार कमी होती जा रही है। यहां भांति–भांति के रिश्ते बन–बिगड़ रहे हैं। किसी तरह का भावनात्मक रिश्ता क़ायम किए बग़ैर सेक्स का आनंद, विवाहेतर रिश्ते, कभी यूं ही किसी के साथ, एक रात का साथ, पड़ोसियों, सगे–संबंधियों, यहां तक कि अपरिचित–अनज़ान से भी ऐच्छिक सेक्स की घटनाएं बढ़ने लगी हैं। चौंकानेवाली बात है कि आज की एग्रेसिव महिलाओं को एक रात के लिए मनपसंद किसी साथी के साथ सो लेने में जैसे एतराज़ नहीं रहा। महिलाएं अब अपनी कामुकता और अपनी अतृप्त इच्छाओं के बारे में खुलकर बतियाने लगी हैं। सर्वेक्षण में आज 80 प्रतिशत् उत्तर आधुनिक महिलाओं को यह स्वीकारने में ज़रा भी झेंप नहीं है कि वे अपने साथी के साथ सेक्स के मामले में संतुष्ट नहीं हैं या उनके विवाहेतर यौन–संबंध भी हैं, क्योंकि पति से उनहें सेक्स में संतुष्टि ही नहीं हो पाती है। ये सच है कि काम के बोझ और पारिवारिक ज़रूरतों को पूरा करने में दिन–रात घोर व्यस्त रहने के कारण पुरूषों में न तो सेक्स के प्रति अधिक रूचि रह पाती है, न ही सेक्स के लिए भरपूर ऊर्ज़ा। उनमें कामुकता तो अधिक रहती है, लेकिन महिलाओं को संतुष्ट कर पाने के लिए कामशक्ति कम होती है। उनका ध्यान कैरियर, रोज़ी–रोटी पर ज़्यादे रहता है तथा दिमाग में मानसिक परेशानी, उलझन, तनाव, चिंता अधिक होती है। जिस कारण शारीरिक थकान से चूर रहते हैं। काम का बोझ और पारिवारिक ज़िम्मेदारी पुरूषों की सेक्स की ताक़त को लगातार ही चूसती जा रही है और सेक्स के अवसर पर महिलाओं को देने के लिए उनके पास समय, ज़ोश, रोमांस, ताक़त, ज़िन्दादिली, कोमल भावना, मधुरता और काम–ऊर्ज़ा का पूरी तरह अभाव रहता है। ऐसे में महिलाओं के क़दम डगमगा जायें, तो भला इसमें क्या अनर्थ हो सकता है ?यह भी सच है कि सेक्स स्त्री–पुरूष के जीवन में दबाने–छिपाने या परहेज़ की चीज़ अब नहीं रही, न ही बेवफ़ाई या नन–वर्ज़िनिटी कोई ख़ास बेचैन कर देने वाली या चौंकानेवाली बात! नए दौर की तहज़ीब में खुल कर शुमार हो चुका है सेक्स। इंटरनेट और मोबाईल फोन के युग में रतिक्रिया के विभिन्न कामोत्तेजक दृश्यों की सर्वत्र भरमार है, जिन्हें महिलाएं पोर्न साइट्स पर धड़ल्ले से देखने लगी हैं। 'सेक्स का अनुभव ले लेने में हर्ज़ ही क्या है'–महिलाओं की सोच में यह बात शामिल हो जानी नेचुरल है ! साथी के प्रति वफ़ादारी का नज़रिया भी महिलाओं का बदलने लगा है। पुरूष बेवफ़ा हो सकते हैं, तो महिलाएं क्यों परहेज़ करें ?'विवाह के बाद ही सेक्स'– इस ख़्याल से भी नये ज़माने की महिलाएं अब बहुत आगे निकल चुकी हैं। आकस्मिक सेक्स, मौज़–मज़े, रंगरेलियां और मतलब की यारी में भारी इज़ाफा हुआ है। क्वांटिटी सेक्स में वृद्धि हुई है, परन्तु क्वालिटी सेक्स में अप्रत्याशित कमी आयी है। सर्वेक्षणों में महिलाएं स्वीकारती हैं कि उनके पुरूषों में अब आवेगभरा, आवेशभरा, उन्मादभरा, ज़ोशीला रोमांटिक प्यार से लबरेज़ वेगवान सेक्स की बेहद कमी दिखती है, कामोत्तेजना की प्रचण्डता, ऊष्मा, सक्रियता, काम–तत्परता, यौनशक्ति और स्तंभनशक्ति में भारी गिरावट आयी है तथा सेक्स पावर में अत्यधिक कमी आयी है। पुरूषों में इरेक्टाइल डिस्फ़ंक्शन, उत्थान में कमी, इम्पोटेंसी में अप्रत्याशित वृद्धि दिखने लगी है। यौन–समागम में सक्रियता की अवधि द्रुत गति से घटने लगी है। प्यार की हसीन मीठी बातें, चुम्बन और आलिंगन की ऊष्मा में ठंडापन आया है। भावनात्मक लगाव में, प्रेम के प्रबल उफ़ान पर सेक्स की बात महत्वहीन हो चुकी है।

अधिकांश महिलाओं को यह स्वीकार करने में कतई झिझक नहीं रहा कि वे विवाहपूर्व सेक्स कर चुकी हैं! यद्यपि महिलाएं मानती हैं कि सेक्स करने के लिए प्यार होना ज़रूरी है। आज की चालीस प्रतिशत् महिलाएं हफ़्ते में चार बार तक सेक्स करने की बात स्वीकारती हैं। रोज़ाना यौन–संसर्ग करनेवाली महिलाओं की संख्या बीस प्रतिशत् तक पायी गयी है। महिलाओं में काम की मात्रा अधिक है, जबकि पुरूष में कामावेग अधिक है।

स्त्रियाँ: स्पीडी लाईफ़ में

आज के सुपरफ़ास्ट स्पीडी लाइफ़ में कोई अब पीछे मुड़ कर नहीं देखना चाहता, न ही कहीं एक जगह ठहरना ही चाहता है। सबकुछ इंस्टेंट पा लेना चाहता है– चाहे वह भौतिक संपदा हो, वस्तु हो, चाहे लव, चाहे सेक्स। न तो किसी के पास धैर्य है और न रूक कर भोग पाने का पर्याप्त समय तथा अवकाश। सब जैसे हेस्ट में ही है। मशीनीकरण के इस यांत्रिक समय में सब जैसे ज़ल्दी में है। अब किसी को किसी का केयर नहीं, सब अपने–आप में ही जैसे व्यस्त, अपनी ही सोच में जैसे खोये–उलझे हुए हैं। ऐसे में दाम्पत्य संबंध भी तेज़ी से अपनी मिठास और सरसता खोता चला जा रहा है। एक–दूसरे पर अब कैसा भरोसा और संबंधों में कैसी भावुकता ?क़समें, वादे, कमिटमेंट, प्यार, वफ़ा सब बातें हैं और बातों का क्या ? सर्वेक्षण के अनुसार पश्चिमी महिलाओं में सेक्स–सुख प्राप्त करने के परंपरागत तौर–तरीक़ों, कामसूत्रों के तेवर में भी तेज़ी से बदलाव आया है। उनमें यौन–सुख हासिल करने के क़ायदे भी बदल रहे हैं। 'ओरल सेक्स' के प्रति महिलाओं की सहमति अपने चरम पर सर्वेक्षित हुई है। महिलाओं के लिए यौन–गतिविधियों की फ़ेहरिस्त में 'ओरल सेक्स' सबसे आगे पाया गया है। यह सबसे आम फ़ंतासी में शीर्ष पर है। साठ प्रतिशत् से अधिक महिलाएं इस चरम यौन–सुख को आज़मा रही हैं। 'ऑर्गेज़्म' को लेकर महिलाओं की सजगता व सक्रियता बढ़ी है, पुरानी मिशनरी पॉज़िशन यद्यपि महिलाओं के लिए आज भी अधिक पसंदीदा है। पुरूष प्यार की बातों, आलिंगन, चुम्बन के प्रति बेपरवाह होते जा रहे हैं, जबकि महिलाओं को सबसे अधिक इन्हीं की चाहत होती है। सेक्स महिलाओं के लिए ज़ल्दी की क्रिया और भुलानेवाली गतिविधि नहीं हुआ करती ! पुरूष जैसे फोरप्ले में समय ही नहीं देना चाहते। शीघ्र इससे ऊब जाते हैं। आधुनिक महिलाओं के लिए विवाहपूर्व वर्ज़िनिटी टूटना या सेक्स कोई बड़ी बात नहीं रही ! आज भावनाओं की परवाह किए बग़ैर झटपट सेक्स की संख्या में वृद्धि हुई है। सच तो यह है कि महिलाएं आज सेक्स में वह सब कुछ पाने को इच्छुक हैं, जिनसे वे महरूम रही हैं। वैवाहिक ज़िन्दगी के बाहर यौन–सुख तलाशने का रोमांच जहां महिलाओं में मुखर हुआ है, वहीं पुरूषों में आत्मविश्वास की कमी, मर्दानगी का अभाव अधिक बढ़ा है! सच्चाई यही है कि ग्लोबली महिलाओं की यौन–ज़रूरतों, ख़्वाहिशों में आक्रामकता अधिक बढ़ी है। परस्पर सहमति से यौन–संबंध स्थापित होने की घटनाओं में भी बेतहाशा वृद्धि होती दिख रही है। सर्वेक्षणों में आज उत्तर आधुनिक हो रही 69 प्रतिशत् महिलाओं के लिए अब '69' सिर्फ़ नम्बर ही नहीं रह गया है, बल्कि मज़ेदार सनसनीखेज़ लव–लाइफ़ भी हो गया है। 99 प्रतिशत् महिलाएं स्वीकारती हैं कि किचन में सिर्फ़ खाना ही नहीं बनता, सेक्स भी ज़ायकेदार बनता है। 80 प्रतिशत् महिलाएं सुबह सोकर अपनी नींद पूरी करती हैं, क्योंकि अपने सेक्सुअल लव को रंगीन बनाने के लिए रात्रि–जागरण से उन्हें परहेज़ नहीं है। 100 प्रतिशत् महिलाएं रात में अपना मोबाईल या तो बंद रखती हैं या साइलेंट मोड में । उस समय कोई बिघ्न–बाधा बरदाश्त नहीं है उन्हें। 69 प्रतिशत् महिलाएं सप्ताहंत में अपने बच्चों को ज़ल्दी सुला देती हैं और स्वयं रातभर जगती हैं? 89 प्रतिशत् महिलांए मानती हैं कि कैलारीज सिर्फ़ एक्सरसाइज़ से ही बर्न नहीं होती और अतिरिक्त वसा को घटाने के लिए केवल सैर–सपाटे से ही काम नहीं चल सकता। 85 प्रतिशत् महिलाएं अपनी कामवाली नौकरानी को वीकेंड्स पर छुट्टी दे देती हैं। आज की 99 प्रतिशत् महिलाएं सोने के समय ही सेक्स पसंद करती हैं और सिरदर्द का बहाना बनाना छोड़ चुकी हैं। सचमुच आज की बोल्ड महिलाएं लीक से हटकर बहुत कुछ की चाहत लिए नज़र आती हैं। ज़ी–स्पॉट और ऑर्गेज़्म जैसे शब्दों से आज की महिलाएं परिचित हो चुकी हैं! आज महिलाएं अनिच्छित गर्भ के भय से पूरी तरह मुक्त हो चुकी हैं। गोपनीयता की शर्त्त के साथ चाहत के आधिक्य तथा यौनाकर्षण की बाढ़ में सदाचार के बहने–दहने की घटनाओं में वर्षद्धि हुई है। खाए–अघाए संपन्न वर्ग की ऐश्वर्य–सुख में सराबोर, फ़ेशनपरस्त तथाकथित आधुनिक महिलाओं के लिए जैसे सेक्स ही उनके जीवन का परम लक्ष्य और चरम सत्य बनता दिखने लगा है।

स्त्रियाँ और आर्थिक आत्मनिर्भरता

आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर पश्चिम की यौन–उन्मुक्त अधिकांश महिलाएं फ्री लव और फ्री सेक्स की हिमायती हैं और उनमें अधिकतर विवाह से पूर्व ही यौनानुभव प्राप्त कर चुकी होती हैं। अदम्य यौन–बुभुक्षा की तृप्ति के लिए पुरूष–वेश्या (गे) का इज़ाद होना पश्चिमी सभ्यता की अतृप्त महिलाओं की मानसिकता की ही कुत्सित उपज़ है! आज उन्हें 'वही' चाहिए और जैसे हर क़ीमत पर चहिए। 'ऑर्गेज़्म' को अपना मौलिक अधिकार माननेवली महिलाओं को ऐसी भी सोच विकसित करनी चाहिए कि मातृत्व–सुख से बढ़कर महिलाओं के लिए और कोई सुख संतोष भरा हो ही नहीं सकता! जैसे–जैसे संबंधों में स्वार्थ, अहं की बढ़त होती जाती है– दूरियों, ग़लतफ़हमियों, आशंकाओं, अविश्वासों तथा बेवफ़ाईयों की भी वृद्धि होती जाती है, उसी रफ़्तार से आपस में रिश्ते नीचे गिरते जाते हैं।स्त्री–पुरूष संबंध फूल और मौसम की तरह नव सृजन को समर्पित होते हैं। वो प्रेम–संबंध भी क्या, ज़िसमें हर क्षण पुलकन न हो, मन में उठती हिलोरें कभी सिमटा न दें, तो अगले ही क्षण उन्मुक्त होने के लिए सम्मोहन की हद तक उन्मादी न बना दें, जी–भर चुहल न हो, मान–मनुहार न हो, भावनाओं की बार–बार री–फ़िलिंग न हो, जीने का स्पंदन न हो! रिश्तों को 'जीना' भोगने से बेहतर होता है! आज हमारी ज़िन्दगी समय न मिल पाने के गिल्ट में ही गुज़रती जाती है। जीते हुए भोगने की नई ऊर्ज़ा से हम लगातार चुकते ही चले जाते हैं। आज लंबी भटकन का कारण है कि जो जीवन हम जीते हैं, उसका 'ड्राइवर' हम नहीं होते! अपनी राह ढूंढने के लिए लीक पर हम कभी नहीं चलते। इस–उस रास्ते पर भटकते ही रह जाते हैं। दरअसल कस्तूरी तो हमारे अंदर ही है और हम उसकी खोज़ में दर–दर भटकते ही रह जाते हैं। यह बाज़ारवादी समय है। बाज़ार ने जिस जीवन और समाज का निर्माण किया है– वह न सुंदर है, न समतापूर्ण, न ही सुख–शांतिमय! मूल्य–आदर्श, गरिमा के बिना स्ख़लन हमारी नियति बन चुकी है।

स्त्री–देह: यौन पैमाने पर

यही कारण है कि कला के तमाम माध्यम स्त्री–देह को अपने व्यापार का हिस्सा बनाने पर तुले हैं। महिलाएं सेक्स की विषयवस्तु और देह में ही जैसे सिमटती जा रही हैं! अब तो सर्वत्र जैसे सेक्स ही बिकता है! कपड़े उतारू और कपड़े उघारू क़वायद सिर्फ़ मॉडर्न अर्थवान महिलाओं के लिए हैं। तभी तो तरह–तरह के उत्पादों और व्यापार के मुनाफ़े ने महिलाओं के शरीर पर कब्ज़ा कर रखा है। सवाल उठता है कि क्या महिलाएं एक शरीर और देह–भर ही होती हैं?सार्वजनिक देह! कितनी यौनाकर्षक दिखती हैं, कितनी सेक्स–अपील से भरी–पूरी हैं– क्या यही औरत है?कितने पुरूषों में यौन–कामना जगा सकती हैं कि वे

कब–कैसे उन्हें अपनी सहगामिनी बनाएं– क्या यही औरत है?सिर–से–पांव तक तरह–तरह के 'कोकशास्त्रों' का प्रतीक बनती– क्या यही औरत है?अपने वास्तविक रूप से दूर, अपने सत्य को आवरण में ढकी, जो नहीं होती उसे दिखाने की कोशिश में लगी– क्या यही औरत है?वीमन लिब, स्त्री–विमर्श, महिला–दिवस और महिला–सशक्तिकरण के क़रवटें बदलते इस घोर उपभोक्तावादी बाज़ारू वक़्त में महिलाओं के यौन–जीवन के लिए अफ़सोस, पछतावे, ग्लानि, अधर्म, अनैतिकता, अमर्यादा की सीमा–रेखाएं क्रमशः सिमटती जा रही हैं। छल–कपटभरे दोहरे चरित्र के पुरूष वर्चस्ववादी समाज में आज भी जहां महिलाओं को महज़ एक 'योनि' के सिवा कुछ भी नहीं समझने की मानसिकता बनी हुई है– अफ़सोस तो इस बात का है कि आवरण ओढे महिलाओं की बेचैनीभरी अकुलाहट तथा स्त्रैण–सहनशीलता आज भी उन्हें भीतर से असुरक्षित, असहाय, कमज़ोर, भीरू और देख कर भी अनदेखी ही बना रही है। अपने अस्तित्व के सर्वाइवल के लिए महिलाओं को और भी अधिक आक्रमक तेवर में पूरे दमख़म के साथ ग़हराई तक तगड़ी चोट करनी होगी और उन प्रहारों की दस्तक अभी से पुरूष वर्ग को सुनाई पड़ने लगी है। महिलाओं के विस्तृत यौन–पैमाने पर प्रेम, चाहत, आकर्षण और गरिमामय सेक्स के दृष्टिकोण से पुरूष उत्कृष्ट कलात्मक प्रेमजन्य सेक्स–गतिविधियों से जैसे लगातार ही चुकता व फ़िसलता चला जा रहा है तथा उम्दा परफ़ॉर्मेंस के लिहाज़ से महिलाओं की तमाम यौनाकांक्षाओं की भलीभांति पूर्ति करने के मामले में लगातार फ़िसड्डी ही साबित हो रहा है। आज की महिलाओं की आक्रामक यौन–मुखरता पुरूष की इसी दैहिक, मानसिक व भावनात्मक कमीजन्य असंतोष का ही परिणाम है!आज के समय में लंबी राह का मुसफ़िर कोई नहीं। जहां घंटों में पहुचना चाहिये, वहां मिनटों में ही पहुंच जाने की जैसे सर्वत्र हड़बड़ी मची हुई है। धैर्य और संतोष किसी के पास नहीं। सब कुछ अभी ही चाहिये। यह दौर ज़ल्दबाजी का है, शार्टकट का है, जिसमें स्पर्श की न तो सहजता है, न ग़हराई, न भावुक ऊष्मा, न ही पैशन की पराकाष्ठा। सुविधाएं, सहूलियतें, बाह्य सम्पन्नताएं, चमक–दमक इन्सान को भीतर से क़ायर और कमज़ोर बना देती हैं। भौतिक दूरियां ज़रूर कम हुई हैं, लेकिन दिलों के बीच की दूरियां उसी अनुपात में बढ़ रही हैं।

परस्पर ट्यूनिंग, लव–मेकिंग के अंदाज़ में वो तल्ख़ी ही नहीं रही। नया ज़माना है। समय ने करवट ली है। 04 जी स्पीड के साथ वर्चुअल वर्ल्ड से आज की महिलाएं हर पल कनेक्टेड हो चुकी हैं और अपडेटेड हो रही हैं। ऐसे में अगम्य भी गम्य हो गया ह! महिलाओं में परसेप्शन और कांफ़िडेंस बढ़ा है। ज़ाहिर हो गया है कि देश और काल ही प्रमुख है और जो भी है वह समय है, पात्र से बहुत फ़र्क नहीं पड़ता। खेल में सारे दाव–पेंच चलते रहते हैं और नए–नए खिलाड़ी शामिल होते रहते हैं। महिलाओं में जानकारी का भले ही अभाव हो, समझदारी के मामले में पुरूष से हमेशा एक क़दम आगे ही होती हैं और अपनी छठी इन्द्रिय द्वारा तुरंत भांप लेती हैं कि आगे क्या होनेवाला है?इसलिए बेहतर अंक के लिए पुरूष को महिलाओं का हर चैप्टर ग़ौर से तथा अत्यंत बारीकी से पढ़ना ज़रूरी हो गया है।

अत्यंत ज़रूरी है कि महिलाएं अपनी ख़ूबी–ख़ामी के साथ सही रास्ता पहचानें। पश्चिम की खुली महिलाओं से तुलना करने के चलन से परहेज़ अपेक्षित है। हमारे यहां दूसरों से तुलना का ख़ूब चलन है। दूसरों को देखकर सामान ख़रीदते हैं। देखादेखी कोर्स चुनते हैं। कौन, किस रास्ते को चुन रहा है, इसकी बज़ाय हम किस रास्ते पे जाना चाहते हैं, इसके बारे में सोचना होगा। अंतरात्मा की आवाज़ सुनना होगा, न कि किसी से प्रभावित होकर कोई फ़ैसला लें। वरना जाना था जापान, पहुंच गये चीन वाली स्थिति का सामना करना पड़ेगा। मार्ग नाक की सीध में बिलकुल भी नहीं। दुनिया क्षण–क्षण रंग बदल रही है। आज की विकृत होती अपसंस्कृति में उम्र से पहले ही सयानी व समझदार होती महिलाओं को लगता है कि वे सही हैं। महिलाएं जीवन में वही राह चुन रही हैं, वैसी ही बन रही हैं, वैसी ही प्रतिक्रियाएं अभिव्यक्त कर रही हैं जो अपने आसपास देख–सुन और जान–समझ रही हैं। सच तो यह है कि मातृत्व का अनुपम गौरव ही सम्पूर्ण नारीत्व का गरिमामय अहसास है। स्त्रियों का अथ–से–इति तक सारा अस्तित्व ही मातृत्व है! मां होने और मां कहलाने का सुख तमाम प्रकार के सुखों से बढ़कर होता है। लक्ष्य तक पहुंचने का कोई शार्टकट मार्ग नहीं होता। तेज़ी से डिज़िटल होती जा रही दुनिया, सिमटती जा रही दूरी, इंटरनेट, मोबाईल, पश्चिमी सभ्यता का यौनउन्मुक्त दृश्य–परिदृश्य, पोर्न सामग्रियों की सहज प्रचुर उपलब्धता, दूरदर्शन में परोसी जा रही अश्लीलता, नीली फ़िल्मों की बहुलता, फ़ैशनों के नाम पर नग्नता लगातार मानसिक व वैचारिक विकृतियों, कामुकता और कामोत्तेजना को जन्म दे रही हैं। रिश्तों की मर्यादाएं व पवित्रताएं दूषित व कलंकित हो रही हैं। पश्चिम के अंधानुकरण में उचित–अनुचित के ख़्याल विदा हो रहे हैं। पाप–पुण्य, अच्छा–बुरा, धर्म–अधर्म, नैतिकता–अनैतिकता की धारणाएं तिरोहित हो रही हैं। मूल्यों, आदर्शों, परंपराओं, आस्थाओं का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन हो रहा है। निषेधों, नकारों, वर्ज़नाओं, सीमाओं के प्रति तेज़ी से आकर्षित होने का समय आ गया है। लाज–लिहाज़, संकोच–झिझक समाप्तप्राय हैं। स्वार्थपरता, चालाकी, बेईमानी, धोख़ा, फ़रेब, दगा, बेवफ़ाई, धूर्त्तता, ढ़ोंग आज हमारे संस्कार के जेसे अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं। एक–दूसरे पर भरोसा, विश्वास उठ चुका है। अपनत्व, भाव, प्रेम, संवेदना समाप्ति की ओर है। सिर्फ़ मतलब–से–मतलब रह गया है। यूज़ एंड थ्रो सिद्धान्त और व्यवहार में शामिल हो रहा है। पतन की पराकाष्ठा है यह। यहां रक्षक ही भक्षक की भूमिका में दिख रहे हैं। वर्त्तमान जब इतना अंधकारमय है तो फ़िर भविष्य क्या होगा?

स्त्रियाँ और वर्तमान सामाजिक परिवेश

पारिवारिक, सामाजिक, प्रशासनिक सभी स्तरों पर आज यद्यपि यौन–उत्पीड़न, यौन–शोषण जैसे कलंक भी विद्यमान हैं। पवित्र–से–पवित्र रिश्तों को भी तार–तार किया जा रहा है और किसी भी रिश्ते के हाथों महिलाएं अधिक सुरक्षित दिखाई नहीं पड़ती। परिचित, अपरिचित, रिश्तेदार तक बहती गंगा में हाथ धो लेने से परहेज करते नहीं दिखाई पड़ते। आज स्थिति इतनी बदतर है कि क्या शौच के लिए घर से निकलती महिलाएं, क्या विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय जाने वाली स्त्रियां, क्या वर्किंग वूमन, क्या नौकरीपेशा महिलाएं, क्या विवाहिताएं, क्या अविवाहिताएं, क्या किशोरी, क्या युवती, क्या प्रौढ़ा–कहीं कोई पूरी तरह सुरक्षित दिखाई नहीं पड़तीं। क्या ग्रामीण और क्या शहरी स्त्रियां, क्या आधुनिकाएं और क्या प्राचीन परंपराओं की पोषिकाएं, क्या पढ़ीलिखी और क्या अनपढ़ औरतें–कोई भी घर–बाहर, नौकरी या यात्रा कहीं भी किसी तरह किसी जगह स्वयं को जैसे पूरी तरह सुरक्षित महसूस करने की स्थिति में नहीं है। उनके मन में एक गुप्त भय, एक खौफ़, एक आतंक जैसा हमेशा बना रहता है कि उनके साथ कभी कहीं ऐसा–वैसा कुछ अप्रिय न घट जाये। इससे बड़ा दुर्भाग्य और बदनामी का विषय देश व समाज के लिए और क्या हो सकता है कि भारत में लगातार होने वाले महिला यौन उत्पीड़न के मामलों की खबरें विदेशी मीडिया में प्रमुखता से छाने लगी हैं। और इन खबरों का दुष्प्रभाव यह होता है कि सुसंस्कृत कहे जाने वाले, नारियों के सम्मान के लिए कटिबद्ध और प्रतिबद्ध कहे जाने वाले, नारी पूजा के लिए प्रसिद्ध कहलाने वाले भारत देश में बाहर से आने वाले पर्यटकों को पूरी सुरक्षा और चौकसी बरतने का निर्देश जारी किया जाता है। ये परिस्थितियां ऐसी हैं जिनका मुकबला पूरी सख्ती और काननी तौर पर

किया जाना अपेक्षित है। अति सभ्य ज्ञानी होने का गौरव भारत को प्राप्त है। आज इस देश में ज्ञानवान, प्रवचन कर्त्ताओं, उपदेशकों, धार्मिक गुरूओं के श्रोताओं, दर्शन कत्ताओं में अधिक संख्या धार्मिक महिलाओं की ही होती हैं। लेकिन नारी सम्मान की शिक्षा की बात तो दूर जहां दर्जन महात्माओं के जुड़े उनकी अय्याशी और दुराचार के किस्से मौजूद हों, वहां धर्म की धज्जी उड़ती दिखाई पड़ रही है। महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने की स्थिति के बावजूद महिलाएं पुरूषों की अय्याशी, दुराचार, बलात्कार, यौनाचार, पापाचार, व्यभिचार का लगातार शिकार हो रही हैं। ऐसे में आपराधिक माहौल के वातावरण में कुछ भी महफूज नहीं दिखता। विवाहेतर संबंध बनाने पर महिला को अपराधी नहीं मानने की छूट है। शादीशुदा महिला के पराए पुरूष से संबंध बनाने में सिर्फ़ पुरूष को ही दोषी क्यों माना जाए, महिला को क्यों नहीं?हर क्षेत्र में महिला को पुरूष के बराबर माना जाता है। तो फ़िर अनैतिक संबंधों में अपराध करने पर उसकी सहभागिता को क्यों नहीं माना जाता–यह बड़ा सवाल है। विवाहेतर यौन–संबंधों में व्यभिचारजन्य अपराध के लिए वर्तमान में केवल पुरूषों को दोषी माना जाता है और सिर्फ़ पुरूषों को ही सजा का प्रावधान है, महिलाओं के लिए नहीं। जब जीवन के सभी क्षेत्रों में महिलाएं पुरूषों के साथ क़दम–से–क़दम मिला कर चल रही हैं और उन्हें समानता का अधिकार प्राप्त है तो फ़िर यौन संबंधों के मामले में महिलाओं को अपवाद में कैसे रखा जा सकता है। अपराध न्याय प्रक्रिया के तहत् आरोपी पुरूष या स्त्री को समान नज़रिये से देखा जाता है, लेकिन आई०पी०सी० की धारा 497 के प्रावधानों के तहत् दैहिक व्यभिचार के लिए महिलाएं दोषमुक्त होती हैं–जो लैंगिक समानता के सिद्धान्त के अनुकूल प्रतीत नहीं होता है। विवाहेतर यौन–संबंधों में महिलाओं को अपराधहीन माननेवाले कानून की वैधानिकता की समीक्षा की जा रही है। समाज प्रगति कर रहा है। लोगों को अधिकार मिल रहे हैं। नयी पीढ़ी में नये विचार आ रहे है। पुरूष और महिला में भेद मिट रहे हैं। यौनअपराध में महिला और पुरूष दोनों ही शामिल होते हैं तो फ़िर सजा एक ही को क्यों–यह सवाल सिर उठाने लगा है। जब दो लोग एक साथ मिलकर किसी वारदात को अंज़ाम देते हैं तो एक व्यक्ति अपराध का भागी और दूसरा पूरी तरह दोषमुक्त–ऐसा क्यों?महिला हर क्षेत्र में पुरूष के बराबर है तो फ़िर यौन का क्षेत्र ही अछूता क्यों?शादीशुदा महिला के पर पुरूष से यौनसंबंध बनाने में सिर्फ़ पुरूष ही दोषी क्यों?महिला क्यों नहीं?इस यौन संबंध में अगर पति की सहमति साबित कर दी जाती है तो अपराध खत्म हो जाता है। जबकि आज की महिला जीवन के हर क्षेत्र में पुरूष के बराबर है, पति के अधीन नहीं। फ़िर पुरूष और महिला में भेद करनेवाला ऐसा कानून क्यों–इसकी समीक्षा भी की जा रही है। ''विवाहिता को संरक्षणदेनेवाली आई०पी० सी० धारा 497(व्यभिचार) और इस कानून के तहत् शिकायत की व्यवस्था देनेवाली सी०आर०पी०सी०धारा 198(2) है। कोई भी पुरूष जानबूझ कर दूसरे की पत्नी से उसके पति की सहमति के बग़ैर शारीरिक यौनसंबंध स्थापित करता है और वह यौनसंबंध दुष्कर्म की श्रेणी में नहीं आता, तो वह पुरूष व्यभिचार का अपराध करता है। उस व्यक्ति को पांच वर्ष की कैद या जुर्माना या एक साथ दोनों ही सजा हो सकती है।'' मध्यप्रदेश में यौन अपराध के कलंक से उबरने के लिए विधान सभा में ऐसा दंड विधिविधेयक–2017 सर्वानुमति से पारित कर दिया गया है जिससे बलात्कारियों में निश्चित रूप से भय पैदा हो सकेगा। अपराधियों को फ़ांसी की सज़ा तक दिये जाने का प्रावधान है। विधि आयोग द्वारा 1967 में दी गई अपनी 35वीं रिपोर्ट में यह कहा जा चुका है कि देश के अधिकांश राज्य ऐसे कुत्सित अपराध के लिए मौत की सजा के पक्ष में हैं। देश में भारतीय दंड संहिता में मृत्यु दंड सुनाये जाने का प्रावधान 1861 में किया गया था और 1931 में बिहार विधानसभा में इसे समाप्त करने की कोशिश भी की गयी थी जो असफल रही। एक तरफ जहां कन्या भ्रूण–हत्या अपराध है, दहेज प्रथा अपराध है, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं अभियान नारी सम्मान का प्रतीक है वहीं जबरन इस तरह का यौन अत्याचार संज्ञेय अपराध है।

इस सब के बावजूद परस्पर सहमति और रजामंदी से तो कभी प्रेम प्रसंगवश स्त्री–पुरूष के बीच यौन संबंध अनिवार्य रूप से निर्बाध गति से कायम होते रहने की घटनाएं घटती ही रहती हैं। ये सच है कि परिवेश विकष्त हो चुका है, दुनिया के रंग ढंग पल–पल परिवर्तित हो रहे हैं। लोगों की सोच और मानसिकता में आधुनिकता के अणु–परमाणु प्रवेश कर चुके हैं। सर्वत्र अपराध बोध, पाप बोध, पश्चाताप बोध, अफ़सोस, ग्लानी और पछतावे की भावना लगभग नहीं रह गयी है। ऐसे में यह आवश्यक है कि नये सिरे से समाधान की तलाश की जाय।

प्रेमाधिक्य में सेक्स: स्त्री–मनोविज्ञान

हर स्त्री, स्त्री ही होती है और सम्पूर्ण नारीत्व के अहसास के लिए उसे पुरूष द्वारा सम्पूर्णता से चाहे जाने की एक ख़ास तल्ख़ी तथा ऊष्मा की नितान्त आवश्यकता होती है। वह अपनी इच्छाओं का हनन नहीं, वरन् पोषण चाहती है। स्त्री के लिए प्रेम–मात्र वासनात्मक नहीं हो सकता, क्षणिक प्रेमोन्माद की स्थिति में क्षणिक भोग उसे पसंद नहीं। शी वांट्स मेन्स लव इन हिज़ कम्पलीटनेस। अन्यथा कोई पुरूष किसी स्त्री को चरम सुख नहीं दे सकता क्योंकि शारीरिक भूख, घर्षण, उष्णता स्त्री के लिए भरपूर प्रेम के बाद की बात होती है। प्रेमाधिक्य में सेक्स स्त्री के लिए 'टैबू' नहीं ! हर स्त्री का यौवन, उसकी कामशक्ति अजेय है।

प्रेम, सेक्स और स्त्री: स्त्री–मनोविज्ञान

प्रेम और सेक्स के लिए स्त्री रेल की पटरी के पास खड़ी उस यात्री की तरह है जो उसे लांघकर उस पार होना चाहती है, लेकिन गाड़ी आने के भय से इस पार ही ठिठक कर रह जाती है। प्रेम को स्त्री हमेशा तृप्त कर लेना चाहती है ! स्त्री जानती है कि पुरूष बड़ा ही कठोर, निर्दयी, स्वार्थी और शीघ्र स्खलित होने वाले होते हैं, कामशक्ति के मामले में अति कमज़ोर साबित होते हैं। किसी स्त्री का पति पहली बार जब उसके साथ संभोगरत होता है, तो उसकी ज़ल्दबाजी और शीघ्र स्खलित होने पर वह मन–ही–मन झल्लाती हुई चिल्ला उठती है, "तुम यही आदमी हो ?देखने में ही पत्थरों के पहाड़ की तरह लगते हो। मगर इतने–से ही आदमी हो ?बस... ! इसी के लिए... इतने ही के लिए मेरे पास आये थे ?छिः–छिः... मुझे पहले ही बताया क्यों नहीं ?हैल विद् इट.. . मुझे नहीं चाहिए तुम्हारा यह लिज़लिजा पौरूष... आई वांट यूकृयू हैव मी... आई वांट यू इन यूअर कम्पलीट।" स्त्री मन–ही–मन पुरूष को कोसती है–'तुम मर्द हो या औरत ?अमर्द तुम्हें कोई नहीं कह सकता। मर्दानगी तुममें है ही नहीं। बड़ी मर्दानगी दिखाने का शौक था न।एक स्टिच में ही बेकार। मैं और हूँ... अति को पार करने की तुममें कुव्वत कहां ?सरहद पर लाकर छोड़कर पीठ दिखा भाग खड़े हो जाते हो । धिक्कार है तुम्हारी सामर्थ्य को ! स्त्री के पूर्ण स्त्रीत्व के लिए मर्द की सम्पूर्ण मर्दानगी का अनुभव आवश्यक आवश्यकता है।

स्त्री–यौनिकता: स्त्री–मनोविज्ञान

पश्चिमीकरण और आधुनिकता के प्रभाव ने स्त्रियों की मानसिकता व सोच, कार्य–व्यापार को परिवर्तित किया है। आकर्षण और अनुकरण के कारण उन पर से क्रमशः नैतिकता और औचित्य के अंकुश हटते हुए दिखाई देते हैं। पूर्ववर्ती नारियों में यौन–संबंधों को छिपाने की प्रवृत्ति रही है, किन्तु समकालीन स्त्रियां अधिक मुखर और सपष्टवादिनी दिखाई देती हैं। कभी–कभी तो वे जितना करती हैं, उससे अधिक कहती हैं और उनके शब्द–प्रयोग एवं अभिव्यक्ति में भी एक निस्संगता

और वस्तुनिष्ठता दिखाई देती है। अनावृत्त शरीर और अनावृत्त भाषा की प्रवृत्ति समानान्तर रूप से साथ–साथ चलती है। ऐसी स्त्रियों के लिए तन–सुख, चरम सुख सारे सुखों से बढ़कर है। पति की बहुगामिता से बदला लेने के लिए कई पुरूषों की अंकाशायिनी बनने से भी स्वयं को रोक नहीं पातीं। उनका ये तर्क है कि उन्हें छलनेवाला या उनका शोषण करनेवाला पुरूष कई स्त्रियों से सम्पर्क रख सकता है, तो वे क्यों नहीं ?उनका प्रश्न है– औरतों को ही सब कुछ खो देने का दुःख सताता है, पुरूषों को क्यों नहीं ?उनका अहम् तब चोट खा जाता है, जबकि वे पाती हैं कि तमाम शैक्षणिक–सामाजिक प्रगति के बावजूद पुरूष के लिए स्त्री आज भी योनि–मात्र ही है। बड़ी उम्र तक अविवाहित रह जानेवाली, विवाहिता होकर भी विवशतापूर्वक अकेले जीवन यापन करनेवाली या किसी विशेष अभाव के कारण पुरूष को कभी न यौनाकृष्ट और प्राप्त कर सकनेवाली स्त्रियों में संभोगेतर कामतुष्टि की प्रवृत्ति भी क्रमशः बढ़ती हुई दिखाई देती है। उच्च संपन्नवर्गीय स्त्रियों में यह प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है कि वे यौन–संबंधों का उपयोग निजी सुख के लिए ही नहीं, परपीड़न के लिए, पति को प्रताड़ित करने के लिए भी करती हैं। प्रेम ही स्त्री का संपूर्ण अस्तित्व है। प्रेम स्त्री के लिए कभी असुन्दर नहीं हो सकता–प्रेम अथाह समुद्र है स्त्री के लिए और स्त्री उसमें गिरनेवाली गंगा नदी। आत्ममुग्धा, स्व–केन्द्रित स्त्री अथ–से–इति तक प्रेम और सेक्स ही तो होती है ! यौन–संबंध स्त्री के लिए रोग भी है और साथ में रोग का उपचार भी ! यौन–संसर्ग स्त्री के लिए खूबसूरत सजा भी है, संग–संग स्वर्गसुख समान मज़ा भी। रति–प्रसंग स्त्री के लिए प्रतिबंधित गुनाह भी है और मातृत्वसुख के लिए पवित्र धार्मिक पनाह भी। यौन–समागम स्त्री के लिए प्राकृतिक जैविक ज़रूरत भी है और मानसिक तथा भावनात्मक सम्पूर्ण संतुष्टि का माध्यम भी। स्त्री नही तो पुरूष के लिए प्यार कहां, प्रेम–श्रृंगार कहां, मौसमे–बहार कहां, ज़न्नत का दीदार कहां, सुखमय जीवन–संसार कहां ?

बदलते मूल्यों के दौर में आधुनिक होते समाजों में नये विचार, नये मूल्य, नये कानून और बौद्धिकतंत्र कुछ और कहते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था की मान्यता के पारंपरिक आधार चाहे सही हों या ग़लत, कुछ और ही कहते हैं। भारतीय समाज और सभ्यता–संस्कृति की मूल प्रवृत्ति नैतिकता है। प्रतीकों को तोड़ दें, भ्रष्ट कर दें, उनकी मान्यता समाप्त कर दें या खण्डित कर दे, तो समाज की आत्मछवि, आत्मबोध, आत्मविश्वास बिख़र जायेगा और परिवार टूट–बिख़र कर, भ्रष्ट, अनैतिक, अराजक होकर, अपनी पहचान खोकर पूरी तरह उच्छृंखल हो जायेगा । स्त्री–पुरूष संबंधों की शुचिता और मर्यादा का ख्याल स्वस्थ पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के लिए आवश्यक है। दैहिक शुचिता और सर्वत्र पवित्रता का ख़्याल स्त्री–स्वातंत्र्य के लिहाज़ से कभी भी अभिशाप नहीं हो सकता।

कविता

नदी में सारंगी

राजेन्द्र नागदेव
दानिशकुंज, भोपाल
8989569036

शब्द जा चुके
स्वर जा चुके
इच्छाएँ, सम्भावनाएँ सब कुछ

उठ गया मेला

सब तरफ खालीपन
हवा से लुढ़कते खाली दोने
कुत्तों का रह–रह कर झगड़ना
पन्नियाँ... मुड़े–तुड़े कागज
प्लास्टिक गुड़ियों के छूटे हुए पाँव
कलाई से रार में हार
धूल में गिरी चूड़ियों के टुकड़े
सात दिनों बाद
भीड़ से घबराती रही हवा का मुक्त सरसराना

सर्कस का उदास तंबू
बाहर
गहरी नींद में सोया थका हुआ भोंपू
अंदर
बंद पलकों के पीछे जाग हुए जीव
घोड़े, हाथी, औरतें, शेर, आदमी, तोते रीछ
नींद की देह में गहराई तक धँसे
भूखे काल के पैने पंजे
अंधकार में उदास सारंगिया
समय में शेष
सारंगी भर पुराना समय
झोले में उँडेलता है
सीडी के युग में बाँस की सारंगी
सहमी–सहमी पड़ी रही अंजान कोने में

सप्ताह भर निःस्वर
पुराना समय अपनी अपनी झोपड़ी में
संभव है, अब न लौटे
नदी की धार में बहा
मुक्त कर दे समय को सारंगिया
और अतीत की खोह से बाहर निकल
सम्मिलित हो जाय समझदारों की पंक्ति में

कुछ समझदारियाँ बहुत त्रासद होती हैं
मैं नदी में सारंगी का रोना सुन रहा हूँ।

आलेख

साहित्य के सरोकारों पर उठते सवाल

–डॉ. सुवंश ठाकुर 'अकेला'
चूनापुर रोड, पूर्णियाँ, मो.–09973264550

वैदिक वाङ्मय में कहा गया है कि –
'साहित्य संगीत कलाविहीनः साक्षात् पशुः पुच्छविषाणहीनः।
तृणं न खादन् अपि जीवमानः परमं पशुनाम् तद्भागधेयम् ।।'

अर्थात् साहित्य, संगीत और कला–विहीन लोग बिना पूँछ और सींग के साक्षात् पशु है। घास न खाते हुए भी जीव है और पशुओं का ही बहुत बड़ा हिस्सा है। किन्तु इस सूक्ति के उद्देश्य की पूर्ति हम कर रहे हैं?यह एक विचारणीय विषय है। हम सभी सुनते–समझते और पढ़ते आए हैं कि 'सहितस्य भावः साहित्यः।' विकृतियों से भरे वर्तमान में इस परिभाषा के सरोकार पर पुनर्विचार करने की जरूरत आ पड़ी है। क्या हम इस भाव की पूर्ति कर रहे हैं?अथवा यूँ ही कागज और रोशनाई की खपत बढ़ाकर अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री समझते हैं?दुष्यन्त कुमार ने कहा कि–''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं, मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।'' भूख, भय और भ्रष्टाचार की कोई जाति नहीं होती। खाये अघाये लोगों की भूख और विपन्न आर्त्तजनों की भूख में बहुत फर्क होता है। बहुत–से अहम् सवाल आज हमारे सामने हैं। ये सवाल साहित्यिक देवताओं के मुखौटे पर दुष्ट दैत्य की तरह अट्टहास कर रहे हैं और हम जश्न मना रहे हैं। क्या साहित्य चादर ओढ़ने और माला पहनने के लिए?क्या साहित्य प्रशस्ति पत्र प्राप्त करने के लिए?क्या साहित्य अखबार में नाम और तस्वीर छपवाने के लिए?क्या साहित्य जातिवाद और संप्रदायवाद के विष–वमन और विष–बेल रोपन के लिए?क्या साहित्य जुगाड़ से पत्रिकाओं में रचना छपवाने के लिए?ऐसे अनंत सवाल वर्तमान साहित्य के लिए हो सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान संक्रामक बीमारियाँ प्रदूषित महानगर दिल्ली से चलकर सर्वत्र व्याप्त होती जा रही हैं। धीरे–धीरे कस्बाई इलाकों में भी फैलती जा रही हैं। यह गंभीर चिंता का विषय है। जाने–अनजाने हमारी गतिविधियों और वास्तविकता पर आमलोगों की नजर रहती हैं, जिसे हम समझ नहीं पाते। उनकी वही दृष्टि हमारी रचनाओं के मूल्यांकन का आधार बनती हैं।

ऐसी बात नहीं है कि हमारे समाज के लोग उदार नहीं है। वे हमारे क्षम्य अपराधों को क्षमा भी करते हैं। वे हमारे अँधेरे और उजाले दोनों पक्षों को देखते हैं। यह तय है कि हमारा साहित्य, समाज हित के लिए प्रतिबद्ध। अनगिनत साहित्यिक मंच, संघ और खेमे हर जगह चल रहे हैं। अध्यक्ष, सचिव, महासचिव और कोषाध्यक्ष के गरिमामय पद स्वयं सृजित हो रहे हैं। पद की प्राप्ति के लिए घिनौनी तिकड़में चलती रहती हैं। महानगर में आलाकमान पतंग की डोर थामे हुए हैं। कोई प्रकाशक, संपादक और कोई उच्च पदासीन हैं। साहित्य पैसे कमाने का व्यापार बनता जा रहा है। साहित्यकार अपनी रचनाओं में वैश्वीकरण और बाजारवाद की निंदा करते अघाते नहीं। भारतीय संस्कृति के क्षरण और विलुप्त होने की बात करते हैं। अपनी चिंता और अपने दुख प्रकट करते हैं। कुछ लोग अपनी रचनाओं के तर्क और पक्ष में कहते हैं, जो आज की माँग है, उसे तो पूरी करनी ही होगी। माँग जो बाजार की भाषा है। हर माँग की पूर्ति करना, बनिया वर्ग के लोगों के काम हैं। हम समाज के जागरूक और प्रबुद्ध लोगों की गिनती में हैं। हमें तो उन कुटेबों और अहितकर वीभत्स माँगों का विरोध लिखना ही चाहिए। अहितकर आधुनिकता के अंधानुकरण पर विरोध जताना चाहिए। हमें अपनी संस्कृति पर गर्व करना चाहिए और पश्चिम के समक्ष आदर्श रखना चाहिए न कि उसके पीछे भागना चाहिए। किन्तु हम उसकी भागीदारी पर नाहक प्रसन्न हो रहे हैं। वैज्ञानिक विकास हो अथवा वैचारिक विकास उसे हितैषी विकास की सीमा तक ही स्वीकार करना चाहिए। विकास का नाम देकर विनाश की ओर बढ़ना बुद्धिमानी नहीं मानी जा सकती। अति बौद्धिकता और अहितकर तार्किकता के कारण हम समाज से कटते जा रहे हैं और हम आमजन के साहित्य से दूर होते जाने का रोना रो रहे हैं। फिर साहित्य के हाशिए पर चले जाने का अरण्यरोदन करते हैं। अपनी भूल को स्वीकार नहीं करते। समाज पर ही संवेदनहीनता और बर्बरता का आरोप मढ़ते जा रहे हैं। समय आ गया है कि साहित्यकार अपने भीतर झाँके। वीभत्सता मुक्ति का सौंदर्य नहीं हो सकती। अपनी कथनी और करनी में व्याप्त छत्तीस के आँकड़ों को देखें। ऐसा न हो कि भविष्य हमारे महज कागजी साहित्य को अमान्य कर दे। यही हमारी चिंता का विषय है। बच्चे भी हमारे करने को सीखते हैं, सिर्फ कोरे कहने को खारिज कर देते हैं। लोग पहले हमारे आचरण को पढ़ते हैं, फिर हमारे साहित्य को पढ़ने की इच्छा जताते हैं। एक समय कबीर उपेक्षित थे, किन्तु आज उनके साहित्य सर्वमान्य हैं। गाँधी जी के आचरण और साहित्य में कोई भेद नहीं था। वर्तमान में सवाल खड़ा हो गया है कि हम जो कर रहे हैं, क्या वही साहित्य है। साहित्य समाज का दर्पण है, किन्तु ऐसा नहीं कि वह धूल–धूसरित हो और जगह–जगह से टूटा हुआ हो। हमें यह भी सोचना होगा कि सहितस्य भाव साहित्यकार का अथवा समाज का?

जिस दोहरे चेहरे, छद्म आचरण की निंदा करते हम कवि, कथाकार, रचनाकार अपनी रचनाओं में नहीं अघाते, क्या अब उसे अपने में देखने का समय नहीं आ गया है?तमिलनाडु की मुख्यमंत्री जे.जयललिता को हम सभी जानते हैं। उनकी कोई कहानी, कविता है भी या नहीं, मुझे पता नहीं। अखबारी समाचार के अनुसार उनकी मौत पर अम्मा–अम्मा कहकर आमलोग छाती पीटते देखे गये। शोक और व्यथा में, उनकी याद में तीन सौ से अधिक लोग प्राण गँवाये। इसका नाम है सहितस्य भावः। हमारे आपके मरने पर कितने लोग याद करनेवाले हैं। बहुत होगा तो अखबारों में और पत्रिकाओं में महज औपचारिकतावश शोक संदेश छप जाएगा। कारण स्पष्ट है कि हमें समाज से कोई ताल्लुक नहीं रह गया है। समाज के बारे में जो कुछ लिखते हैं, वे मात्र दिमागी कसरत है। स्पष्ट है कि हमारी रचनाओं और आचरण के कोई सामाजिक सरोकार नहीं है। हम जो कुछ लिख रहे हैं मात्र विद्वत्ता और पांडित्य प्रदर्शन के लिए अहम प्रदर्शन के लिए हम तर्कों के जाल बुनते रहते हैं। मात्र एक ही वृत्त के कुछ लोगों के साथ सभा–सोसायटी के कार्यों में व्यस्त रहते हैं। बात मानें या न मानें, वह कहीं से भी साहित्य नहीं है। चंद कहानियाँ और कविताएँ लिखकर अपने को साहित्यकार मान लेना

कहीं से भी उचित नहीं है। मेरी तो इच्छा है कि कागज और रोशनाई के खर्च करने में मितव्ययिता अपनाना साहित्य और समाज दोनों के हित में है। निराला और नागार्जुन के अभाव आज साहित्यकारों को नहीं है। धन बाहुल्य के कारण किताब छपवाकर शक्ति प्रदर्शन हो रहे हैं। मैं इससे सहमत हूँ कि 'जाके पाँव न फटी बिवाई, वो क्या जाने पीर पराई।' ए.सी. कमरे और सुविधाओं में जीकर जनकवि नहीं बना जा सकता।

आर्य दिन रचनाओं की चोरी, नकल और भाड़े पर लिखवाने की चोरी और छीनाझपटी की भी बात सामने आती है। उसके मरणोपरान्त झपटनेवाले अपने नाम से किताब छपवा लेते हैं। लोकार्पण होता है। नाश्ते के पैकेट बँटते हैं। चाय, कॉफी तोड़मतोड़ चलती है। सभी उपस्थित जन, सरोकारों को अनदेखा कर रचनाओं में चार चाँद लगाते हैं। प्रायोजित समीक्षक बड़ाई का पहाड़ खड़ा कर देते हैं। रचनाकार गद्‌गद हो जाते हैं। ऐसे छद्‌म साहित्यकारों को बधाई, धन्यवाद और शुभकामनाएँ संप्रेषित की जाती हैं। प्रशंसा सुनकर रचनाकार अपनी पत्नी से अपनी बाँह पूजवाते हैं और समाज होंठ चाटते रह जाता है। चंद दिनों में ही दीमक किताबों को भोग बना लेती हैं। जिस अच्छे और सच्चे रचनाकारों के पास अर्थाभाव है, वे किताब छपवा नहीं पाते और अपनी छाती में मुक्का मारते हैं। आये दिन पत्रिकाओं में उत्कोच प्रिय पदाधिकारियों की भूख और भ्रष्टाचार पर धड़ल्ले से रचनाएँ छप रही हैं। ऊँची पत्रिकाओं में पदाधिकारीगण अधिक छपते हैं। संपादक को उनकी रचना छापने में काफी लाभ होता है। बेचारे संपादक क्या करेंगे?आखिर दुकान कैसे चलेगी?इन कृत्यों को देख–सुनकर कितने लोग सिहरते हैं?क्या यही संवेदनशीलता है?हमारे बीच बहुत ऐसे नीलहे सियारे हैं और हम उन्हें प्रतिष्ठापित किये जा रहे हैं?क्या यही आचरण साहित्य और समाज–हित में है?क्या साहित्य अकादमिक डिग्रियाँ और स्टेटस प्रदर्शन के लिए?ऐसे तो साहित्यिक विकृतियों पर अनंत सवाल उठाये जा सकते हैं। आज प्रत्येक रचनाकार का फर्ज बनता है कि इस विषय पर पुनर्विचार करे। क्या मंचाधीश, मठाधीश और पत्रिकाधीश मात्र बनना साहित्य का श्रेय और प्रेय है?कुछ गड़बड़ लोगों के कारण साहित्य उपालंभ का शिकार होता जा रहा है। चूँकि साहित्यकार समाज के फजीहत प्राप्त व्यक्ति होते हैं, इसलिए और भी चिंतनीय विषय है। मेरे कहने का कतई यह अर्थ न लगाया जाए कि मंच और पत्रिकाओं की जरूरत नहीं है, किन्तु उसे लोकहित के सरोकारों से सम्बद्ध तो होना ही चाहिए। सचमुच जीवन के तत्वों एवं साहित्य के सिद्धांतों में फर्क होना दुर्भाग्यपूर्ण है।

साहित्य, मानवजीवन का पुनर्सृजन है, तो प्रगतिशीलता और समकालीनता उनके परिणाम हैं। इसमें वीभत्सता के लिए कोई जगह नहीं होनी चाहिए। सच कहा जाना चाहिए, किन्तु उसके रूप विकृत न हो। मुझे यह भी लगता है कि जिस मनुवाद की निंदा करते साहित्यकार नहीं थकते, किसी न किसी रूप में उसकी पुनर्स्थापना करते जा रहे हैं। बदले की भावना से सुन्दर साहित्य के सृजन नहीं हो सकते। हम भूल जाते हैं कि इतिहास पुनरावृत्ति करता है। हम राजनीतिज्ञों की लय पर रचनाएँ करते हैं और सभा आयोजित करते हैं। हम सभी ने अखबार में देखा है, एक युवा मुख्यमंत्री के चरणों में वयोवृद्ध साहित्यकार को साष्टांग प्रणाम करते। समाज और लोकहित में परिणाम टाँय–टाँय फिस्स। यह कहीं से भी उचित प्रतीत नहीं होता। जिस संवेदनशीलता की दुहाई देकर हम रचनाकर्म में तल्लीन रहते हैं, कहीं वह हमारे दिखावे तो नहीं?क्या रचना को निर्जीव कलम तक सीमित रखना उचित है?समय की पुकार है कि हम आत्मावलोकन करें। किसी को हम प्रजातंत्र के ठेकेदार कहकर लांछित करते आ रहे हैं और हम साहित्य के ठेकेदार बनकर समाज के पूजित देवताओं की कतार में खड़े होने की होड़ में है। मेरी लंबी कविता संस्कृति उवाच की ये चार पंक्तियाँ इस आशय में ध्यातव्य हैं–

पूजित देवों की कतार में
कुछ छद्‌म छबीले घुस आते हैं
इन्सानों की ऐसी–तैसी
छद्‌म छबीले पूजे जाते हैं।

आये दिन पत्रिकाओं में ऐसी रचनाएँ थोक भाव में छप रही हैं, जिनके जीवन, समय और समाज से कोई सरोकार नहीं हैं। कहानियों में सेक्स की छौंक पर छौंक लगायी जा रही हैं। स्त्री विमर्श के नाम पर गहरी साजिश के तहत वीभत्स लेखन कर स्त्रियों को बेपर्द किया जा रहा है। कथाकार और बाजारवाद का असर है। इसमें कुछ लेखिका भी आगे–आगे चल रही हैं। मैं इसे पुरुष–सत्ता की गंदी हरकत मानता हूँ। सभी जानते हैं कि वह मैथुनी सृष्टि है। हम साहित्यकारों का यह कर्तव्य नहीं है, किन्तु उसे बेपर्द करके परोसें। आज भी भारत में उत्कृष्ट स्त्रियों की कमी नहीं है, किन्तु कहानियों में बिरले उन्हें पात्र बनाये जाते हैं। तो क्या हमारे यही अभिप्राय बचे हैं कि गंदगियों को फैलावें?खुले में शौच जाने की चारों तरफ निंदा हो रही हे। सरकार शौचालयों के निर्माण पर जोर दे रही है और हम हैं कि वैचारिक गंदगी फैला रहे हैं। क्या ऐसी रचनाओं को जो समाजहित में नहीं है, उसे सहितस्य भाव माना जाए?मुझे लगता है जो बातें मेरे मन में खौलते दूध की तरह उबल रही हैं, शायद हर रचनाकार के मन में उबलती होंगी। आज जरूरत है अपनी सृजनशीलता पर गौर करने की। रचनाओं के संख्यात्मक चक्रब्यूह से निकलकर मानवता के सरोकारों से सम्पन्न गुणात्मक रचनाओं की ओर अग्रसर होने की। अंधाधुंध रचनाएँ शायद किसी काम की नहीं। हमारी रचनाएँ निर्माणात्मक हैं या विध्वंसात्मग, प्रगतिशील हैं या दुर्गतिशील, इसकी पहचान करनी होगी। कहीं हम घूम–फिरकर सामंतवाद की स्थापना तो नहीं कर रहे हैं?साम्यवाद के कोरे नारे लगाने से साम्यता स्थापित नहीं होगी। प्रायः देखा जाता है कि पद, प्रतिष्ठा और पैसे पाते ही फिर बेताल उसी डाल पर। अँधेरे में अलग और उजाले में थलग। मंच पर कुछ और मंच से उतरे ही कुछ और।

काव्य के संबंध में अथर्ववेद की एक ऋचा–'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति।' अर्थात् परमात्मा के काव्य, इस सृष्टि को देखो, जो न मरती है और न पुरानी होती है। इसका कतई यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि यह प्रगतिशीलता में बाधक है। हम सभी देख रहे हैं कि जीवन और मृत्यु का सिलसिला नित्य जारी है। पतझड़ है, तो वसंत भी। ग्रीष्म है, तो वर्षा भी। रोज नये–नये पौधे जनमते हैं।

साहित्य के सरोकारों पर और भी कई सवाल उठाये जा सकते हैं। उनके समाधान ढूँढे जा सकते हैं। श्रमसाध्य है, मगर दुष्प्राप्य नहीं। अंत में साहित्य के उद्देश्यों और सरोकारों से सम्बद्ध मैक्सिम गोर्की का यह वक्तव्य ध्यातव्य है–''साहित्य का उद्देश्य है खुद अपने को जानने में मनुष्य की मदद करना, उसके आत्मविश्वास को दृढ़ बनाना और उसके सत्यान्वेषण को सहारा देना। लोगों की अच्छाइयों का उद्‌घाटन करना और बुराइयों का उन्मूलन करना। लोगों के हृदय में क्षमाशीलता, गुस्सा और साहस पैदा करना। ऊँचे उद्देश्य के लिए शक्ति बटोरने में उनकी मदद करना और सौंदर्य की पवित्र भावना से उनके जीवन को शुभ बनाना।''

स्मृति

शून्य

ज्ञानचंद मर्मज्ञ
जे.पी. नगर, बंगलोर
मो० : 9845320295

मुझे अभी भी याद है, बचपन में जब गिनती सिखाई जाती थी तो उसकी शुरूआत एक से होती थी। एक से सौ तक की गिनती सिखना एक चुनौती भरा अभियान होता था। जो भी, जहाँ भी मिलता, पुचकार पुचकार कर गिनती सिखाना शुरू कर देता था। पड़ोसी भी प्यार से पूछते रहते थे–''बच्चे ने गिनती सीख ली क्या?कहाँ तक सीखी, कोई बात नहीं, जल्दी ही सीख जाएगा।'' जैसे उन्हें अपना सारा कारोबार उसके ही नाम करना है। स्कूल में 'ग' से गिनती और गणित तो कभी नहीं पढ़ाया जाता, परंतु बार–बार गिनती के बरामदे में गणित को ठहलता देखकर इस बात का सहज ही अनुमान हो जाता है कि गिनती और गणित दोनों एक ही परिवार के सदस्य हैं और जिस प्रकार गिनती गणित के कंधे पर चढ़ी रहती है, उससे यह भी पता चल जाता है कि रिश्ते में 'गणित' गिनती के पूज्य पिताजी हैं। इनका एक सुंदर पुत्र भी है, जिसे 'पहाड़ा' के नाम से संबोधित करते हैं। गिनती और पहाड़ा सगे बहन–भाई हैं। इनमें इतना स्नेह है कि जैसे ही गिनती से मुक्ति मिलती है, पहाड़ा सामने आकर खड़ा हो जाता है। बच्चों के लिए पहाड़ा किसी पहाड़ से कम नहीं होता। जो बच्चे गिनती और पहाड़ा कंठस्थ नहीं कर पाते, ये उनके सपने में आकर उन्हें डराते हैं। कई बच्चे तो उसी समय यह तय कर लेते हैं कि उन्हें भविष्य में गणित कभी नहीं पढ़ना है।

अंकों के खेल में उलझी यह दुनिया शून्य को बहुत छोटा समझती है। 'शून्य' के बारे में कभी सोचती भी नहीं। सौ तक की गिनती सफलतापूर्वक कंठस्थ करनेवाले मेधावी बच्चों को भी इस बात का पता नहीं होता कि शून्य किसे कहते हैं। एक से सौ तक की गिनती में बेचारा शून्य न जाने कितनी बार घूम–घूमकर आता है, परन्तु एक बार भी उसका नाम सम्मानपूर्वक नहीं लिया जाता। देखा जाए तो छोटे–छोटे अंकों को अनंत की ऊँचाई तक पहुँचाने में अति अपेक्षित शून्य का बहुत हाथ होता है, परन्तु उसे अन्य गिनती की तरह कभी कोई सिंहासन नहीं प्रदान किया जाता। वस्तुतः होना तो यह चाहिए कि गिनती की शुरूआत एक से न होकर शून्य से होनी चाहिए, परन्तु ऐसा होता नहीं है। कारण जो भी हो, परंतु किसी अपेक्षित गरीब की तरह वास्तविक अंकों के साथ शून्य की गिनती कभी नहीं होती। जब कि बिना शून्य के अंकों का विस्तार संभव नहीं है। शून्य भले ही वास्तविकता का द्योतक न हो, परन्तु वास्तविकता नहीं होने का द्योतक तो है ही। कुछ लोग शून्य को अस्तित्वहीन समझते हैं, नकारा मानते हैं, परन्तु यह एक ऐसा अनोखा अंक है, जो वास्तविक अंकों की गरिमा को कई गुणा बढ़ाकर पलक झपकते ही उन्हें प्रकाश की ऊँचाइयों पर पहुँचा देता है।

भले ही शून्य की गिनती वास्तविक अंकों में न होती हो, परन्तु वास्तविक दुनिया में शून्य के अस्तित्व को झुठला पाना असंभव है। शून्य की उत्पत्ति कब, कहाँ और कैसे हुई, इसे सत्यापित करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु लगता है कि शून्य की उत्पत्ति से पूर्व लोगों ने ब्रह्मांड की ओर ध्यान से देखा होगा, तब उन्हें वह 'शून्य' पहली बार दिखाई दिया होगा, जो अनंत है, असीमित है। पहली बार लोगों ने शून्य की कोख से सूर्य जैसे विशाल प्रकाशपुंज को जन्म लेते हुए देखा होगा, अँधेरों को तिलमिलाते और उजालों को जगमगाते देखा होगा, तब उन्हें शून्य की क्षमता का अनुमान हुआ होगा और उन्होंने महत्व को समझा होगा। वैसे एक मान्यता के अनुसार शून्य का आविष्कार भारत में ही हुआ है। सच भी है, ऐसी अद्‌भुत चीजों की खोज भारत में नहीं होगी, तो और कहाँ होगी! चलिए, जो भी हुआ अच्छा ही हुआ, अन्यथा आज दुनिया निश्चय ही शून्य होकर रह गयी होती। इसका रूप भी सबसे अलग है, गोलमटोल, जैसे किसी ने बहुत ही उपेक्षित भाव से बस एक गोल आकृति बना दी हो, न हाथ, न पाँव, न मुँह। बस एक गोल परिधि, चाँद की तरह। परन्तु शून्य और चाँद में एक बहुत बड़ा अंतर है। चाँद तो सूरज से उधार लिये हुए किरणों से चमकता है, परन्तु शून्य अपनी चमक से दूसरे अंकों को सूरज की तरह चमका देता है।

जीवन स्वयं एक गणित है, जिसमें अंकों का बहुत महत्व है। वैसे तो खुशियों को जोड़ने से लेकर दुःखों को घटाने तक का गणित जिंदगी स्वयं लोगों को सिखा देती है, परन्तु लोग उसे भुलाकर अपने स्वार्थ के गणित में उलझ जाते हैं। प्रातः आँखें खुलते ही जोड़ना–घटाना प्रारंभ हो जाता है और नींद आने तक यह क्रम अनवरत चलता रहता है। कुछ लोग तो अंकों को गोद में लेकर सोते हैं और सपने में भी कुछ न कुछ जोड़ते–घटाते रहते हैं। जबसे मनुष्यों ने गिनती करना सीखा है, अंकों का महत्व और भी बढ़ गया है। पहले लोग अनुमान और अनुपात के सहारे बड़ी से बड़ी गणना कर लिया करते थे, परन्तु जबसे अधिक बुद्धिमान हुए हैं, केवल गिनती और पहाड़ा से ही काम चला लेते हैं। शायद यही सोचकर बचपन में ही 'पहाड़ा' घोलकर पिला दिया जाता है। अंकों का खेल भी बड़ा अद्‌भुत है, जीवनभर चलता है और हम साँस दर साँस गिनती करने में निपुण हो जाते हैं। बचपन में सबसे पहले हम खिलौने गिनना शुरू करते हैं, फिर धीरे–धीरे पैसे गिनने लगते हैं और अंत में अपनी बची हुई उम्र। गिनती की लंबाई उम्र के साथ बढ़ती ही चली जाती है। पैसा, चाहत, वर्चस्व और शोहरत की अनंत प्यास से उपजी कोइ न कोई आस अपनी गिनती लेकर हमारे सामने खड़ी ही रहती है। हम भी आशाओं की गिनती करने में इतना डूब जाते हैं कि साँसें कब पूरी हो जाती हैं, पता नहीं चलता और फिर एक दिन हमारी गिनती की हर कहानी शून्य में विलीन हो जाती है, तब भी हम शून्य का महत्व नहीं समझ पाते।

अन्य अंकों की तरह शून्य के हाथ–पाँव नहीं होते, फिर भी इसकी गति को नियंत्रित कर पाना सभी के बस की बात नहीं है। इसका रूप ब्रह्मांड के ग्रहों से मिलता है। रूप की समानता के साथ इसका प्रभाव भी किसी ग्रह से कम नहीं। अंकों के साथ शून्य का सही तालमेल एक पल में मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है, परन्तु अगर गलती से किसी गलत जगह पर लग गया, तो ग्रहण ही समझो। ध्यान से देखा जाय तो जीवन का सारा खेल शून्य से ही संचालित है। पूरी दुनिया शून्य को नियंत्रित करने में लगी है। सही स्थान पर शून्य लगाने की होड़ में लोग भागे जा रहे हैं। सभी के हाथों में उनका अपना–अपना शून्य है, क्या पता, कब, कहाँ, कौन–सा अवसर मिल जाए और जीवन का गणित शून्य की बुलंदियों को छू ले।

जीवन में शून्य के महत्व को अंतरात्मा में स्थान देनेवाला व्यक्ति शून्य के डर से कई बार तड़प भी उठता है। जीवन की उपलब्धियाँ शून्य न हो जाए इसका भय उसे सदा सताता रहता है। शून्य से धनी होने वाले लोग इसकी गरीबी से बहुत डरते हैं। उन्हें मालूम है शून्य से शिखर तक पहुँचने के लिए संजोये गए एक एक शून्य के पीछे कितना संघर्ष और परिश्रम लगा है। एक को दस और फिर सौ बनाने में पूरी उम्र निकल जाती है। कई बार तो लोग शून्य में ही उलझकर रह जाते हैं, इसकी गहराई अनंत जो है, जो उसमें डूब गया, उसका उबरना अत्यंत कठिन होता है, परन्तु जो शून्य पर सवार होकर इसे नियंत्रित करना सीख लेता है, वही इसे सही जगह पर स्थापित कर पाता है और जीवन में एक नहीं कई शून्य अपनी सफलता के मापदंड को सौंप देता है।

जरा सोचकर देखिये, आपकी सफलता में भी शून्य जुड़े होंगे, निश्चय ही आप भी कई बार हारे होंगे, लड़खड़ाए होंगे और डरे भी होंगे, तब कहीं जाकर जीत का पहला सपना यथार्थ के गर्भ में जन्मा होगा। फिर आपने उसके आगे एक एक शून्य लगाने के लिए कितना कुछ किया होगा। आपकी सफलता के पहले लगनेवाले शून्य ने आपको संघर्ष करना सिखाया और बाद में लगानेवाले शून्यों ने आपकी सफलता को शिखर तक पहुँचाया। वो शून्य ही है, जिन्होंने आपको गिराकर उठना, सँभालना, चलना सिखाया और प्रेरणा बनकर आपके अंदर जीतने की जिजीविषा भी भरी तब कहीं जाकर आपकी उपलब्धियाँ अनेक शून्यों के रथ पर सवार होकर कई गुना विस्तारित हो पाई।

इसलिए शून्य से कभी नहीं डरना चाहिए। शून्य से वही लोग डरते हैं, जो इस सत्य से अनभिज्ञ हैं कि शून्य ही अनंत का विस्तार है।

आलेख

आधुनिक कथा साहित्य और जीवन की वास्तविकता

–डॉ. सुनील कुमार परीट,
बेलगाम, कर्नाटक, 9480006858

कहा जाता है कि यथार्थ को संजोते हुए जीवन की वास्तविकता का चित्रण कर समाज की गतिशीलता बनाये रखने का मर्म ही कहानी है। लेकिन उम्मीदों पर खरा नहीं उतर पा रहा है, आधुनिक कथा साहित्य, क्योंकि जीवन की वास्तविक तथ्यों से कुछ हटकर ही आधुनिक कथा साहित्य ने रूप धारण कर लिया है। जिनसे उम्मीद–सी बँधती थी कि इस दौरान कुछ ऐसी कहानियाँ आयेंगी, जिसकी गूँज इस सदी के अंत तक सुनाई पड़ेंगी, पर यहाँ ऐसा कुछ न था, जो हिन्दी कहानी की रचनात्मक सत्ता स्थापित करने की निर्मल इच्छा से भरा हो और अक्सर चर्चा के केन्द्र में रचना से ज्यादा रचनेतर चीजें हावी रही हैं। महाभारत और महावार के दौरान के दौर में विशेषांक के पहले 'महा' विशेषण जोड़ने की मौलिक कल्पना वाले रवीन्द्र कालिया ने छियासठ कहानियों के एकत्रीकरण करके आधुनिक जीवन की वास्तविकता को दर्शाने का प्रयास किया है और जब कालियाजी को कृष्णा सोबती की 'ऐ लड़की' कहानी ने इतना प्रभावित किया कि उन्होंने संपादकीय सिरे में भी इसका उल्लेख किया है। तब एक पाठक ने लिखा कि 'ऐ लड़की' पढ़कर इतना डर गये कि गायत्री मंत्रा का जाप करने लगे।

आज की हिंदी कहानी अब भी गाँव में घूमती ग्रामीण परिवेश को ही अपना कथावस्तु बना लिया है। गाँव से लेकर कस्बे की या फिर 'देश काल रहित' इन कहानियों में अमानवीयकरण के खतरे से लेकर संवेदनशून्यता का ठंढा स्वीकार, सारा कुछ मौजूद तो है, पर इन सबके बावूजद शहर अपने परिवेश सहित जैसे यहाँ अनुपस्थित है और यह तब जब अब भी ज्यादातर कथाकार शहरों में हैं, छुट्टियों में गाँव भले ही जाते हों! तो क्या इससे अंदाजा लगाया जा सकता है कि कुछ दिन मात्र गाँव में बसनेवाले साहित्यकार द्वारा उत्कृष्ठ कथा साहित्य का सृजन हो पाता है?

कहानी साहित्यिक विधा में अत्यन्त प्रसिद्ध एवं रोचक विधा है। जैसा–जैसा समय बदलता गया, कथा साहित्य ने भी यथासंभव अपना रुख बदलता गया। कहानी के रूप का परिमार्जन और उसके सामर्थ्य का विस्तार पिछली कई शताब्दियों में हुआ है। आज के कहानीकार की सफलता और असफलता का निर्णय इस आधार पर होगा कि वह उस शताब्दियों की विरासत का सही उपयोग करता हुआ उसमें समृद्धि ला सका है या नहीं और शायद नए कथाकार इस शताब्दी में कहानी के क्षेत्र में सफल हुए हैं।

आज के कहानीकार मानो बहुत ही सोच समझकर कथावस्तु का चयन करते हैं। आज का कहानीकार आसपास के जीवन की मांसल भूमि को छोड़कर किसी वास्तविक संकेतों में भटकना नहीं चाहता, इसलिए उसकी कहानी स्थूल है। यथार्थ की प्रामाणिकता के साथ सांकेतिक प्रभावान्विति के समन्वय के सभी प्रयत्न सफल हुए हों, ऐसा नहीं। परन्तु कई एक कहानियाँ हैं, जिनमें इन विशेषताओं का निर्वाह बहुत सफलतापूर्वक हुआ है। भीष्म साहनी की 'भाग्यरेखा', राजेन्द्र यादव की 'नया मकान' और 'प्रश्नवाचक पेड', कमलेश्वर की 'राजा निरबंसिया' और शेखर जोशी की 'बदबू' आदि कहानियाँ उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की जा सकती हैं। कहीं कहानी मानव–मन की विकृतियों का चित्रण करके उस वातावरण की भयावहता का संकेत देती है, जो उन विकृतियों को जन्म देता है, कहीं असुन्दर के विश्लेषण द्वारा सुंदर के प्रति आस्था को व्यक्त करती है। कहानी के क्षेत्र में 'भाग्यरेखा', 'डेक', 'परिन्दे', 'जहाँ लक्ष्मी कैद है', 'राजा निरबंसिया', 'डिप्टी कलक्टरी', 'बदबूदार गली', 'गुलरा के बाबा', 'शहीद' और 'कोसी का घटवार' जैसी रचनाओं ने नए मूल्यों की स्थापना का श्रेय प्राप्त किया है।

आज की कहानी की अनुपलब्धियों के बारे में सोचे तो सबसे पहले यही बात ध्यान में आती है कि आज की कहानी समकालीन जीवन के यथार्थ का सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पा रही; क्योंकि खंडगत जीवन के बहुत–से चित्रों के अंदर आज के अखंड जीवन की परिकल्पना नहीं कर पा रहे हैं। कुछ लेखकों के दिमाग में यह बात समायी है कि आज का नागरिक जीवन इस तरह के दलदलों में फँसा है कि वहाँ स्वस्थ मानव के दर्शन नहीं हो सकते।

हाँ, हमें यह मानकर भी चलना है कि आज कोई कहानी की स्थिति बिगड़ गयी है, ऐसी बात तो कतई नहीं, बल्कि आधुनिक कहानी में कविता की तरह अनेक नए–नए प्रयोग हो रहे हैं और एक स्वीकार करनेवाली बात है कि प्रेमचंद, यशपाल, अज्ञेय युगीन कहानी की भाँति ही आज भी अच्छी कहानियाँ लिखी जा रही हैं, पढ़ी जा रही हैं, इसमें कोई संदेह नहीं है। हम चन्द्रकिरण सौनरिक्शा, भीष्म साहनी, धर्मवीर भारती, राजेन्द्र यादव, मोहन चौपड़ा, कमल जोशी, कमलेश्वर, मार्कण्डेय, अमरकांत, कृष्णा सोवती, रवीन्द्र कालिया आदि का नाम उल्लेख कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई नाम लिये जा सकते हैं, परन्तु नामों की परिगणना करना हमारा उद्देश्य नहीं है। आज की कहानी लेखकों की यह नई पीढ़ी कहानी के लिए निरंतर नए–नए धरातल खोज रही है और इस नाते निरंतर प्रयोगशील भी हैं।

हमारा देश ही गाँवों में बसता है, तो यह तय है कि साहित्य का केन्द्रविन्दु भी ग्रामीण जीवन ही ज्यादातर होता है, पर आजकल तो बदलाव या विकास के नाम पर साहित्य भी शहरी जीवन तक ही सीमित हो रहा है और साहित्य शहरी जीवन के आसपास ही घिरकी मार रहा है। इससे भविष्य में आतंक निश्चय ही पैदा हो सकता है। सो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आज की कहानी में हुए कुछ प्रयोगों के आधार पर जीवन के यथार्थ के संबंध में अपनी धारणा को संकुचित बनाकर हम जीवन के उत्तरोत्तर विकासमान रूप के साथ न्याय नहीं हो रहा है। जहाँ यह आवश्यक है कि लेखक अपने अनुभवक्षेत्र से प्रेरणा ग्रहण करे, जिससे उसकी रचना जीवन के प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत कर सके। नकली एवं आडंबरपूर्ण शहरी जीवन के बाहर आकर अनुभूति के आधार पर कथा साहित्य को पूर्ववत् अपना स्थान देने का प्रयास करे।

आलेख

अनुवाद के आईने में भारतीय भाषा और संस्कृति की पहचान

डॉ. सजित खांडेकर
भोसरी, पुणे
मो० : 9673918061

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारत शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए कहा जाता है कि 'भा' का अर्थ है 'प्रकाश' और 'भारत' का अर्थ है 'प्रकाश में रत' अर्थात् दत्तचित्त होकर अनुष्ठान आदि करने से प्राप्त संस्कार संपन्नता। यही है भारतीय संस्कृति। इसी संस्कृति के अजस्र प्रवाह में आर्य, द्रविड, शक, यवन, तुर्क, गुर्जर और फारसी आदि सभी जातियो–उपजातियों ने अपनी उपसंस्कृतियों की धाराओं के जल मिलाकर इसे गतिमान किया है और संस्कृति वाटिका को पल्लवित पुष्पित किया है। भारतीय संस्कृति सदा से सहिष्णुता, उदात्तता, दिव्यता और आध्यात्मिकता तथा सत्यं शिवं सुन्दरं की भावना से समन्वित रही है। इसकी चिंतनधारा विभिन्न दृष्टियों का थोड़ा–बहुत घर्षण होते हुए भी मूलभूत एकता और समन्वय बना हुआ है। यह सदा से अनेकता में एकता की बोधक रही है। भारतीय संस्कृति के प्रचार–प्रसार में सबसे अधिक योग संस्कृत भाषा का रहा है। दर्शन, आध्यात्मिक, काव्य साहित्य तथा ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखाओं की अखिल भारतीय शब्दावली के विकास में संस्कृत का अग्रणी योगदान रहा है। अतः संस्कृत के बिना भारतीय संस्कृति की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

मनुष्य सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की अनुभूतियाँ ही भिन्न परिवेश में भिन्न मानदंडों के आधार पर भिन्न संस्कृतियों का रूप धारण करती हैं और उनकी भिन्न भाषाएँ उनकी वाहक बनती हैं। इस तरह जब एक भाषा के साहित्य का दूसरी भाषा में अनुवाद किया जाता है, तो उनकी विचारधारा और संस्कृति का भी दूसरी भाषा में स्थानांतरित हो जाता है। अतः अनुवाद ही संस्कृतियों की पहचान का सार्थक उपकरण बनता है। संस्कृति किसी देश की पूरी आचार–संहिता, जीवनशैली और जीवनदर्शन का समन्वित रूप है, जिसे रचनाकार अपनी कृति में समूचे विश्वास, मूल्यों, मानदंडों, आध्यात्मिक चिंतन, सामाजिक व नैतिक विचारधारा में व्यक्त करता है। इसे सुरक्षित रखना अनुवादक का प्रमुख दायित्व है। क्या 'गोदान' के होरी को उसके परिवेश और सांस्कृतिक चेतना से हटाकर समझा जा सकता है?क्या चेम्मीन रचना की सार्थकता को केरल की मल्लाह जाति की मूल मान्यताओं से अलग करके देखा परखा जा सकता है?अतः अनुवादक को रचनाओं में चित्रित सांस्कृतिक परंपरा के निर्वाह के दायित्व को निभाना होता है।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के विकास के लिए भारतीय भाषाओं में आदान–प्रदान की यह प्रक्रिया निरंतर चलती रही है। अनुवाद इस आदान–प्रदान का सबसे सशक्त माध्यम है। यही व्यक्तियों को एक दूसरे की सभ्यता, रहन–सहन और संस्कृति से परिचित कराकर उन्हें एक दूसरे के निकट ला सकता है और आपसी सौहार्द बढ़ाकर मानवता का विकास कर सकता है। अनुवाद के माध्यम से हिंदी का संबंध बंगला, गुजराती, मराठी, मलयालम, कन्नड़, तेलगू आदि सामान्यतः सभी भारतीय भाषाओं में स्थापित हो चुका है।

कोंकणी भाषा भारत के दक्षिण राज्यों में बोली जाती है। कोंकणी और हिंदी दोनों भाषाएँ एक ही सांस्कृतिक वर्ग, एक ही भाषा परिवार की रही हैं। हिंदी का क्षेत्र उत्तर भारत है, तो कोंकणी का क्षेत्र दक्षिणी भारत कहा जा सकता है। कोंकणी हिन्दी अनुवाद का कार्य कुछ हद तक सरल भी है।

उदाहरण आपण जैसे बोलतौ तसेंच लिहितो असे नाहीं यानी व्यक्ति जैसे बोलता है, वैसे लिखता नहीं है।

कोंकणी और हिन्दी भाषियों का इतिहास, धर्म और अनेक तीर्थ सामान्यतः एक ही है। राम कुब्जा, अष्टावक्र आदि पौराणिक पात्रा दोनों भाषा भाषियों के लिए सुपरिचित रहे हैं। लेकिन कई देवी–देवताओं का नाम जैसे शान्तादुर्ग, विट्ठल, बेताल, चामुंडेश्वरी शैलोवा, दामोदर आदि हिन्दी भाषियों के लिए अपरिचित है। इनकी पूरी जानकारी के लिए अनुवाद की आवश्यकता रहती है। इसी प्रकार गणेशपूजा का विधान कोंकणी और हिन्दी भाषियों के लिए नया रहा है। फिर भी उसकी प्रतिष्ठा भिन्न स्थानों में भिन्न रूपों में होती है। ऐसे स्थानों पर अनुवाद में टिप्पणियों और व्याख्याओं से काम चलाया जा सकता है।

कश्मीरी भाषा क्षेत्र के सांस्कृतिक परिवेश में विभिन्न रीति रिवाजों में संबंधित शब्दों का हिन्दी में अनुवाद करना एक गहरी समस्या है। भाषा प्रयोग में शिष्टता का बर्ताव भी सांस्कृतिक परिवेश का अभिन्न अंग है। कश्मीरी में निम्नलिखित उदाहरण मे शिष्टता के लिए किसी अतिरिक्त शब्द की आवश्यकता नहीं है, परन्तु हिंदी में शुभ प्रयोग करना आवश्यक है।

कश्मीरी – त्वहि क्य छु नाव?

हिन्दी – आपका शुभ नाम क्या है?

इसी तरह कश्मीरी मोल (पिता) मॉज (माता) के लिए आदरसूचक शब्द 'जी' लगाना मूलतः आवश्यक नहीं है।

पंजाब राज्य में बोली जानेवाली भाषा पंजाबी है। पाँच नदियों के क्षेत्र से घिरा हुआ क्षेत्र 'पंचनद' ही किसी समय पंजाब कहलाता था, जिसका अब कुछ भाग पाकिस्तान में है। वस्तुतः गुरु नानक ने पंजाबी भाषा की आधारशिला रखी। गुरु की वाणियों का मात्रा धार्मिक महत्व ही नहीं सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टियों से भी महत्व है। 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब' महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसको सिखों के पाँचवें गुरु अर्जुनदेव ने संकलित करवाया।

कलि होइ कुत्ते मुही खाजु ही आ मुरदारु।
कुहु बोलि बोलि मदुकणा चूका धरम बिचारू।

यानी कलयुग के शासकों की खाद्यवस्तु आदमी का मांस हो गयी है अर्थात् राजवाडे कुत्तों के समान लालची हो गये हैं। वे रिश्वत और बेमानी से पैसे खाते हैं।

पंजाबी	हिन्दी
ओ ने मेरी मदद कीती।	उसाने मेरी सहायता की।
ओ ने कपड़े धुआए।	उसने मेरे कपड़े धुलवाए।
ओ ने खुशी नाल कीती।	उसने खुशी से सहायता की।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में सिंधी भाषा की निराली स्थिति है। इस भाषा का मूल केन्द्र सिंधु प्रदेश है, जो 1947 के बाद पाकिस्तान का अंग बन गया है। स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में सिंधी भाषा के लगभग बीस वर्ष बाद अप्रैल 1967 में भारतीय संविधान में स्थान मिला। तबसे लेकर सिंधी और हिंदी भाषा का आपस में कुछ न कुछ संपर्क रहता आया है। दादू दयाल और प्राणनाथ जैसे संतों ने हिंदी के साथ साथ भाषा में भी अपने उद्‌गारों को अभिव्यक्त किया है

सिंधी के पारिवारिक संबंधों के अनुवाद हिन्दी में इस प्रकार है–

सिंधी	हिंदी
सौटु	चचेरा भाई
मासातु	मौसेरा भाई
पुफाटु	फूफेरा भाई
मारोटु	ममेरा भाई
मारोटि	ममेरी बहन
सालाटि	साली की लड़की

खाद्य और पेय पदार्थ के अनुवाद हिन्दी में निम्नलिखित है–बुराणी–कमल के पराग से बनी हुई मिठाई। डूंधी–सूखा हुआ नारियल का गूदा। ढोढो–ज्वार या मक्के की रोटी। कुटी–सेकी हुई रोटी आदि।

उड़ीसा राज्य की प्रमुख भाषा उड़िया है। उड़ीसा की सांस्कृतिक स्थिति विशिष्ट है। उड़िया में एक कहावत है–'एक हाथ रे ताली बाजे नाँही' यानी एक हाथ से ताली नहीं बजती। इस प्रकार और एक कहावत है–'उठिला गछ पतरू जाणि' यानी पूत के पैर पालने में दिख जाते हैं। 'ओंठ चाटिले सोस भरे नाँही' इसका हिन्दी में अनुवाद 'होंठ चाटे प्यास नहीं बूझती' इस प्रकार हो जाएगा। इस प्रकार अनुवाद के माध्यम से हिन्दी पाठक को उड़ीसा की कला, संस्कृति, इतिहास, साहित्य एवं जीवन से न केवल परिचित करना है, वरन उसमें हिन्दी पाठक की रुचि पैदा करनी है।

हिन्दी और नेपाली दोनों संस्कृत से विकसित एवं एक ही लिपि का प्रयोग करनेवाले आधुनिक भाषाओं के रूप में परस्पर घनिष्ठतापूर्वक संबंधित है। बालकृष्ण सम का 'प्रह्लाद' नाटक का हिन्दी अनुवाद भारतीय साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित है। इसके अतिरिक्त डायमन शमशेर कृत 'सेतो बाघ' और 'बसंती', विश्वेश्वर प्रसाद कोइराला के 'तीन घुम्ती', 'सुम्निया' आदि उपान्यास और कहानियाँ, वाणिरा गिरी की कविताएँ आदि कुछ कृतियों के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हैं। उदाहरणार्थ कुछ नेपाली वाक्यों का हिंदी में अनुवाद इस प्रकार है–

नेपाली– राम, तिमी घर जाऊ।

हिन्दी–राम, तुम घर जाओ।

नेपाली–हिजो हामीलाई भेटन आऊने मांछे जासूस रहे छा।

हिन्दी–कल हमसे मिलने के लिए जो आदमी आया था, वह जासूस था, ऐसा कहा जाता है।

भारोपीय परिवार की भाषाएँ होने के कारण बंगला और हिन्दी मं बहुत ही निकट का संबंध है। इन दोनों भाषाओं में पारस्परिक अनुवाद कार्य बहुत दिनों से चल रहा है। उदाहरण के तौर पर कुछ बंगला के वाक्यों को हम देखते हैं–

बंगला– चारिट भात दिन।

हिन्दी–थोड़े से चावल दीजिए। चार चावल दीजिए।

ऐसे ही 'जल खायो', 'दूध खायो',जैसे वाक्यों का प्रयोग का हिन्दी में पीने के अर्थ में होता है। हिन्दी में कभी कोई पानी या दूध खाऊँगा नहीं कहेगा।

मणिपुर भारत के उत्तरी पूर्वी अंचल में स्थित सीमान्त राज्य है, जिसकी भाषा मणिपुरी है। मणिपुरी से हिन्दी अनुवाद का इतिहास बहुत संक्षिप्त है। 1962 ई0 में श्री अ.छत्रध्वज शर्मा द्वारा डॉ. कमल की मणिपुरी कविताओं का अनुवाद 'कवि श्रीमाला मणिपुरी' शीर्षक से राष्ट्रभाषा प्रचार श्रीमती वर्धा द्वारा प्रकाशित किया गया। 1977 ई0 में डॉ. कमल के मणिपुरी उपन्यास 'माधवी' का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया। मणिपुरी भाषा के महीनों के नामों का अनुवाद बड़ा कठिन है। क्योंकि मणिपुरी महीनों का आरंभ अमावस्या के दूसरे दिन से होता है और एक से तीस तक तिथियाँ आती हैं। जैस 'सजिबू' मणिपुरी पंचांग का प्रथम मास है, जिसका आरंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है और वैशाख (कृष्ण) अमावस्या को ही समाप्त होता है। इसका अनुवाद करते समय अनुवादक चैत्र लिखने की भूल करते हैं, जबकि आधा चैत्र आधा वैशाख करते समय अनुवादक चैत्र लिखने की भूल करते हैं, जबकि आधा चैत्र आधा वैशाख लिखना उचित है। मणिपुरी में चावल के लिए 'चै' शब्द है, जबकि पके हुए चावल के लिए 'चाक' शब्द का प्रयोग किया जाता है। अतः भौगोलिक एवं ऐतिहासिक कारणों से मणिपुरी और हिंदी भाषा को सांस्कृतिक स्तर में पर्याप्त स्तर है।

हिन्दी–गुजराती में भी विपुल प्रशासनिक साहित्य का अनुवाद होने लगा। जहाँ तक साहित्यिक विधाओं का प्रश्न है, हिन्दी में गुजराती में बहुत कम अनूदित साहित्य उपलब्ध है; क्योंकि हिन्दी–गुजराती भगिनी भाषाएँ हैं। अतः सामान्यतः लोग मूल हिन्दी कृति को ही पढ़ लेते हैं। कई गुजराती साहित्यिक कृतियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ है। वैसे तो गुजराती और हिन्दी भगिनी भाषाएँ हैं, फिर भी दोनों की प्रकृति में अंतर है, शब्दों की वर्तनी में भी फर्क है। उदाहरणार्थ हिन्दी में बिजली, कुटीर, पत्थर गुजराती में बीजली, कुटिर, पथ्थर हो जाते हैं। कई बार वर्तनी समान होती है, किन्तु अर्थ भिन्न होता है, जो निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट होता है।

शब्द	हिन्दी अर्थ	गुजराती अर्थ
अकस्मात	अचानक	दुर्घटना
उपाधि	पदवी	दुःख
चारा	उपाय	पशु की खुराक
मीठा	मधुर	नमक
राजीनामा	सुलहपत्र	त्यागपत्र
सत्तर	70	17

कन्नड़ और हिन्दी के बीच सुमधुर बंधुभाव पुरातन काल से बना हुआ है। लगभग तीन सौ ज्यादा कृतियाँ कन्नड़ से हिन्दी और हिन्दी से कन्नड़ में अनूदित हुई है। यह भी हो सकता है कि इससे भी ज्यादा कृतियाँ प्रकाशित हुई हों। कन्नड़ से हिन्दी में हिन्दी में आये उपन्यास को हम देखें तो डॉ. हिरण्मय द्वारा अनूदित 'शांतला' उपन्यास 'शांतला' उपन्यास, डॉ. एन. एस. दक्षिणामूर्ति द्वारा अनूदित 'रत्नाकर' उपन्यास लक्ष्मीचंद्र जैन द्वारा अनूदित 'दायरे आस्थाओं' उपन्यास आदि कई उपन्यास है, जिसका अनुवाद हिन्दी में सफलतापूर्वक किया गया है।

'साक्षी' उपन्यास में 'शिव और आशिव के बीच शाश्वत द्वंद्वही जीवन है'–यह दर्शा ने प्रयत्न किया है। उपन्यासकार ने जीवन के विभिन्न पक्षों का अनुसंधान किया है और यह सिद्ध किया है कि अशिव सत्य के मूल्यों को नष्ट भी कर देता है। अनुवाद सम्पर्क है। 'वंशवृक्ष' जातीयता, सामाजिक अवस्था आदि पर आधारित एक सामाजिक उपन्यास है। इसका भी अनुवाद

अत्यन्त सम्पर्क ढंग से किया गया है। 'वंशवृक्ष' और 'दायरे आस्थाओं के' दोनों उपन्यासों पर आधारित फिल्में जनप्रिय हुई हैं।

यह पंडितमान्य है कि भारोपीय परिवार की संस्कृतोद्भव भाषाओं में मराठी भाषा भारत में दक्षिण की ओर अंतिम कड़ी है। पढ़ाई में एक सी होने होने के कारण देवनागरी से उद्भूत दोनों मराठी हिन्दी भाषियों को सुभीता है। कुछ इने गिने वर्णों को छोड़कर लेखनविधि एक है। मराठी की 'रामची टोपी' हिंदी में 'राम की टोपी' होती है। गाँव में मराठी में गावांत होता है। 'ऱ' हिन्दी में नहीं है, जिसका काम 'ल' से चलता है। चन्द्रबिन्दु, नुक्ता यह हिन्दी की विशेषता है। यह होते हुए भी लिपि साम्य बहुत है।

मराठी की अपेक्षा हिन्दी में संबंधवाचक रिश्ते दिखानेवाले शब्द काफी अधिक मिलते हैं। जैसे आजा–आजी के लिए हिन्दी में दादा–दादी और नाना–नानी ये शब्द पिता और माता के लिए माता–पिता को लेकर हमें प्राप्त होते हैं। वैसे ही देवर–देवरानी, जेठ–जेठानी, ताऊ–चाचा, ताई–चाची ये शब्द मराठी में दीर–भाव जय, चुलता–चुलती, तक ही सीमित है। फूफा–फूफी, बुआ–फूआ के लिए मराठी में केवल आतोबा और आत्या शब्द मिलते हैं।

साथ–साथ मराठी की 'नऊ, सहा, पाँच वारी साड़ी और चोली केवल साड़ी और चुनरी नहीं हो सकती, वह कुछ निश्चय ही अधिक अर्थवत्ता रखती है। इसी तरह से महाराष्ट्र में बननेवाली पैठनी साड़ी, शालू, शेला, अंतरपाट वस्त्रा उपरणे आदि अनेक वस्त्र अपने–अपने विशेषता के साथ रहेंगे। फेटा, पगड़ी भी मराठी और हिन्दी भूभाग में बाँधने की विविधता के कारण अलग है। हिन्दी के ननसाल, ननिहाल, पीहर, मायका, मैका के लिए केवल आजोऱ–मोहर शब्द है पर मराठी में पंजोऱ है, जो हिन्दी में नहीं। इस प्रकार अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषा और संस्कृति की कई विशेषताएँ दिखाई देती हैं। संदर्भ–

1. अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव और कृष्णकुमार गोस्वामी, आलेख प्रकाशन दिल्ली (सं) 1985
2. अनुवाद चिंतन के सैद्धांतिक आयाम, संपा. डॉ. गार्गी गुप्त एवं डॉ. ओमप्रकाश सिंहल, भारतीय अनुवाद परिषद् नई दिल्ली
3. संस्कृति कर्तुत्व की व्याख्या, यशदेव शल्य, सामाजिक विज्ञान हिन्दी रचना केंद्र 1969
4. अनुवाद शतक एक संपा. नीता गुप्ता, भारतीय अनुवाद परिषद् दिल्ली, दूसरा सं. 2008
5. भारतीय भाषाएँ और हिन्दी अनुवाद समस्या समाधान सं. कैलाशचन्द्र भाटिया, वाणी प्रकाशन, दिल्ली तृतीय सं. 2004

चंचल वैद
देदानी कम्पनी सदर रोड, फारबिसगंज
पिन–854318, मो0–9852771230

मन

मन!
छोटा शब्द
विस्तृत आकार
समाया इसमें
पूरा संसार
कल्पनाओं के भी
संवेदनाओं के भी
हर रूप हर रंग
विचित्र
कोई नहीं जानता
क्या चल रहा
इसके भीतर
आकुल व्याकुल
या
खुशहाल
मन
छोटा सा
पर
विशाल!

अस्तित्व की पहचान

अस्तित्व!
कहाँ खो गया
परिवार की
जिम्मेदारियों में
बच्चों की
परवरिश में
उनके शादी–ब्याह की
गहमागहमी में
सुख–सुविधाओं की
आकांक्षाओं में
पंख फैलाए समय
उड़ गया
बच्चों ने अपने
घरौंदे सम्हाले
मेरा नीड़
खाली हो गया
क्या अब
वास्तव में
अस्तित्व की
पहचान का
समय आ गया
हाँ शायद!

सूर्य प्रकाश मिश्र
बी.23/42ए.के. वसंत कठरा गांधी
चौक खोजवां, वाराणसी–221001

चाँद की रोटी

रोटी जैसे चाँद पड़े हो किस उलझन में
व्याकुल आँखें देख रही हैं निज गगन में
कोई खुश है और किसी को पीर मिली है
जग में सबको अलग–अलग तकदीर मिली है
कुछ आँखें खुलती हैं तपते बियावान में
और किसी को दुनिया की जागीर मिली है
देखो कितनी ऊँच नीच है इस जीवन में
रोटी जैसे चाँद पड़े हो किस उलझन में
इन बेबस आँखों की तुम भाषा पढ़ पाते
काश उतरकर सचमुच की रोटी बन जाते
लोग छीनते हैं जाने कितनों की रोटी
लाख चाहने पर भी तुमको छीन न पाते
कितने सपने तैर रहे मन के आँगन में
रोटी जैसे चाँद पड़े हो किस उलझन में
कोई जीवन की मृगतृष्णा में भरमाया
कोई रोटी से आगे कुछ सोच न पाया
भूखे पेट आज भी लाखों सो जाते हैं
कहना उस मालिक से जितने जहाँ बनाया
उसको कितनी देर लगेगी परिवर्तन में
रोटी जैसे चाँद पड़े हो किस उलझन में।

समीक्षा

स्मृति के वातायन : संस्मरणों की सारस्वत स्रोतस्विनी

आमोद कुमार मिश्र,
बरारी, भागलपुर–812003
मो० : 9934097221

साहित्यर्षि डॉ. तपेश्वरनाथ द्वारा प्रणीत 'स्मृति के वातायन' की पठन–यात्रा से मझे वाङ्मय तीर्थों के भावदर्शन तो हुए ही सारस्वत स्रोतस्विनी में अवगाहन की आनंदानुभूति भी हुई। विविध विधाओं के मर्मज्ञ विद्वान् डॉ. तपेश्वरनाथ ने अपने विगत जीवन के उन महत्वपूर्ण क्षणों को स्मृत्यालेखित किया है, जिससे उनकी साहित्य–साधना को त्वरा तो प्रदान किया ही, उत्तर आधुनिक काल के नव्य साहित्यकारों के लिए अगर–चंदन सुवासित मृदुल सुखद स्पर्शहित वातायन भी उन्मुक्त कर दिया है। अतीत की स्मृतियाँ शेष जीवन को रससिक्त कर एक अपूर्व आनंदानुभूति प्रदान करती है। इस संबंध में ख्यात समालोचक पंडित रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि ''हृदय के लिए अतीत एक मुक्तिलोक है, जहाँ वह अनेक प्रकार के बंधनों से छूट रहता है। अतीत बीच–बीच में हमारी आँखें खोलता रहता है। मैं तो समझता हूँ कि जीवन का नित्य स्वरूप दिखानेवाला दर्पण मनुष्य के पीछे रहता है, आगे तो बराबर खिसकता हुआ दुर्भेद्य परदा रहता है। अतीत की ओर मुड़ मुड़कर देखने की प्रवृत्ति सुख–दुख की भावना से परे है। स्मृतियाँ में केवल सुखपूर्ण दिनों की झाँकियाँ नहीं समझ पड़तीं। वे हमें लीन करती हैं, हमारा मर्मस्पर्श करती हैं।'' (चिन्तामणि, भाग 1, पृ. 259–60) इसी लीनावस्था में डॉ. नाथ की भाषा भी शब्द चित्रात्मकता के सुंदर संस्कार से दमकती हुई लगती है।

'स्मृति के वातायन' में डॉ. नाथ ने भारतीय साहित्य जगत के कुल सोलह मूर्धन्य साहित्यकारों के स्नेह साहचर्याशीर्वादों एवं उनके साक्षात् दर्शन–वार्ताओं से प्राप्त अशेष आह्लाद ऊर्जा का सौम्य भाव चित्रण किया है। इस क्रम में प्रथमतः साहित्यमहोदधि डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी जी द्वारा उनके शोध–विषय 'हिन्दी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप विकास' शीर्षक में उनेक शोध निदेशक डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव जी द्वारा 'विकास' शब्द पर उठायी गयी आपत्ति का निराकरण करते हुए 'विकास' शब्द की विषय सार्थकता को स्थापित कर डॉ. नाथ को अपूर्व तोष प्रदान किया। विद्वद्वर द्विवेदीजी के अनवरत साहित्याह्लादित व्यक्तित्व ने डॉ. नाथ को तब विशेष रूप से प्रभावित किया, जब भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित साहित्यानुष्ठान में किसी जिज्ञासु ने डॉ. द्विवेदीजी से पूछ लिया कि आपके द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ठ कविता और नई कविता में क्या संबध है?हाजिर जवाबी द्विवेदीजी ने उत्तर दिया कि ''वही संबंध, जो चीनी और दालचीनी में है, मधु में और जेठी मधु में है।'' (स्मृति के वातायन, पृ. 12) संपूर्ण प्रशाल ठहाको से गूँज उठा।द्विवेदी जी की तीसरी स्मृति जो चिरकाल के लिए डॉ. नाथ ने अपने शोधग्रंथ 'हिन्दी काव्य में कृष्णचरित का भावात्मक स्वरूप विकास' में आदर सहित संरक्षित कर लिया है।वह यह कि ग्रंथ की भूमिका लेखन के अनुरोध सहित उन्होंने यह भी अनुरोध किया कि वे इस ग्रंथ का समर्पण भी उन्हीं को करेंगे। डॉ. द्विवेदी का उत्तर था–''या तो समर्पण या भूमिका–दोनों में से कोई एक चुन लें। चूँकि समर्पण के साथ–साथ भूमिका छपेगी, तो लोग–बाग यही कहेंगे कि इसमें निष्पक्ष समीक्षा संभव नहीं। पक्षपात की मनोवैज्ञानिक संभावना है। अतः काम भले ही आपका श्रेष्ठ और निष्ठापूर्ण हुआ हो तथा उसकी समीक्षा भले ही पूरी ईमानदारी से मेरे ओर की गई हो, किन्तु समर्पण के कारण एक खोट लोगों के मन में लगा ही रहे जाएगा। इसका अतीत में मुझे तजुर्बा हुआ है, अतः दो में जो कार्य आप मुझसे चाहें, ले लें।'' (स्मृति के वातायन, पृ. 14) डॉ. नाथ ने अर्जुन की तरह 'समर्पण' को ही कृष्णरूप द्विवेदीजी के आशीर्वाद को स्वीकार कर ग्रंथ–प्रकाशन के पश्चात् आचार्यप्रवर डॉ. द्विवेदीजी को ग्रंथ समर्पित करते हुए उसकी एक प्रति उन्हें अग्रेषित की गयी। 'विद्या ददाति विनयम्' को चरितार्थ करते हुए डॉ. द्विवेदीजी ने ग्रंथप्राप्ति का उत्तर देते हुए पत्र लिखा 'ए भूषण की आमाय साजे?' (स्मृति के वातायन, पृ. 15)

संस्मरण और संस्मरणकार दोनों वंदनीय और प्रेरक है। शैव, शाक्त, वैष्णव, सगुण और निर्गुणवादी सभी ईश्वराधन पंथों को हृदयंगम करनेवाले मनीषी विद्वान डॉ. नाथ ने विश्वविद्यालय 'कल्याण' पत्रिका के संस्थापक तथा शताधिक भगवतालेखों, भगवत्ग्रंथों के प्रणेता, भक्त साहित्यकार भाई श्री हनुमान प्रसाद पोद्दारजी के आत्मीय साहचर्य सहित अपने शोधग्रंथ के प्रकाशन क्रम में उनके सहयोगी व्यक्तित्व का अत्यन्त प्रांजल परिचय दिया है। 'गीतावाटिका' में उनके साधनामय सरल निवास सहित उनके स्वभाव स्वारस्य के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए डॉ. नाथ ने लिखा है–''मुगलकाल में जैसे चैतन्य, वल्लभाचार्य जैसों ने भारतीय जन–गण में भक्तिभावना जगायी थी, वैसे ही आंग्लयुग में स्व. पोद्दारजी ने हिन्दी जनता में धर्मप्राण फूँके–एक सर्वथा प्रतिकूल परिवेश में। इन्होंने जिस निष्कम्प आस्था के साथ धर्म की मशाल जलायी, वह सदैव स्मरणीय रहेगी।'' (स्मृति के वातायन, पृ. 22)

जिनकी भाषा को शिवपूजन सहायजी ने 'चपल खंजन' तथा गुप्तजी ने 'जादू की छड़ी' की संज्ञा से विभूषित किया है, उस ग्राम्यगंधी ख्यात शब्द शिल्पकार बेनीपुरीजी द्वारा स्थापित बागमती कॉलेज, जनाढ़ में प्राध्यापन करते उनके अविरल स्मरणीय स्नेह सान्निध्य एवं उनके पारिवारिक जीवन में स्नेह से बसे डॉ. नाथ ने उस काल की स्मृतियों के विस्तृत चित्रण क्रम में बैलगाड़ी से पश्चिमी बाग–बगीचे की ओर जाते हुए बेनीपुरीजी के प्रेम भार युक्त संवाद को यथावत् शब्दायित किया है, जो इस प्रकार है–''की देखई छ।इहे जिनगी ह।बौआ, तोरे सब पर संस्था चलै छौ। ठीक से चलाव। अब हम सब माटी धैलिओ।'' (स्मृति के वातायन, पृ. 24) शब्द–शब्द में आत्मीयता, विनम्रता और प्रेरणा।

महाप्राण 'निराला' की काव्य महिमा से स्नात सामधेनी त्वरा को अनुगूँजित करनेवाले 'निराला निकेतन' के स्वाभिमानी साहित्यर्षि आचार्य जानकी बल्लभ शास्त्रीजी को काव्यानंदी चाल में 'निराला निकेतन' चतुर्भुज स्थान जाते राह में पड़नेवाले नगरवधुओं के मोहल्ले की नगरवधुओं के 'पाँव लागूँ पंडितजी' को कर संकेतों से स्वीकार करते हुए अत्यन्त कुतूहल से देखने का अवसर डॉ. नाथ को मिलता रहा। अपनी चर्चित नाट्यकृति 'मनुप्रिया' पर उसकी सम्मति लेने के क्रम में नन्दिनी (गाय) की अस्वस्थता सहित अन्य पशु–पक्षियों से प्रेमसनित व्यवधानों के कारण तीसरी बार शास्त्रीजी ने 'आपको और अधिक न रोकूँगा, बैठिये, अभी लिख देता हूँ' कहते हुए जबतक वे कलम उठाते कि एक बिल्ली का बच्चा आकर उस पैड पर बैठ गया। शास्त्रीजी ने न उसे हटाया, न डाँटा, बल्कि जब वह बिल्ली का बच्चा स्वयं हट गया, तब उन्होंने लिखा–''नाटककार तपेश्वरनाथ जी का यह कृतित्व इस अर्थ में अधिक महत्वपूर्ण है कि नाटक का रूप देकर उन्होंने 'कामायनी' को कुछ अधिक सुबोध और लोकप्रिय बना दिया है।... और भी बहुत कुछ प्रेरक और प्रशंसनीय।'' (स्मृतियों के वातायन, पृ. 31) डॉ. नाथ उनके इस जैविक प्रेम, पांजल काव्य साधना से

प्रमुदित हो वहाँ से प्रस्थान किये।

राष्ट्रीयतापरक तेज, ओज सहित भारतीय संस्कृति के उन्नायक राष्ट्रकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' के सान्निध्य की स्मृतियों में रमे डॉ. नाथ ने 05 अक्टूबर, 1959 को हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कदमकुआँ, पटना में आयोजित साहित्य सम्मान सभा में 'बापू के कदमों' के कृतिकार देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद प्रसाद सहित राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, आचार्य नलिनी विलोचन शर्मा, बेनीपुरीजी, बिहार के चर्चित मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण कुमार सिंह, कुमार गंगानंद सिंह, आचार्य शिवपूजन सहाय जैसे विद्वर्षियों के समागम में साहित्य–सम्मान पाने हेतु स्वयं को भी इस साहित्यकुंभ में आमंत्रित होने के अवसर को शब्दशः स्मृत्यानुलेखित किया है। इसके अतिरिक्त भागलपुर विश्वविद्यालय के 1962 के दीक्षान्त समारोह में दिनकरजी को डी.लिट्. की मानद उपाधि दिये जाने के अवसर पर टी.एन. बी. कॉलेज के प्राचार्य डॉ. सुदर्शन जी सहित अन्य विद्वानों द्वारा 'दिनकर' सम्मान सह कविगोष्ठी में 'दिनकरजी' द्वारा मार्दव स्वर में प्रस्तुत 'उर्वशी' के अंशपाठ से विभोर श्रोताओं की काव्यानन्दानुभूति तथा 1964 में अंग्रेजी विभाग द्वारा आयोजित शैक्सपीयर सप्ताह में कुलपति के रूप में दिनकरजी के अध्यक्षीय भाषण के क्रम में शैक्सपीयर के युगीन परिवेश, उनके साहित्यिक अवदान, शैक्सपीयर और तुलसीदास, पश्चिमी त्रासदी और पूर्वी आनंदवाद पर सर्वांगपूर्ण समीक्षा से विद्वत् सम्मेलन की मुग्धता को डॉ. नाथ ने साहित्येतिहास तो बनाया ही, अपने शोध–विषय की स्वीकृति के क्रम में दिनकरजी से मिलन एवं उनके सहयोग को भी स्मृतिग्रंथ में सजा–सँवार लिया है। ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किये जाने पर डॉ. नाथ ने उन्हें बधाई पत्र दिया। दिनकरजी ने उत्तर दिया–'ज्ञानपीठ पुरस्कार के लिए आपकी कृपापूर्ण बधाई मिली। कृपया मेरा विनम्र धन्यवाद स्वीकार करें। (स्मृति के वातायन, पृ0 38) आपका दिनकर।

दक्षिण भारत के तीर्थाटन क्रम में दिनांक 24.4.1974 को दिनकरजी ने मित्रों के अनुरोध 'मैरीना बीच' पर आयोजित कवि सम्मेलन में अपनी कई कविताएँ सुनायीं। रात में जब आवास लौटे तो भावों के झकोरों के साथ आये हृदयाघात ने दिनकरजी को स्वर्गीय कर दिया। इस वेदनापूर्ण स्थिति को याद करते हुए डॉ. नाथ लिखते हैं–''दिनकर जैसी विभूति किसी भी देश के लिए भाषा–साहित्य–संस्कृति के लिए अमर है।'' (स्मृति के वातायन, पृ. 38)

पद्य साहित्य का एक चिन्मय स्वरूप संगीत होता है। डॉ. नाथ मुजफ्फरपुर प्रवासी छात्रजीवन में आत्मीय जमींदार श्रीकेदानाथ जी की इकलौती पुत्री के परिणयोत्सव अवसर पर संगीत सम्राट पं. दत्तात्रेय विष्णु दिगम्बर पलुस्कर को शुद्ध संगीत गायनमुद्रा में तल्लीन देख सुनकर इतना प्रभावित हुए कि उनकी साधनायुत सांगीतिक तन्मयता का स्वरतारल्य इनके हृदय को पूरी तरह अभिसिक्त कर दिया। डॉ. नाथ ने संगीत, साहित्य और कला की त्रिवेणी में स्नात पलुस्कर जी के उस गायनकाल से लेकर उनके संपूर्ण व्यक्तित्व को स्मृतिचित्रों में पिरोकर स्मृतिमाल की तरह 'स्मृति के वातायन' में सुसज्जित कर दिया है।

डॉ. नाथ को ऐसा सुअवसर मिला कि जिस मनीषी विद्वान के कुशल शिक्षण में उन्होंने शिक्षा ग्रहण की, उन्हीं की अध्यक्षता में अंतर्वीक्षित होकर प्राध्यापकत्व पाया, उन्हीं का सहयोगी बने, उन्हीं के निर्देशन में शोध किया और उन्हीं के स्नेह–सान्निध्य में जीवन के महत्वपूर्ण समय को जिया। बहुत कम लोगों को ऐसा सुंदर अवसर प्राप्त होता है। भले ही डॉ.नाथ स्नातकोत्तर हिन्दी विभागाध्यक्ष (भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर) डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव के सहयोगी प्राध्यापक रहे, पर उनकी विद्वत्ता, उनकी कार्यनिष्ठा उनकी कार्यविधि तथा प्राध्यापन–तत्परता के आगे स्वयं को सदा उनका अनुगामी शिष्य ही माना और अपने गुरुवर डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव के महत्वपूर्ण सहयोग की पावन स्मृतियों में स्वयं को निमग्न कर 'स्मृति के वातायन' में चिरकाल के लिए स्मरणीय एवं संपूज्य भाव–स्थापन कर दिया।

संस्कृति, साहित्य और कला के तपस्वी, भक्तों का संसार अत्यन्त विस्तृत तो होता ही है, इस पंथ के साधकों की मूल प्रवृत्ति होती है एक दूजे के व्यक्तित्व के समक्ष स्वयं को अति लघु समझते हुए रसानन्द में निमग्न हो जाने की। वैष्णवभक्ति– साहित्य के प्रख्यात मनीषी विद्वान विजयेन्द्र स्नातकजी से मिलने का अवसर राणा प्रताप बाग स्थित उनके आवास में डॉ. नाथ को तब मिला, जब वे स्नातकोत्तर विभाग भागलपुर के छात्रों के साथ उनके नायक के रूप में शैक्षिक अटन के लिए काशी, प्रयोग, गोरखपुर, वृन्दावन, मथुरा, आगरा और दिल्ली के विद्वानों, विद्यापीठों एवं पर्यटन स्थलों की दर्शनयात्रा में थे। तब तो साहित्यिक लेखों, विचारों, विवेचनाओं के आदान–प्रदान में यह मिलन चिरस्थायी बन गया। संयोग ऐसा कि डॉ.नाथ द्वारा प्रबंधित शोध के एक परीक्षक स्नातकजी ही बने। इस बार तो स्नातकजी विद्वद्वर डॉ.विरेन्द्र श्रीवास्तवजी के यहाँ ठहरे और डॉ.नाथ के शोध को देख–परखकर प्रमुदित भी हुए। प्रशंसा और प्ररेणा से डॉ.नाथ उनके समक्ष विनत हो गये। दूसरी बार डॉ.नाथ के निदेशन में डी.लिट्. शोधार्थी डॉ. सतीशकान्त की मौखिकी लेने हेतु डॉ.नाथ के विशेष प्रयत्नों एवं अनुरोधों के समक्ष अस्वस्थ होते हुए भी स्नातक जी ने प्रेमपियासों की तरह भागलपुर आने की स्वीकृति दे दी। यात्रा कष्ट सहकर आये भी, डॉ.नाथ के आवास पर ठहरे भी, रातभर साहित्य–सत्संग होता रहा। हास–परिहास सहित बतियाने के रस में सराबोर...नवरस के साथ निंदारस और बतरस की व्यंजना भी हुई। डॉ.नाथ की महत्वपूर्ण कृति 'भक्तिरस सहित साहित्यालेखों के आदान–प्रदान से आपस का साहित्य संबंध सदृढ़ हो गया। स्नातकजी की अवस्था 84 वर्षों की होने पर भी वे साहित्य–साधना में लगे रहे। डॉ.नाथ को संबोधित उनके पत्र 'पत्रों के झरोखे से' शीर्षक उनकी पुस्तक में चिरकाल के लिए स्मृतिशेष तो रह गये, पर स्नातकजी ने 24.11.1998 को देह–त्याग कर दिया। रेडियो, दूरदर्शन आदि से यह दुखद संवाद डॉ.नाथ के संपूर्ण परिवार को मार्मिक पीड़ा से झकझोर दिया। डॉ.विजयेन्द्र स्नातक का समरस स्वभाव एवं उनकी कृतियाँ चिरकाल के लिए उन्हें साहित्य–जगत का 'विजयेन्द्र' बना दिया।

डॉ.नाथ एक ऐसे साहित्य तत्वदर्शी हैं, जिन्होंने तिथिवार स्मृतियों को तो संजोया ही है, अपने वरीय–कनीय सहचारियों को भी स्मृति–पटल पर जीवन्त रखा है। बीसवीं शताब्दी के महान संत महर्षि मँहीं परमहंसजी महाराज से आशीर्वाद प्राप्ति सहित संत स्मरण के कई अवसर उन्हें अपने प्रयत्न से तथा अन्य श्रद्धालुओं के प्रयत्न से प्राप्त हुए हैं, जिनकी स्मृति चर्चा पाठकों को भी विभोर कर देती है। सभी तिथिवार स्मृतियाँ श्रद्धासरित प्रवाहित करती है। शिव नारायण झुनझुनवाला, हरिकुंज एवं स्वयं डॉ. नाथ के विनम्र श्रद्धानुरोध को महर्षि मँहीं जो शारीरिक शिथिलतावश छोटेलाल दास जैसे अपने शिष्यों के सहयोग से व्हीलचेयर पर चल पाते थे, टाल नहीं सके और दिनांक 2.9.1980 को गीताभवन, सुजागंज, भागलपुर में आयोजित जन्माष्टमी समारोह में सम्मिलित होकर आधा घंटा तक गीतावाचक और गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण के सगुण–निर्गुण चरित पर बोले। संपूर्ण समारोहस्थल उनके सटीक

व्याख्यान से अभिभूत हो गया।

बड़ी कठिन साधना, कठिन शारीरिक एवं मानसिक श्रम, अनेक प्रकार के अवधान–व्यवधान का सुंदर परिणाम होता है–एक सुंदर सारगर्भित ग्रंथ का प्रणयन, मुद्रण, प्रकाशन, समर्पण एवं वितरण। अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के प्रणयन के पश्चात् अनेक व्यवधानों से जूझते हुए डॉ. नाथ ने भागलपुर और काशी को अपनी अनेक यात्राओं से एक कर दिया। विद्वद्वर डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव जी के निदेशन में ही डॉ.त्रिभुवन जी भी शोध कर चुके थे।डॉ.नाथ भी उसी काल में डॉ. श्रीवास्तव के निदेशन में शोध कर ग्रंथ प्रकाशन के प्रयत्न में थे। इसी क्रम में डॉ. त्रिभुवन सिंह से उनकी घनिष्टता हुई ओर उन्हीं के सौजन्य से कई निष्णात विद्वानों के सहयोग सान्निध्य प्राप्त हुए। अपने काम में आयी बाधा को जब कोई अपना–सा व्यक्ति हृदय और मस्तिष्क से आगे बढ़कर समस्या का समाधान कर देता है, तब उसके साथ की गाँठ इतनी मजबूत हो जाती है कि वह किसी काल में खुल ही नहीं सकती। वह मित्र ही नहीं, परिवार का एक सदस्य बन जाता है। यही संबंध डॉ. नाथ के साथ डॉ. त्रिभुवनजी का है, जो कालजयी है।

डॉ. नाथ का हृदय और मस्तिष्क माधुरी भक्ति रसाभिसिक्त रहने के फलस्वरूप डी.लिट्. के लिए 'रामकाव्य धारा पर कृष्ण का प्रभाव' विषय पर अपने शोध निदेशक डॉ. वीरेन्द्र श्रीवास्तव के स्नेह सौजन्य से डॉ. भगवती प्रसाद सिंह, अध्यक्ष, गोरखपुर विश्वविद्यालय ने ऐसा समरस संबंध स्थापित हुआ कि शोध–प्रबंध के लिए उनसे और उनके सहयोग से पर्याप्त सामग्रियाँ तो उपलब्ध हुईं ही, कई बार डॉ.नाथ के आवास पर प्रेम और आत्मीयतावश आये भी। अग्रज और अनुज के पूत साहित्यिक संबंध के अंतर्गत अपनी–अपनी कृतियों का आदान–प्रदान भी होता रहा, एक दूजे के कुशल–क्षेमपूरित पत्रों की अनवरत प्रतीक्षा रहने लगी और यह क्रम भगवती बाबू के महाप्रयाण के पूर्वतक चलता रहा, जिनकी स्मृतियाँ डॉ. नाथ द्वारा प्रणीत पुस्तक 'पत्रों के झरोखे' में सदा के लिए संरक्षित रह गयीं। प्रो. भगवती बाबू का व्यक्तित्व मंगलमूर्ति रूप में डॉ. नाथ के हृदय में सदा के लिए स्थापित हो गया।

शाश्वत दृष्टि से भगवद्गीता के विराट कृष्ण की तरह ही संस्मरण साहित्य–विस्तृति की एक रश्मि 'स्मृति के वातायन' में छंदशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. गौरीशंकर मिश्र 'द्विजेन्द्र' तुलसी साहित्य के गंभीर मीमांसक वैष्णवभक्त आचार्य शिवबालक राय, प्राचीन हिन्दी के सुविख्यात भाषाविद् गंभीर मूर्ति तोमरजी अंग मनीषी हरफनमौला निश्छल विद्वान डॉ. माहेश्वरी सिंह 'महेश' जी एवं सरलता के प्रतीक तरलहृदय साहित्यकार श्री नीलकमल जी की स्मृतियाँ इस वाङ्मय वातायन से साहित्य, संगीत और कला की आभा से अगर चंदन सुवासित गंधवाटिका के मृदुल शीतल प्रवाह से जनमन को आह्लादित कर देता है।

लघुकथा

राजेन्द्र राकेश जनवृत
बोकारो
मो0 9204065910

पीड़िता

नौकरी मिली, क्वाटर नहीं। मकान की चिंता की चपेट में मैं पूरी तरह आ गया। कदाचित् एक मित्र के पसीने छूट गये, तब जाकर कहीं भाड़े में मकान नसीब हुआ।

मित्र ने साफ–साफ चेता दिया–इलाका थोड़ा गाँव नुमा है और माहौल ऐसा है कि जरा–जरा सी बात पर जामे से बाहर हो जाते हैं। यहाँ लोग–बाग, यही कारण है कि एक न एक हंगामा होते ही रहता है हरदम। बहरहाल तुम्हें सब्र ओर समझदारी से काम लेना होगा।

बल से माहौल ठीक नहीं है, पर मकान तो मिल गया न।

मकान मालकिन एक पाक साफ विधवा है। तीन बच्चों की माँ। बेटी बड़ी है। दोनों बेटे छोटे। बेटे गैरेज में जाते हैं। एक काम करने और दूसरा काम सीखने। बेटे की कमाई के बल पर ही घर का चूल्हा जलता है।

अच्छा! तो उस कूनबे में गरीबी मजबूती से मौजूद है। बैटी पागल है और जमीन पर बैठा नन्हा सा बच्चा, उसकी पगली बेटी का ही है।

हाँ।

वाह! उस पगली का पति निश्चितरूप से आदर्श का पात्र है। इस सज्जनता एवं मूल्यों के लिए उसको बधाई।

आह! वह लड़की तो अविवाहित माँ है...।

तीसरा ठहाका

जान पहचान बिल्कुल नहीं थी। एक कवि सम्मेलन में उनसे भेंट हुई थी। लेकिन वे मेरे आत्मीय हो गये थे। उनसे ही भेंट करने मैं उनके शहर चला गया था। औपचारिकता के बाद कविता पढ़ने–सुनने का भी दौर चला। चलता ही रहा। चाय तलब हुई। चाय चली। चाय की चुसकी लेते हुए मैंने उनसे एक प्रश्न दागा–प्रियवर! कितने बाल–बच्चे हैं आपके?

बाल–बच्चे में मामले में मैं बहुत धनी हूँ और ठहाका मार हँसने लगे।

मतलब?

मतलब यही कि तीन बेटे और तीन बेटियाँ का बाप हूँ मैं।

कमबख्त वातावरण आड़े नहीं आया?

अरे यार! दाद मिलती गयी और ....

स्थिति की अनुकूलता का जमकर लाभ उठाया, क्यों?

वे फिर ठहाका मार हँसने लगे। कदाचित् इस ठहाके में मेरा योगदान भी था।

अवकाश प्राप्त करते–करते एक बेटा और दो बेटियों की शादी कर दी मैंने।

बच्चे कहाँ हैं?यह सोचकर कि वे लोग नौकरी कहाँ करते हैं?मैंने प्रतिप्रश्न किया।

बच्चे, माशा अल्लाह जो बच्चा नौकरी करता है, साथ नहीं रहता और जो नौकरी नहीं करता, वह साथ रहता है।

उन्होंने फिर ठहाका मारा, लेकिन उनकी खोखली हँसी की गूँज में टूटते रिश्ते के दंश जनित अंतर वेदना स्पष्ट रूप से सुनाई दे रही थी।

समीक्षा

गोदान
दलित–विमर्श की कसौटी पर

भगवती प्रसाद द्विवेदी
मीठापुर, पटना–1
मो0–943060058

हिन्दी और उर्दू–दोनों ही भाषाओं की कहानी व उपन्यास विधा के जनक मुंशी प्रेमचंद, जिनके निधन के इक्यासी वर्ष गुजर जाने के बावजूद रचनाओं की प्रासंगिकता लेशमात्र भी कम नहीं हुई है, आज विवादों के घेरे में है। हालाँकि उन्हें 'उपन्यास सम्राट' ओर कथा शिल्पी की उपाधि यूँ ही हासिल नहीं हुई थी। 'उप' यानी समीप और 'न्यास' मतलब थाती। अर्थात् वैसी विधा जिसमें अपनी बात अपनी ही भाषा में प्रतिबिंबित हुई हो। तभी तो उन्हें भारतीय जनता के सच्चे प्रतिनिधि कथाकार के रूप में स्वीकृति प्राप्त है। 'गोदान' आज भी संपूर्ण भारतीय भाषाओं का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है और कहानी से नई कहानी तक की लंबी यात्रा के बावजूद 'कफन' व पूस की रात' कहानियों से ही नई कहानी की शुरूआत होती है, हालाँकि नई कहानी आंदोलन उनके दिवंगत होने के दो दशक बाद जाकर कहीं आरंभ हुआ था। तभी तो 'हमारे समय में प्रेमचंद' की पहचान करते हुए समालोचक गोपाल राय ने लिखा है–''प्रेमचंद महान हैं, इस बात पर व्यापक सहमति से इन्कार नहीं किया जा सकता। पर वे क्यों महान हैं, यह जरूर जिज्ञासा का विषय है। व्यक्ति के रूप में उनकी साधारणता निर्विवाद है। एक साधारण मध्यवर्गीय परिवार में पैदा हुआ आदमी महज चौवन वर्ष की उम्र में कुछ उपन्यास कहानी की किताबें लिखकर और जीवन भर संघर्ष करते रहकर भी औसत मध्यवर्ग की सरहदों में ही कालग्रस्त हो जाए, इससे अधिक साधारणता हो भी क्या सकती है! एक कथालेखक के रूप में भी उन्हें अधिकतर समकालीन आलोचकों की उपेक्षा ही मिली। पर वह आलोचकों की ही सीमा थी, प्रेमचंद की नहीं। प्रेमचंद व्यक्ति के रूप में चाहे जितने साधारण रहे हों, कथाकार के रूप में वे इतने बड़े थे कि उनका समय उन्हें समझने की कसौटी ही नहीं निर्मित कर पाया था। वे उस सामान्य जन की मूक व्यथा और मौन मुखर विद्रोह को अभिव्यक्ति दे रहे थे, जो औपनिवेशिक शासन और सामंती महाजनी व्यवस्था के क्रूर शोषण–दमन के साये में साँस ले रहा था। लेखक के रूप में वे अपने समय के अपवाद थे, अपने समय से ऊपर , अपने समय की समझ से भी बाहर । एक महान लेखक की यही पहचान होती है। (जनसत्ता, 30 जुलाई 2006)

मगर यह विडम्बना ही तो है कि ऐसे महान कथाकार को कभी गांधीवाद के दायरे में आबद्ध करने की कोशिश की गई, तो कभी मार्क्सवादी घोषित किया गया। मगर सचाई यह है कि उनकी रचनाओं ने गांधीवाद और साम्यवाद–दोनों का ही अतिक्रमण किया। यह खूबी महान रचनाकार में पायी जा जाती है। पर बीते दिनों प्रेमचंद को जिस ढंग से दलित–विरोधी और ब्राह्मणवादी मानसिकता का कथाकार घोषित किया गया है, वह हमारी घृणित मानसिकता का ही द्योतक है। 'रंगभूमि' उपन्यास में दलित की मूल जाति को संबोधन के रूप में इस्तेमाल करने की वजह से प्रेमचंद और निराला दलित–विरोधी हो गये, यह हमारी सोच की संकीर्णता नहीं तो और क्या है! दलित साहित्यकारों को इस तथ्य की जानकारी तो अवश्य रही होगी कि प्रेमचंद लेखन का बहुलांश दलितों को केन्द्र में रखकर ही रचा गया है। घीसू, माधव, धनिया, होरी, गोबर जैसे पात्रों को प्रेमचंद ने ही कथा नायक बनाया और पूरी दुनिया में अमरता प्रदान की। यह सच है कि दलित परिवार में जन्मा रचनाकार अपे भोगे हुए यथार्थ तथा उस माहौल की बारीक पड़ताल अपनी रचना की मार्फत बेहतर ढंग से कर सकता है, मगर यह भी उतना ही सच है कि आपबीती की हू– ब–हू प्रस्तुति का नाम ही साहित्य नहीं है। यथार्थ को विश्वसनीय व प्रभावी बनाने के लिए बहुत कुछ जोड़ना–घटाना भी पड़ता है और तब जाकर सत्य–शिव–सुंदर का समन्वय बन पाता है।

31 जुलाई, 1880 को जन्मे धनपत राय उर्फ नवाब राय उर्फ मुंशी प्रेमचंद 56 वर्ष, 2 माह 7 दिन की जिंदगी जीकर 8 अक्टूबर, 1936 को दिवंगत हो गये। महज छत्तीस साल के छोटे से लेखकीय जीवन में गुणात्मक और परिमाणात्मक दृष्टि से उनके उपन्यास–कहानियों की विपुलता, बच्चों के लिए कथा–साहित्य की अच्छी खासी तादाद, समालोचना–ग्रंथ, जीवनियाँ तथा हंस जैसी उच्च स्तरीय पत्रिका का संपादन–कौशल देखकर हैरत होती है। जिन दिनों दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की सोच भी किसी के मानस पटल पर शायद ही रही हो, उन दिनों प्रेमचंद ने उन्हें अपने कथा साहित्य का न सिर्फ विषय बनाया, बल्कि सामंती महाजनी शोषण के विरुद्ध मौन मुखर विद्रोह का ऐलान कर उनके हक के प्रति सचेत भी किया। इस संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की पंक्तियाँ गौरतलब है–''प्रेमचंद शताब्दियों से पद दलित और अपमानित कृषकों की आवाज थे। परदे में कैद, पद–पद पर लांछित और अपमानित असहाय नारी जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे।'' (साहित्य सहचर, पृ0 25)

एक साक्षात्कार में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने भी ठीक ही कहा था–''हर महान कलाकार अपने समय को लाँघ जाता है और हमेशा प्रासंगिक रहता है। प्रेमचंद भी महान कथाकार थे और उनकी उत्कृष्ट कहानियाँ, जो आज से पचास वर्ष पहले प्रासंगिक थीं, आज भी प्रासंगिक हैं, मैं ऐसा मानता हूँ।''

जहाँ तक उनकी रचनाओं की प्रासंगिकता का प्रश्न है, ग्राम–सुराज का सपना देखनेवाले गांधी भी ऐसा मानते थे कि जब किसानों–मजदूरों–दलितों की बदहाली नहीं रह जाएगी, तो लोग प्रेमचंद की कथाओं के जरिए ही जानेंगे कि तत्कालीन समाज में उनकी हैसियत–स्थिति क्या थी।

दुर्भाग्य से शोषित–पीड़ित निचले तबके की स्थिति आजादी के बाद भी बेहतर होने के बजाय बदतर ही होती चली गयी। नतीजतन प्रेमचंद की रचनाएँ, कई मायनों में पहले की अपेक्षा आज कहीं ज्यादा प्रासंगिक हैं।

दलित–विमर्श हिन्दी में नवें दशक के अंतिम दिनों शुरू हुआ था। हालाँकि मराठी में सबसे पहले इस आंदोलन की शुरूआत हुई थी और सातवें दशक के पूर्वार्द्ध में इसका आरंभ हुआ था, पर प्रेमचंद की

आखिरी उपन्यास 1936 में लिखा गया था, जो पहले 'गोदान' शीर्षक से उर्दू में और फिर उन्हीं के द्वारा अनूदित होकर हिन्दी में 'गोदान' के रूप में प्रकाशित हुआ था। उन दिनों दलित–विमर्श और स्त्री विमर्श जैसी कोई अवधारणा थी ही नहीं। यह प्रेमचंद की दूरदर्शिता और महानता का ही परिचायक है कि उन्होंने ग्रामीण व नागर जीवन के बीच सामंजस्य बनाते हुए दलित जीवन की संघर्ष गाथा को उपन्यास का विषय बनाया और कृषि संस्कृति तथा किसानों की दुर्दशा के बहाने सामंती शोषण और जाति–दंश को गहरी संवेदना के साथ रेखांकित किया। आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने 'गोदान' को महाकाव्यात्मक उपन्यास मानते हुए कहा था कि भारतीय संस्कृति और सामाजिक जीवन उस नदी की तरह हैं, जिसके एक तट पर ग्रामांचल बसा हो, तो दूसरी तट पर नगरांचल। यही इसका वैशिष्ट्य है और इसी कारण यह महाकाव्यात्मक उपन्यास माना जाएगा।

'गोदान' का नायक होरी महज तीन बीघे जमीन का जोतदार है और जन्मना वह महतो जाति के दलित परिवार से आता है। उत्तर भारत के कुछ सूबों में अब भी महतो को अनुसूचित जाति का दरजा हासिल है। पत्नी धनिया, बेटा गोबर (गोबरधन ध्नाभाव में गोबर का संबोधन पाता है।), बेटी सोना–रूपा, बहू झूनिया का समूचा परिवार तीन बीघे की खेती पर ही निर्भर है, जिसमें आधी उपज उधार बीज देनेवाले दातादीन को ही देनी पड़ती है। दलित होने के नाते न तो होरी और उसके परिवार को सम्मानजनक ढंग से जीवन का हक है, न अच्छा खाने–पहनने का ही। उच्च वर्ण के ब्राह्मण–ठाकुर कदम–कदम पर शोषण करते हैं, मगर कभी धर्म–परंपरा–रूढ़ि–कुरीति का भय दिखाकर तो कभी बहला–फुसलाकर। जब अपना स्वार्थ साधन हो तो होरी दातादीन जैसे ब्राह्मण को भी अपने परिवार का सदस्य ही नजर आता है। वह होरी को पुचकारते हुए कहता है–''तुम शूद्र हुए तो क्या, हम ब्राह्मण हुए तो क्या! हैं तो सब एक ही परिवार के।'' (गोदान, पृ. 192)

तीन बीघे जमीन का स्वामी होने के बावजूद होरी की दयनीयता एक भूमिहीन दलित या खेतिहर मजदूर से किसी भी मायने में बेहतर नहीं है। विकल्पहीनता की स्थिति में उसे अपनी इच्छा के विपरीत सारे कार्य करने पड़ते हैं, जिन्हें वह सपने में भी करना नहीं चाहता। उसकी दिली ख्वाहिश है कि वह अपनी जमीन का मालिक बना रहे। मगर परिस्थितियाँ ऐसी निर्मित की जाती हैं कि उसे अपनी प्यारी जमीन गिरवी रखनी पड़ती है, फिर बेचने को विवश होना पड़ता है। फिर तो किसान होरी, मजदूर बनकर रह जाता है। सिर्फ इतना ही नहीं, वह खाते–पीते घर में बिटिया के हाथ पीले नहीं कर पाता है और मजबूरन बेटी बेचने तक की नौबत आ जाती है। दरवाजे पर एक गाय पालने का सपना भी महज सपना ही बनकर रह जाता है। हालाँकि वह जी तोड़ मेहनत करता है, कहीं से भी कामचोर नहीं है, पर शोषण दमन की चक्की में पिसते हुए अभावग्रस्तता व निरीहता में ही उसका त्रासद अंत होता है।

'गोदान' में इस तथ्य की बारीक पड़ताल की गयी है कि जातीय दंश ने किस तरह पूरे माहौल को विषाक्त बना रखा है। शोषित जातियों में भी ऊँच–नीच और भेदभाव की खाई गहरी और गहरी होती चली गई है। आज के सामाजिक यथार्थ का भी तीखा सच यही है। झुनिया का बाप भोला यादव है, पर वह दलित गोबर से प्यार करती है। नतीजतन भोला का परिवार यह बर्दाश्त नहीं कर पाता। गोबर को जहाँ गाँव छोड़ना पड़ता है, वहीं गोबर के बच्चे भी माँ बननेवाली झुनिया को बहू बनाकर होरी–धनिया सबकी आँखों की किरकिरी बन जाते हैं। दूसरी ओर दलित परिवार की सिलिया जब बड़मुँहवा ब्राह्मण दातादीन के पुत्र मातादीन से प्रेम करती है, तो तथाकथित उच्चवर्गीय मानसिकता आड़े आ जाती है और धर्म–भ्रष्ट होने के खतरे मँड़राने लगते हैं। फिर तो उसे घर से निकाल बाहर कर दिया जाता है और अपना सर्वस्व न्योछावर कर देने के बावजूद वह मातादीन की रखैल और मुफ्त में शारीरिक श्रम करनेवाली मजदूर–भर बनकर रह जाती है।

यों तो गोदान में नागर संस्कृति को उजागर करनेवाले भी कई पात्र हैं। मसलन जमींदार, व्यवसायी, आधुनिक नारी, बौद्धिक आदि। पुरुषों के साथ कदम मिलाकर चलनेवाली मालती का व्यक्तित्व चित्रित करते हुए प्रेमचंद ने लिखा है–'मालती बाहर से तितली और अंदर से मधुमक्खी है।' मालती के साथ राय साहब, डॉक्टर मेहता, खन्ना, नोखेराम, पटेश्वरी, दातादीन, तन्खा, मिर्जा खुर्शीद जैसे चरित्रों के जरिए गंवई और शहरी जीवन के कोलाज, शोषण–उत्पीड़न के नये–नये आयाम जिस बारीकी और तटस्थता के साथ उद्घाटित किये गये हैं, वे पाठक को मानवीयता, करुणा के संवेदना की गहराई में पैठने को विवश करते हैं। मगर लेखक की सच्ची हमदर्दी दलितों वंचितों के प्रति है। यही वजह है कि वह उनकी कमजोरियों और खूबियों को इस प्रकार रेखांकित करता है कि दोनों ही स्थितियों में पाठकों की सहानुभूति उन्हें ही प्राप्त होती है। चाहे शिकारी दलित लड़की का चरित्र हो या दाई चुहिया का, कथाकार ने छोटे–छोटे उपेक्षित, पर मानवीय संवेदना से लैस पात्रों के व्यक्तित्व को भी अद्भुत ऊँचाई दी है।

'गोदान' में जगह–जगह दलितों के क्रांतिकारी कदमों की आहट भी गाहे–व–गाहे सुनाई देती है। यादवों के विरोध के बावजूद झुनिया को बहू के रूप में स्वीकार करने का होरी–धनिया का निर्णय। ब्राह्मणों की रूढ़िवादी समाज की परवाह न करते हुए पेट से रहनेवाली सिलिया को धनिया का संरक्षण। यहाँ तक कि उसके प्रेमी मातादीन को ब्राह्मण से दलित बनाने का साहसिक अभियान। सिलिया की माँ का आक्रोश भरा ऐलान–'हम सिलिया को अकेले न ले जायेंगे, उसके साथ मातादीन को भी ले जाएँगे, जिसने उसकी इज्जत बिगाड़ी है। तुम बड़े नेकधर्मी हो। उसके साथ सोओगे, लेकिन उसके हाथ का पानी नहीं पियोगे!'' फिर सिलिया का पिता भी हुंकार भरी गर्जना–'हम आज या तो मातादीन को चमार बनाके छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे।.... तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं....' मातादीन का ब्राह्मण से दलित और अंततः धार्मिक प्रायश्चित के जरिए दलित से ब्राह्मण बनकर भी सिलिया और अपने बेटे को अपनाना।

दलितों को केन्द्र और परिधि में रखकर रचित 'गोदान' के उपन्यासकार को दलित–विरोधी मानना दमित कुंठा नहीं तो और क्या है! पता नहीं, हर भारतीय भाषा, तबके के द्वार श्रेष्ठता को कसौटी पर खरा उतरनेवाला उपन्यास 'गोदान' दलित साहित्य की कसौटी पर दलित साहित्यकारों की दृष्टि में कब खरा उतरेगा?

समीक्षा

प्रेमचन्द साहित्य की वर्तमान प्रासंगिकता

नरेन्द्र किशोर सिन्हा
आदर्शनगर समस्तीपुर

प्रेमचंद आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक ऐसे साहित्यकार हैं, जो अध्ययन, अध्यापन और अनुसंधान की दृष्टि से आज भी केन्द्र में है। प्रेमचंद पराधीन भारत के लेखक थे। वह स्वतंत्र भारत को अपनी आँखों से देख तो नहीं पाये, किन्तु अपनी राजनैतिक चेतना के कारण अपने अंतिम समय तक वह समझ गये थे कि भारतीय शासन की कुर्सी पर अंग्रेज अब अधिक दिनों तक नहीं रह सकते। यह वह दौर था, जब स्वतंत्रता के लिए संघर्ष उत्कर्ष पर था। जाहिर है, प्रेमचंद की रचनाएँ इससे अछूती नहीं रहतीं। सन् 1909 में उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजे वतन' के नाम से छपा। उस समय बंग–भंग का आंदोलन हो रहा था। इन पाँचों कहानियों में स्वदेश प्रेम की महिमा गाई गई थी।

प्रेमचंद के विषय में शोध और समीक्षा उन्हें मार्क्सवादी या गाँधीवादी कहती आ रही है। प्रगतिशील या मार्क्सवादी समीक्षक उन्हें वामपंथी समाजवादी मानते हैं। परंतु प्रेमचंद गाँधी से अत्यन्त प्रभावित थे। गाँधीवाद और समाजवाद दो ऐसे ध्रुव हैं, जिनकी समाज दृष्टि भिन्न हैं। गाँधी की कल्पना रामराज्य की है, तो मार्क्स सर्वहारा की सत्ता के पक्षधर है। गाँधी या मार्क्स का प्रभाव प्रेमचंद पर पड़ सकता है। अनेक विचारकों, चिंतकों के विचारों को आत्मसात् करने के बाद ही एक सफल लेखक बना जा सकता है। प्रेमचंद का वैचारिक संबंध पहले गाँधी से हुआ, जो 1916 में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'कर्मवीर गाँधी' से पता चलता है। गाँधी के साथ प्रेमचंद के संबंधों में आत्मीयता, श्रद्धा भाव के साथ राष्ट्र नेता तथा महात्मा की स्वीकृति है। वोल्शेविक क्रांति सन् 1917 में हुई थी और प्रेमचंद इसके उसूलों के कायल हो गये थे। उस समय समाजवाद काफी चर्चा का विषय था। प्रेमचंद ने भी समाजवाद पर विचार किया और 1930 के बाद वे गाँधीवाद से समाजवाद की ओर उन्मुख हुए। वे 20वीं सदी को सोशलिज्म की सदी मानते थे। समाजवाद मनुष्य को समानता का अवसर देता है। प्रेमचंद ने अपने एक लेख में कहा है–''धन्य है वह सभ्यता, जो मालदारी और व्यक्तिगत सम्पत्ति का अंत कर रही है और जल्दी ही या देर से दुनिया उसका अनुसरण जरूर करेगी।'' राजनीति के बारे में भी उनका दृष्टिकोण समाजवादी व्यवस्था के पक्ष में था। भारत जैसे गरीबों के देश में समाजवाद ही आदर्श हो सकता है।

प्रेमचंद लगभग 25 वर्षों से किसान की त्रासदी की कहानी कहते आ रहे थे और इसी क्रम में होरी का जन्म हुआ। मार्क्स का समाजवदाद मजदूरों पर आधारित है, जबकि 'गोदान' में भारतीय किसान की गाथा है। 'गोदान' मैं औद्योगिक सभ्यता का विरोध है। किसानों के पक्षधर, किसानों की भाँति जीवन जीने वाले प्रेमचंद अंग्रेजों का दमन एवं जमींदारों का उत्पीड़न, समाज में व्याप्त अंधविश्वास, अशिक्षित जन की विवशता सभी पर दृष्टि जमाये हुए एक नई संस्कृति गढ़ने का प्रयास साहित्य के द्वारा कर रहे थे।

प्रेमचंद के समय में भारत में हिन्दू–मुस्लिम संबंधों की समस्या आज की तुलना में ज्यादा संवेदनशील थी। ब्रिटिश शासक इस बात को समझ रहे थे कि हिन्दू–मुसलमानों को एक–दूसरे के विरुद्ध खड़ा करके ही स्वाधीनता संग्राम को कमजोर किया जा सकता है। इसका सबसे आसान तरीका था, उनकी साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारना। प्रेमचंद के समय में चंद सांप्रदायिक तबकों के द्वारा भारत–पाक विभाजन की बातें चलने लगी थीं, वह इसके विरुद्ध थे। प्रेमचंद ने सन् 1930 में 'पाकिस्तान का नया शोशा' नामक लेख में कहा था कि ''अगर मजहबों के द्वारा कौमी एकता संभव होती तो यूरोप ईसाई धर्म के कारण और मुस्लिम देश इस्लाम के कारण एक हो गये होते।''

प्रेमचंद अपने समय के धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय नेताओं की पदलिप्सा को भी खुली आँखों से देख रहे थे। साथ ही वह समझ भी रहे थे कि धर्मनिरपेक्षता का मुखौटा लगाये ये नेता कुर्सी की सियासत में धार्मिक आधार पर मुल्क के दो टुकड़े कर सकते हैं और बेगुनाह जनता के खून से अपने हाथ रंग सकते हैं। उन्होंने गोरखपुर 'स्वदेश' अखबार में 1926 में एक लेख 'जाति पर स्वार्थ का विजय' लिखा था। इस लेख में अंग्रेजों के द्वारा जहाँ हिन्दू–मुस्लिम साम्प्रदायिकता को भड़काने के प्रयासों का जिक्र है, वहीं बिना किसी नाम लिये पदलोलुप नेताओं के अधःपतन को भी रेखांकित किया गया है।

प्रेमचंद पश्चिमी शिक्षा–प्रणाली के विरोधी थे। उन्होंने अपने लेख 'स्वामी विवेकानंद' में लिखा है कि शिक्षा का प्रधान उद्देश्य मनुष्य के चरित्र का उत्कर्ष, आचरण का सुधार तथा मनोबल का विकास है। 'पशु से मनुष्य' कहानी का नायक प्रेमशंकर अमेरिका से शिक्षित होकर भी पश्चिमी शिक्षा की दुष्प्रवृत्तियों की खुलकर बुराई करते हुए कहता है–''मैं निःस्वार्थ सेवा को विद्या से श्रेष्ठ समझता हूँ। मैं अपनी आत्मिक और मानसिक शक्तियों को धन और वैभव का गुलाम नहीं बनाना चाहता। मुझे वर्तमान शिक्षा और सभ्यता पर नहीं।'' प्रेमचंद ने 'हंस' के दिसंबर 1931 के अंक में लिखा है–''यूनिवर्सिटी तो भारत में कोई है ही नहीं, ग्रेजुएट बनाने के कई कारखाने हैं।''

प्रेमचंद भारतीय स्त्री के लिए शिक्षा आवश्यक मानते थे, परन्तु वे अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध थे; क्योंकि वे समाज में देख रह थे कि इससे उनकी 'विश्वास' कहानी की मिस जोश, 'गोदान' की डॉ. मालती और 'मिस पद्मा' की मिस पद्मा जैसी स्त्रियाँ ही निर्मित होती हैं। जहाँ नारी ने अपना पद खो दिया है और गृहस्वामिनी से गिरकर विलास की वस्तु बन गयी है। पश्चिमी की स्त्री आज गृहस्वामिनी नहीं रहना चाहती, स्वच्छंद होना चाहती है, इसलिए कि वह अधिक–से–अधिक विलास कर सके। प्रेमचंद स्त्री को पुरुष की दासी नहीं, उसकी सहयोगी बनाना चाहते हैं। आज देश में उसी पश्चिमी शिक्षा की प्रमुखता है, जिसके प्रेमचंद और गाँधीजी विरोधी थे। किन्तु इस अधोगति के बावजूद भारतीय समाज आज भी प्रेमचंद के नारी आदर्श को ही अपना आदर्श मानता है।

भारत में आज भी आमजन की बुनियादी समस्याएँ थोड़े बहुत फर्क के साथ बनी हुई हैं। आज भी साम्प्रदायिकता और जातिवाद हमारे लोकतंत्र को कलंकित कर रहे हैं। राजनैतिक या प्रशासनिक कर्णधारों की पदलिप्सा या भ्रष्टाचार एक लाइलाज बीमारी हो गयी है, विदेशी कम्पनी की आर्थिक लूट के कारण लतगभग आधी आबादी अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की संपूर्ति में असमर्थ है। देश का गरीब किसान एवं शहरों दिहाड़ी मजदूर आर्थिक अभावों के कारण आत्महत्या को विवश हो रहे हैं, महिलाओं, बच्चों, दलितों या आदिवासियों की समस्या ज्यों का त्यों बनी हुई है। अगर उपर्युक्त समस्याएँ मौजूद हैं, तो प्रेमचन्द का साहित्य इस देश के लिए आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ–

1. प्रेमचंद : शोध की नई दिशाएँ, कमलकिशोर गोयनका
2. प्रेमचंद : कितने मार्क्सवादी, कितने गाँधीवादी...डॉ. इन्दीवर
3. पुत्री को स्कूली शिक्षा देने का सवाल–कमलकिशोर गोयनका
4. प्रेमचंद की वर्तमान प्रासंगिकता, डॉ. प्रभा दीक्षित

समीक्षा

अचल भारती की उद्वेलन क्षमता एवं शिल्प प्रधान लघुकथाएं

डॉ. राधा सिंह,
विभागाध्यक्ष स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
साहिबगंज महाविद्यालय, साहिबगंज, झारखंड

लघु कथाकार डॉ0 अचल भारती की अबतक कोई कथा संग्रह सामने नहीं आई है, बावजूद इसके पत्र–पत्रिकाओं, अखबारों में छपी उनकी धारदार लघुकथाएँ 'समीक्षा की अनिवार्यता की माँग' रखता है। कहना चाहिए उनकी लघुकथाओं की उद्वेलन क्षमता उसकी मारक क्षमता सहज ही पाठकों को बहुत कुछ सोचने के लिए विवश कर देती है, जो शिल्प–प्रधान होने से एक विशिष्ट शैली की पक्षधर भी है। डॉ. भारती स्वयं एक सधे हुए समीक्षक हैं। लघु कथा को लेकर उनकी मान्यता है–'मस्तिष्क के क्षेत्र में हृदय की उपज है श्रेष्ठ लघुकथाएँ।' शायद इस कसौटी पर ही उन्होंने लघुकथा को श्रेष्ठता प्रदान की है। उनकी दर्जन भर लघुकथाओं से गुजरते हुए अंततः सात–आठ कथाओं पर दृष्टि अटककर रह गई। अब तो परिणाम पाठकों के सामने है।

संभवतः उनका 'मस्तिष्क का क्षेत्र' का अभिप्राय 'बौद्धिकता के क्षेत्र' से है। साथ ही 'हृदय के क्षेत्र' का अभिप्राय 'कथा का सबसे अधिक संवेदित क्षेत्र से है। वे कथा में भावना को आजादी देने की बजाय एक हद तक उसे संतुलन की अवस्था से गुजारना चाहते हैं। वे कथा के चरम–विन्दु पर पहुँचकर पाठकों के जड़ मस्तिष्क को इस कदर झकझोरते हैं कि झटके का प्रकम्पन अप्रत्याशित विराम पर प्रभावी फोकस कर जाता है। शिल्प विधान देखते ही बनता है। उनकी लघुकथाओं का ताना–बाना–राष्ट्र, राष्ट्रीयता,राष्ट्रीय संस्कृति, राष्ट्रीय समस्या, राष्ट्रमाता, नारी समस्या, नारी मूल्यों, सांस्कृतिक मूल्यों, वैयक्तिक एवं सामाजिक सरोकार की अवधारणाओं आदि की जमीन पर बुना गया है। 'अनकही कहानी' में राष्ट्रमाता की स्थिति देखें–'वातावरण होता रहा उद्वेलित।बार–बार विविध दंगल की घोषणा और जहर के अवसाद से फटने लगा, माँ का कलेजा।माँ हो गयी सन्न। चतुर्दिक शोर–शराबा, मारो–काटो, लूटो–झटको, पीटो–पटको के कुहराम में राष्ट्रमाता के कानों से टकराने लगी आवाज...माँ का शिर हमारे हिस्से....माँ की भुजाएँ हमारे हिस्से.....माँ का पेट– पीठ हमारे हिस्से...माँ का पाँव हमारे हिस्से...जैसे माँ कट–कटकर खंड–खंड होकर रह गई। उन्हें गुलामी का जख्म और आजादी का अटपटा मरहम एक जैसा लगा। यहाँ कथ्य को परोसने का गजब का शिल्प विधान है तथा यथास्थिति का नग्न यथार्थ कहानी के अंत के सन्नाटे को चीरता पीड़ा की बयानी करता है–'यह है विडम्बनापूर्ण किसी राष्ट्र की निष्प्राण रह ही राष्ट्रमाता की अनकही कहानी।'

'देश के सवाल पर' लघुकथा में कंगाल का यह कथन–'कहीं बेवक्त में उठ रहा यह धुआँ इस बात का खुलासा तो नहीं कि हम सबका ही देश–घर जल रहा है। सवाल यह भी तो है कि आग कहाँ से आई, किसने लगाई और क्यों लगाई?इसे जान लेना उतना ही जरूरी नहीं है क्या?सवाल दर सवाल खड़ा कर जाता है और कहानी का अंत सन्नाटे के दौर में पहुँच जाता है, इस कदर 'वहाँ अकेला खड़ा कंकाल ऊपर उठ रहे धुएँ के साथ साथ देश के सवाल पर आँसू बहाता रह गया।' यह कंगाल राष्ट्र की अंतर्दशा में आकांक्षा का प्रतीक है, संभवतः राष्ट्रीय संस्कृति का वाहक भी।

'आजादी कहानी' लघुकथा में अप्रत्यक्षतः लेखक बदरंग भारत की तस्वीर खींचता है, 'मुल्क की विद्रुपताओं में सौंदर्य की खोज उन सबों का बड़प्पन बन चुका था। चारो तरफ अराजकता अशान्ति ने युगबोध पर प्रश्न चिह्न लगा रखा था। सभी राष्ट्र के टूटे पहिए पर सवार होकर हाँक–पर–हाँक लगा रहे थे। कहना चाहिए सब कुछ बेमतलब व बेमानी हो चुका था। कहानी का अंत एक झटके में 'संभवतः यह आजाद भारत की आजादी कहानी है' कहकर कर दिया जाता है, जो राष्ट्र के समक्ष एक विराट शून्य ला खड़ा करता है।

'राजनीति का जश्न' लघुकथा में आम राष्ट्र की दुर्दशा एवं राजनीति के जश्न को इस तरह उकेरा गया है–आम लोग टूटते रहे, बँटते रहे, घूँट जहर का पीते रहे, मुँह में घी–शक्कर के नुस्खे आजमाते रहे, लुटते व मिटते रहे। आह–कराह की हवा होती रही गरम....और इस तरह महान होता गया राष्ट्र राजनीति का जश्न लेकर। यहाँ कहानी का अंत व्यंग्यात्मक शैली में एक जोरदार झटके में होता है, इस तरह–कहते हैं उस देश में आज भी लोकतंत्रा की जड़ें काफी गहरी और मजबूत है और वहाँ राजनीति है आकाश की ऊँचाइयों पर चढ़ने की एकमात्रा सीढ़ी, जो कितनों का अबतक भगवान के सिंहासन पर बिठा चुकी है।'

उत्कृष्ट नारी भावना पर केन्द्रित लघुकथा पत्थर की एक और अहिल्या में चिट्ठी लिखती नारी का मारक व्यंग्य कथन देखिए–शायद तुम्हारे हारने से तुम्हारे समाज में मर्द की परिभाषा को ठेंस लगती थी और तुम वही मर्द होकर घिसी–पिटी परिभाषा के समक्ष एक और परिभाषा को स्वीकार नहीं कर सकते थे। यही तो होना था तुम्हारे इंतजार में, आखिरी चिट्ठी लिखकर तुम्हारी महानता पर तुम तक बधाई भेज रही हूँ। बस!' कहानी के अंत में स्वयं नायिका 'पत्थर की एक और अहिल्या' का दर्द भरा विशेषण ओढ़ लेती है, जो कथा का उद्वेलन कारक है।

'वार्तालाप का सच' लघुकथा संवाद शैली में लिखी गई हे।प्रकाश का कहना है–'इस समय अंधकार कहाँ मिलेगा मुझे?' विद्युत का सीधा–सा उत्तर है–'यह तुम उन भारतीयों से पूछो कि उनलोगों ने स्वयं के वर्चस्व की स्थापना में खुद की जड़ित महात्वाकांक्षा में कहाँ–कहाँ अंधकार को छिपा रखा है?' अंधकार द्वारा विद्युत व प्रकाश पर बज्रपात करना एक बड़ा सवाल है। यथा–'विद्युत तो प्रकाश, व्यर्थ सब व्यर्थ। यत्न सारे निष्फल। स्वयं की खोपड़ी में अहंकार का रथ हाँकते, जीवन संग्राम में अंधछाया का प्रसाद चढ़ाते, खुद का मान–सम्मान स्वाभिमान खुद ही कुचल जाते। भला क्या हो ऐसे में इन लोगों का?...अंधकार का आना ही...फिर फिर आना अंधकार।' जैसे पूरे उज्ज्वल तंत्र व्यवस्था को निरुत्तर कर देता है। कथा का अंत इन पंक्तियों से होता है–'यह सब सुन विद्युत संग प्रकाश एक साथ ठगा–ठगा–सा ठहर गया।' मानो यह कथा का ठहराव नहीं, अपितु संपूर्ण व्यवस्था व राष्ट्र का ठहराव है और यह वार्तालाप का वो सच है, जिसे झुठलाने वाला खुद झूठा हो जाता है।

ऊपर के चंद दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि लघुकथा के व्यापक क्षेत्र में डॉ. भारती के पास सूक्ष्म दृष्टि के साथ–साथ विस्तृत आकाशीय फलक भी है। शब्दों, सवालों और विचारों के माध्यम से समाधान में उतरने की प्रक्रिया उन्नत एवं उच्चतम सूझ–बूझ का साहित्यिक सत्कर्म है। इनकी और भी अन्य लघुकथाएँ हैं; जैसे कहानी का अंत, चार सवाल, लादेन, सुबह का सूरज, कुटिल चाल, वादे का सच, गुनाह, विनाश की सूरत, कड़ुआ सच, मरघट का साया, पूर्वाग्रह, माँ का महामंत्र आदि जिसपर बहुत कुछ लिखना शेष है।

समीक्षा

मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा

प्रो. रमेश दवे

डॉ. डी.एन. प्रसाद प्राध्यापक
महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय गाँधी हिल्स
वर्धा, मो0. 09420063304

अप्रकाशित उपन्यास की संरचनात्मक समालोचना : शिक्षा का वैचारिक कुम्भ है

चिंतन की नूतनता और भाषा की प्रवाहमयी गूढ़ता के साथ जब प्रो. रमेश दवे सर्जना को आयाम देते हैं, तो वह एक नायाब नमूना निर्मित हो जाता है। कविता हो, कहानी हो, उपन्यास हो, आलोचना हो या संपादकीय विहान हो; सब कुछ विहान के विहग की भाँति नूतन होता है, पाठक को चौंकानेवाला होता है और सृजनधर्मा के लिए रमेश दवे की सृजनधर्मिता के प्रति चिंतन का आयाम दे देता है। कविता में अनछुए बिम्ब का स्पर्श, कहानी में कथन की शैली का अलग व्याकरण, उपन्यास में सामाजिक आँखों से ओझल किन्तु सार्थक समस्या का कथाबोध और आलोचना में समदृष्टि की समालोचना; किन्तु भाषा वाग्प्रवाह की तरह काल तथा संपादकीय समकाल पर तिरोहित रमेश दवे की तात्कालिक संवेदना का साहित्य सृजन है। संवाद में कहीं लाग– लपेट नहीं; न कोई भाषायी गोपन, न छद्म का आलोड़न।

व्यक्तित्व 'एकला चलो रे बंधु...' परन्तु पीड़ा व्यक्ति की हो या समाज–परिवार की, श्री दवे दबे पाँव आकर अपना काम कर जाते हैं। न कोई फतवा, न कोई शोर और न कोई इस्तहार! आलोचना की उत्तर परंपरा में रचना–समय का संघर्ष जारी है और अस्सी पार के वय में भी कलम की धार अपनी दिशा में तीक्ष्ण है। एक और बात है रमेश दवे में, रमेश की रूह जहाँ रहबर हो गयी, समझो कोई–न–कोई रूहानी इमारत खड़ी होगी ही! बात महात्मा गाँधी अंतराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा की है, रमेश दवे को यहाँ तीन माह के लिए अतिथि लेखक का आमंत्रण मिला। विश्वविद्यालय के अतिथि गृह का एकांत चिंतन सृजन को प्रवाह देने लगा। कुछ स्फुट सर्जना के बाद आकारिक सर्जन आकार लेने लगा। रमेश दवे अपने परिवेश के समकाल और रुचि की सुरुचि से विषय उठाते हैं और संदर्भित शब्द से विषयानुकूल कथा की रचना कर डालते हैं। अपने पूर्व के दो उपन्यास 'खेलगुरु', 'हरा आकाश' की भाँति तीसरा उपन्यास 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' विषय परिप्रेक्ष्य में अकेला है। 'खेलगुरु' खेल की दुनिया की जबरदस्त कथा, 'हरा आकाश' पर्यावरण की परिधि में गार्डेनिंग पर इकलौती कथा रचना और तीसरा 'मास्टर एकनाथ का शिक्षानामा' शिक्षा जगत् का संपूर्ण दस्तावेज औपन्यासिक वृत्ति में। इस विषय पर संपूर्ण उपन्यास की रचना अभी तक नहीं है। इस तीसरे उपन्यास का रचना–समय भी स्मॉल इज ब्यूटीफूल की भाँति है अर्थात् मात्र 47 दिनों की रचनात्मकता में उपन्यास की पूर्णाहुति होती है। इससे रमेश दवे की सर्जनात्मक ऊर्जा का पता चलता है और तब सार्थक होता है 'ओल्ड इस गोल्ड' कहना। शिक्षा समाज को मात्र 47 दिन में औपन्यासिक कथानक में पिरोकर पूर्णता प्राप्त करना एक अनोखी और अकेली घटना है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास लेखन की यह अवधि लेखकर की कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का सम्मिलन ही है। यह उपन्यास लेखकों के लिए नजीर है। यों यह भी कहा जाए कि 80 के वय में लेखक रमेश दवे ने उपन्यास को एके 47 दाग दिया है। यह साहित्यिक हलचल का हवाला होना चाहिए।

उपन्यासकार रमेश दवे ने अपने पूर्व के दो उपन्यासों की भाँति 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' को समाज के सामने हल खोजने को रख दिया है। शिक्षा समाज का एक ऐसा जरूरी विषय है, जिसके बिना समाज के विकास की कल्पना नहीं। हम सभी जानते हैं कि शिक्षा मंदिर में ज्ञान का नैतिक व्यवहार सिखाया जाता है; परन्तु उसी मंदिर में जब ज्ञान का अनैतिक व्यवहार होने लगता है, तब भी हम अपना होंठ सीले रहते हैं। मास्टर रामनाथ होंठ खोलना चाहता है, परन्तु फिर भी सांसारिकता से थक जाता है। जब उपन्यास का क्रिएटिव कैरेक्टर हेमन्त राव पांडुरंग राव सिरपुरे नागपुरवाले, जो मास्टर रामनाथ का सहपाठी है, उसे शिक्षा की वर्तमान स्थिति का आकलन करता है, ''रामनाथ थोड़ी धीरज से काम लो। जल्दबाजी के फैसले कभी–कभी नुकसान में बदल जाते हैं। माना कि हमारा शिक्षातंत्र खराब है, भ्रष्ट, कहीं–कहीं अराजक है, मगर दो शताब्दियों की औपनिवेशिक शिक्षा हमसे हमारा चरित्र तो छीन लिया और हमारे अंदर भी उपनिवेशवाद का चरित्र रच दिया। हमारी सोच पर हमारे अहंकार, अधिकार, सत्ता, शक्ति, धन सबका उपनिवेश हावी हैं। क्या करें व्यवस्था तो निर्मम लौहकवच कसे बैठी है, उसे फोड़कर कवच मुक्त करनेवाली शक्ति अभी हमारी शिक्षा बन नहीं पाई है। फिर भी एक बात तो है, इस शिक्षा के उपनिवेश से उपनिवेश के विरुद्ध अभियान छिड़े, आंदोलन हुए, क्रान्तियाँ हुईं और कई गुलाम देश आजाद हो गये। आजाद तो हो गये, मगर आजतक हम एक आजाद मुल्क की शिक्षा कैसी हो या ऐसी हो कि जो हमारा उपनिवेश हमारे मन से उखाड़ फेंके, ऐसा कुछ नहीं हुआ।''

अपने रेवेन्यू अफसर मित्र सहपाठी हेमन्त राव पांडुरंग राव सिरपुरे नागपुरवाले की शिक्षा आयाम पर इतनी अच्छी विश्लेषणात्मक बातें सुनकर शिक्षक रामनाथ अपने भूत, वर्तमान और भविष्य की शिक्षा परिणाम पर विचरने लगा। फिर जिस मित्र हेमंतराव की अजन्मा बेटी के

लिए प्ले स्कूल में एडमिशन हेतु मास्टर रामनाथ प्ले स्कूलों की खाक छान रहा है और व्यवस्था के व्यवहार से माथा पीट रहा है, उस हेमंतराव की चिंतनपूर्ण व्यावहारिक दर्श की बातें सुनकर अपनी उच्च शिक्षा की पीएच.डी. तक में दाग देख रहा रामनाथ क्षुब्ध है कि ऐसी शिक्षा व्यवस्था का समाजशास्त्र कैसा होगा, पीजी (प्लेग्रुप) से पीएच.डी. तक तंत्र की तांत्रिक व्यवस्था की जकड़न है। यह जकड़न जकंफूड की तरह हमारी धमनियों को निष्क्रिय और विचारशून्य बनाकर संवेदनहीन शिक्षा का परिवेश निर्मित कर रही है, जहाँ रामनाथ ऐसा शिक्षक शून्य में विचरण करने लगता है। ऐसी ही शिक्षा व्यवस्था से निकले अक्षर ज्ञानी समाज के लिए अराजक बने हुए हैं। इस बात की चिंता रामनाथ को विकल्प तलाशने को बाध्य करती है।

इसी व्यवस्था में पली बढ़ी बॉटनी की प्राध्यापिका शालिनी की प्रतिमूर्ति की तरह आती है और मास्टर रामनाथ को 'राम' बनने को प्रेरित करती है। शालिनी में शील है, संयम है, शालीनता है और अपने पेशे से प्यार भी है; क्योंकि छात्राओं के बीच एक शीलवान और लोकप्रिय शिक्षक की भूमिका में खरी है। बॉटनी क्या पढ़ाती है, जैसे जीवन से ही जोड़ देती है। जे.सी.बसु की खोज से आगे की बात! शालिनी 'राम' को संभालने की कोशिश करती है, ''सुनो रामनाथ! विकल्पों में मत चक्कर लगाओ। विकल्प निर्णय की या चयन की ताकत को कमजोर कर देते हैं। मेरा ख्याल है, तुम मास्टर तो पूरे हो, प्राध्यापक बनने की योग्यता भी पूरी है, एनजीओ भी चला सकते हो, मगर इन सबको चलाने का काम एक ब्यूरोक्रेट और अच्छी तरह से कर सकता है। बस जरूरत है कि ब्यूरोक्रेसी को बदलना होगा। उसके औपनिवेशिक या सामंती चरित्र को लोकोन्मुखी और शालीन बनाना होगा। उसके औपनिवेशिक या सामंती चरित्र को लोकोन्मुखी और शालीन बनाना होगा। ब्यूरोक्रेट्स को विनम्र और संवदेनशील बनाने की जरूरत है। ब्यूरोक्रेसी और बयूरोग्रेसी अर्थात् ग्रेसफूल बना सकते हो तुम! अधिकार से अहकार पैदा होता है, ब्यूरोक्रेसी के अहंकार का यह पुरातन प्रशिक्षण बदलकर लोककल्याणकारी बनाना होगा। राजा–महाराजाओ के साढ़े छः सौ राज्यों को जिस शक्ति ने एक ही झटके में राजा से नागरिक बना दिया, उसी झटके से तुम्हें ब्यूरोक्रेसी को बदलना पड़ेगा। सेवा का अर्थ न जाने क्यों नौकरी हो गया है। नौकरी का अर्थ भी बड़ा अधिकार होकर अहंकार की आजमाइश हो गया है। तुम आज से पूरे छः माह का अवकाश ले लो। तैयारी में जुट जाओ। विदाउट–पे होने का घाटा मैं पूरा कर दूँगी।

शालिनी की व्यवहारकुशल बातों से रामनाथ के अंदर के ज्ञान को चुनौती दे दी। उसके अंदर का मास्टर जाग उठा। शील, संयम और कर्म की त्रिवेणी बहने लगी। निःस्वार्थ उदारता शालिनी के शिक्षा के झरोखे से रामनाथ को शीतल हवा दे गई। वह अव्यवस्था के बीच में अपना निर्णय निर्मित करेगा। बने बनाये रास्ते पर चलने की बजाय वह अपना रास्ता स्वयं निर्मित करेगा। दूसरों के लिए आदर्श बनेगा। शिक्षा के सरोवरों में एक अपना पत्थर उछालेगा, जिसकी तरंगें 'अंतिम जन' तक जायेंगी। समय के विद्रूपों से लड़ेगा, नैतिक साहस से बोलेगा।

कटिबद्ध मास्टर रामनाथ अपनी ईमानदार पढ़ाई से आई.ए.एस. हो जाता है। आदिवासी बहुलक्षेत्र में पोस्टिंग आदि– वासियों के नैसर्गिक जीवन और स्वभाव का परिचय कराती है। कक्षा और पाठ्यपुस्तक से परे ये प्राकृतिक नियमों से संचालित हैं, आज की शिक्षा व्यवस्था से कहीं ज्यादा शील और संयम के साथ। प्रशासक बना रामनाथ अपने अंदर के शिक्षक और शिक्षा को ढूँढ़ता है। शिक्षक के रूप में अपने को संवेदनशील पाता और सोचता है, 'क्यों नहीं सभी शिक्षक संवेदना से भरे हैं। यहाँ रामनाथ को कवि गोरख पांडेय की कविता याद आती है–तुम्हारे हाथों का/अपने हाथों में लेकर सोचता हूँ/ क्यों नहीं दुनिया/ तुम्हारे हाथ की तरह नरम और मुलायम। फिर रामनाथ शिक्षा में अराजकता और हिंसक वृत्ति का समावेश पाता है। उसे मैन मेकिंग एडुकेशन दिखता ही नहीं है। द्वन्द्वउद्बुद्ध होकर अपने प्रमुख सचिव से प्रश्न कर बैठता है–''सर! मेरे मन में सदैव एक विचार खलबलाता रहता है। स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक में झूठ, ईर्ष्या, अपराध, बलात्कार, भ्रष्टाचार, झूठी शिकायत, तथाकथित आरोप, चरित्र–हनन आदि किसी ऐसे विषय का कोई पाठ्यक्रम नहीं होता, न ऐसी पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, फिर ये दुर्गुण कहाँ से आ जाते हैं?यदि ये मनुष्य के स्वाभाविक मनोविकार हैं, तो क्या शिक्षा से इन्हें सुधारा नहीं जा सकता?शिक्षा अगर संयम, शील, संतुलन, सहयोग, सद्भाव, आपसी प्रेम आदि नहीं बनाती तो क्या शिक्षा से अक्षरों, शब्दों का जखीरा जीवन भर ढोना है?हमने स्कूल, कॉलेज, विश्वविद्यालय बनाये, मगर उनसे अच्छे मनुष्य क्यों नहीं बनाये सर?''अपनी अंतश्चेतना की अंतर्मुखी चिंता को व्यक्त कर रामनाथ कुछ रिलैक्स तो होता है, परन्तु 'येई छलेटिके मानुष कोड़ते होइबे', 'मैंने मेकिंग एजुकेशन', 'विद्या ददाति विनयम्' आदि–आदि आप्त सूत्रों के अर्थ–संदर्भ को लेकर चिंतित रहता है। वर्तमान शिक्षा–व्यवस्था की हिंसक वृत्ति से क्या शान्ति की शिक्षा पूर्ण होगी?विकास के बदलते मॉडल में शिक्षातंत्र जिस विकास की सीढ़ियाँ तय कर रहा है, उससे मूल्याधारित शिक्षा का कोई मेल है क्या?जबकि शिक्षा स्वयं एक मूल्य है। गाँधी, रविबाबू, विवेकानन्द, अरविन्द, महामना आदि सभी ने शिक्षा मूल्य से जीवन–मूल्य की सीख दी है, फिर क्यों हम प्लेटो, अरस्तू, पेस्टॉलाजी, फ्रोबेल, जॉनडिवी के पीछे भाग रहे हैं, जबकि बर्ट्रेण्डरसेल जैसा दार्शनिक बाइबिल के बाद 'हिन्द स्वराज' को अपनी सर्वाधिक प्रिय पुस्तक मानता है। इवान इलिच जैसा शिक्षाविद् सेवाग्राम में रहकर शिक्षा के गांधी चिंतन को ग्रहण करता है, आदि–आदि विचारकों के विचारधारा से रामनाथ टकराता है, धारा में बहता है और अपने प्रशासक पर स्वयं से प्रश्न करता है, 'आखिर शिक्षा की बुनियाद ऐसी क्यों है?जबकि शिक्षा आदमी से मनुष्य की रचना करती है, उसका परिष्कार और परिमार्जन करती है। इससे इतर विकास का मानवीय मॉडल और क्या हो सकता है?' रामनाथ चिंतित है, उपन्यास का लेखक भी चिंतित है।

शिक्षा की केन्द्रीय भूमिका पर उपन्यास की सर्जना एक वैचारिक आंदोलन से कम नहीं है और जरूरी भी है। मूल्यहीन शिक्षा की वर्तमान दिशा ने सूचना तो दी है, विद्यार्थी का ब्रेन सूचनातंत्र से भर तो दिया है, परन्तु संवेदना को खाली कर दिया है। ऐसे प्रश्नों में प्रशासक बना रामनाथ ब्रिटिश शासन और वर्तमान शासन के बीच अंतर कर चौक जाता है–'गाँधी था तबभी गोली चली, गाँधी पर भी गोली चली और गाँधी के बाद भी गोली चल रही है। क्या शान्ति, प्रेम, अहिंसा, सद्भाव की चतुर्वेणी सूख गई है?पश्चिम की हिंसक सभ्यता ने यदि हमें हिंसक शासन–प्रशासन दिया, उनका ही पुलिस कोड, उनका ही इंडियन पेनल कोड, क्रिमिनल और सिविल प्रोसीजर कोड, अगर सारे कोड उनके ही हैं तो हमारा कोड क्या है?हमारा जो मॉरल कोड गाँधी ने रचा था और जिसके समक्ष गोलियों की सत्ता गलियों में आजादी के अहिंसक नारों की सत्ता में बदल गई थी, वह अब कहाँ है?गाँधी से जो गोली हार गई थी, उसी गोली से हमने गाँधी को मार डाला। गाँधी की मौत पर ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने क्या कहा था, मालूम है!

उनका कहना था कि गाँधी को छह साल तक जेल में भी हमने उन्हें जिंदा रखा, आपने छह माह के अंदर ही जेल के बाहर मार दिया। कितना बड़ा सच बोल गया था! सच पूछा जाए जो गाँधी की मृत्यु के बाद आजाद भारत में भी गोली की ही सत्ता आ गयी है।'

उक्त चिंतन लेखक का हो या उपन्यास के नायक रामनाथ का या देश के अन्य अनेक रामनाथ का जो नैतिक साहस के साथ बदलाव करना चाहते हैं, विचारान्दोलन करना चाहते हैं, परन्तु गोली की सत्ता के कारण सहम जाते हैं, विमुख हो जाते हैं, होंठ सी लेते हैं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार के बावजूद! वस्तुतः उपन्यास शिक्षा समाज का खुला दस्तावेज है जो हर वर्ग के लिए अनिवार्यतः पठनीय नहीं, विचाणीय है। रामनाथ आदर्श नायक है, तो उसका सहपाठी हेमन्तराव पांडुरंगराव सिरपुरे नागपुरवाले वर्तमान परिवेश का व्यवहार कुशल सरकारी अधिकारी और सहनायक, फिर भी अपनी बेटी के लिए प्ले स्कूल में प्रवेश के हेतु मारा–मारा फिरता उपन्यास का नवाचारी पात्र, जिसे पता है कि जिस दिन सरकारी स्कूल नहीं होंगे, आधा हिन्दुस्तान अनपढ़ या निरक्षर रह जाएगा, परन्तु मेरा आकलन है कि एक तिहाई भारत (75%) अक्षर पहचान से कोसों दूर रह जाएगा। बावजूद इसके हेमंतराव पांडुरंगराव सिरपुरे नागपुरवाले शिक्षा के वर्तमान विकास की दौड़ में अपनी बिटिया के लिए प्ले स्कूल के पीछे दौड़ रहा है और प्रशासक बना रामनाथ पीएच.डी. जैसी शिक्षा की ऊँची डिग्री के चंगुल से विमुख व्यवहारवादी शिक्षा दार्शनिक की दृष्टि से विकसित व्यवहार को देखना चाहता है, जो शिक्षा का जीवन मूल्य है, विचार मूल्य है, जिससे मानवीय व्यवहार की निर्मिति होती है। विचारहीनता की व्यावहारिक प्रबुद्धि के कारण वैचारिकहीन व्यक्तिसमूह ने गाँधी को गोली मारी, मगर शिक्षा की वैचारिकी व्यावहारिकी का परिज्ञान होता तो शायद ऐसा नहीं होता। आज भी हम ऐसी मानसिकता से ऊबर नहीं पाये हैं, आज तो शिक्षा की सूचनांक प्रणाली ने वस्तुनिष्ठता तो दी है, समष्टिनिष्ठता नहीं दी है। नेट पर पढ़ने की आदत तो विकसित हुई है, पर क्या नेट किसी भी जीवित पुस्तक का विकल्प है?पुस्तक विचार को जन्म देती है, नेट सूचना बनकर रह जाता है। तात्पर्य कल चित्त अस्थिरता के कारण विचारहीनता थी, आज तकनीकी दौड़ के कारण!

आज, अलबत्ता यह उपन्यास केवल शिक्षा की गल्पकथा ही नहीं, बल्कि मनुष्य के विवेक, विचार और अनुभव–विन्यास की भी कथा है। इसे शिक्षा का वैचारिक कुम्भ कहना या शिक्षा का वैचारिक ज्ञानकोष कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगा। अर्थात् शिक्षा विचार का कोष है यह 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' जिसे शिक्षा के खुरदुरेपन से सॉफ्ट बनाया है उपन्यास की धीरोदात्त नायिका शालिनी ने। प्राध्यापिका शालिनी! कितना शील, कितना संयम! कितनी मर्यादाएँ! धीरोदात्त नायिका गुणसम्पन्न! कितनी शालीनता! विसंगतियों और विडम्बनाओं से स्वयं संघर्ष करती मास्टर रामनाथ की होकर शिक्षा को सुपथ से सहेजती, सँवारती सहधर्मिणी! बड़ी सहजता से गूढ़ बात को सरलता में कह जाती है, जहाँ कोई विसंगति नहीं–हाँ, रामनाथ! सोच तो तुम्हारी सही है। मैं भी चाहती हूँ कि यह देश केवल हेमन्तराव पांडुरंग राव सिरपुरे नागपुरवाले की बेटी उज्ज्वला के प्ले स्कूल की ही खोज न बने, बल्कि सारे देश के सारे बच्चों का प्ले स्कूल बन जाए, सारे किशोरों, युवकों का प्ले–कॉलेज और प्ले विश्वविद्यालय बन जाए, जहाँ शिक्षा आनंद का उत्सव बने, ऊर्जा का चमत्कार बने और शिक्षा ऐसी बने कि हर स्वप्न देखनेवाले को शिक्षा अपना स्वप्न लगे।'

परिप्रेक्ष्य उपन्यास के 'मास्टर रामा का शिक्षानामा' लेखक रमेश दवे के सुदीर्घ शैक्षिक अनुभव की सृजनगाथा है, जिसे अत्यन्त निर्भावुक होकर, शैक्षिक संवेदनशीलता से रचा गया है। शिक्षा को केन्द्र में रखकर अभी तक समग्र और सर्वांग रूप से कोई उपन्यास शायद हिन्दी में संभव नहीं हुआ था। आंशिक रूप से किसी पक्ष विशेष को लेकर रची गयी अनेक कृतियाँ हैं तो अवश्य, लेकिन वे शिक्षा के रूप के रूप–स्वरूप, स्थिति और विकास को उसकी पूर्णता में संभवतया प्रस्तुत कम ही कर पाती हैं। ऐसे में शिक्षा जैसे एक विशाल व्यापक तंत्र को कथाभूमि बनाकर रचना कम चुनौतीपूर्ण कार्य नहीं रहा होगा। लेकिन प्रो. रमेश दवे ने जहाँ वस्तुनिष्ठ यथार्थ को रोचकता से रचा है, वहीं व्यंग्य और भाषायी गठन से उपन्यास में निरंतर पठनीय उत्सुकता कायम रखी है। शिक्षा जो आजकल तंत्र या व्यवस्था के अधीन है, उसे उसकी मर्यादा, निष्ठा और संकल्प के साथ कैसे सामाजिक परिवर्तन की तेजस्वी भूमिका में सक्रिय किया जा सकता है, यह उपन्यास पढ़कर शिक्षा से जुड़े शासक, राजनीतिक नेतृत्व, प्राध्यापक, सामान्य नागरिक, अभिभावक, समाजकर्मी, छात्र–छात्राएँ सभी कुछ नया सोचने के लिए उन्मुख होंगे। वस्तुतः यह उपन्यास संभवतया भारतीय शिक्षा के भविष्य चिंतन की एक भूमिका ही है, जिसे पढ़कर आगे का शिक्षा–मार्ग प्रशस्त किया जा सकता है।

अंततः 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' ब्रिटिश भारत के बाद के भारत की शिक्षा तस्वीर उकेरता, समसामयिक समय का यथार्थवादी कला के उपांगों के प्रस्तुत करता एवं अपने आपैन्यासिक चरित्र को चरितार्थ करता कथा–माध्यम में कथानक का दर्पण है, जिसमें एक पूरा शिक्षा–समाज अपना मुखड़ा साफ देख सकता है और देख सकता है समाज–दर्शन, शिक्षा–दर्शन के साथ मनोविज्ञान दर्शन भी। लेखक प्रो. दवे की भाषा संवेदना को दवे पाँव चिकोटी काटकर चली जाती है, पाठक रूपी समाज को इसका मानवीय दर्द सहने को और मजे की बात यह है कि दर्द सहने की यही मानवीय संवेदना समस्या का सुपथ दिखाती है, उपन्यास का इष्ट भी यही है। शिक्षा में साहित्य का उन्मीलन और साहित्य में शिक्षा का आलेपन एक दृष्टिपाक देता है। अस्तु, अपने विषय के परिप्रेक्ष्य में 'मास्टर रामनाथ का शिक्षानामा' औपन्यासिक कथानक में अकेली घटना है। इसमें समाज अपनी सम्प्राप्ति देखेगा।

जीवनी साहित्य

जनउत्थानवादी
राजा सयाजीराव गायकवाड

–डॉ. अनंत वडघणे हिन्दी विभाग
डॉ. बाबा साहेब अंबेदकर मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

भारत देश प्राचीन सभ्यता और संस्कृति से सम्पन्न राष्ट्र है। यहाँ के इतिहास और संस्कृति को देखें तो कह सकते हैं– हड़प्पा और मोहनजोदड़ो जैसे प्राचीन नगरों और नालंदा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालयों ने इस देश की ज्ञानसंपदा के चर्मोत्कर्ष का परिचय दिया। साथ ही इस देश में अहिंसा के पुजारी महात्मा बुद्ध ने पूरे दुनिया को सत्य और अहिंसा की शिक्षा दी। कबीर, तुलसीदास, ज्ञानेश्वर, तुकाराम जैसे संतों ने जनमानस को सही पथ का दर्शन कराया। ऐसे पावन भूमि पर कई सारे महान विभूतियों ने जन्म लिया, जिस पर सभी भारतवासियों को नाज है। इस देश में कई सारे राजे–महाराजे हुए, जिन्होंने जनकल्याण का कार्य किया। शोषित, पीड़ित, दमित लोगों के उत्थान के लिए वे सदैव कटिबद्ध रहे, जिनमें छत्रपति शिवाजी, महाराणा प्रताप एवं राजर्षि शाहू महाराज, सयाजीराव गायकवाड जैसे नाम गिनाये जा सकते हैं, जिन्होंने कथनी की अपेक्षा करनी को महत्व दिया है। उन्होंने जो कार्य किये, वे आज भी हमारे पथ–दर्शन का कार्य करते हैं। उन्होंने यहाँ के जन के सुख एवं खुशहाली के लिए कार्य किया। इनमें से एक नाम आता है सयाजीराव गायकवाड (तृतीय) का, जिन्होंने जनउत्थान करनेवाले कई कार्य किये, जब भारत में अंग्रेजों का राज्य था। बड़ौदा संस्थान पर भी अंग्रेजों का आधिपत्य था। फिर भी उन्होंने किसी बात की परवाह न करते हुए बड़ौदा संस्थान के साथ–साथ देश के हर अच्छे कार्य के लिए मदद की। दुनिया भर की सैर कर वहाँ जो भी अच्छा है, उसको अपने बड़ौदा संस्थान में शुरू किया। एक तरह से आधुनिकता का विरोध न कर जो–जो उसमें अच्छाइयाँ हैं, उसका सहर्ष स्वीकार किया। उन्होंने कई सारी विकास योजनाएँ बड़ौदा संस्थान में कीं। इस कारण आज भी लोकशाही के युग में राजा सयाजीराव गायकवाड द्वारा किया कार्य सराहनीय है।

महाराज श्रीमंत सयाजीराव गायकवाड का जन्मनाम गोपालराव काशीराव गायकवाड था। उनका जन्म 6 फरवरी, 1863 में कवलाणा नासिक (महाराष्ट्र) में हुआ। उन्हें बारह वर्ष की आयु में बड़ौदा संस्थान के राजगद्दी पर बिठाया गया। वहाँ उसे मि.एफ.एच. इलियट जैसे गुरु मिले, जिन्होंने उन्हें विभन्न विषयों का ज्ञान दिया। उसके पश्चात् दिसम्बर, 1881 में शिक्षा पूरी होने के बाद राजकाज संभाला। तब उन्होंने सर्वप्रथम बड़ौदा संस्थान को समझने के लिए पूरे संस्थान की यात्रा की। यथा–'प्रथम दौरा कड़ी प्रान्त में किया। तब गाड़ियों की व्यवस्था नहीं थी। रास्ते भी धूल और मिट्टी से लदालद थे। बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी तो कभी–कभी हाथी पर बैठकर गाँवों का परिभ्रमण किया। रात में तंबू में रहते थे, अधिकारी और प्रजा से मिलकर वे अगले गाँव जाते थे। साथ ही प्रजा की जो समस्याएँ हैं, उसको जानकर लिखकर रखते थे। इस प्रकार उन्होंने सर्वप्रथम लोगों की समस्याओं को समझा और उसके समाधान हेतु कार्य करते रहे।

भारत को कृषकों का देश कहा जाता है। जहाँ की अर्थव्यवस्था कृषि से जुड़ी हुई है। इसलिए यहाँ के लोगों के जीवन–यापन को बदलना है, तो सर्वप्रथम खेती का विकास करना पड़ेगा। यह बात छत्रपति शिवाजी ने भी जान ली थी और कृषकों के हित की कई योजनाएँ चलायीं। सयाजीराव गायकवाड ने भी इसी विचारों का अमल किया। जैसे–''राजकाज हाथ में लेते ही सबसे पहले लगान की ओर ध्यान दियां राज्य की मूल आय खेती से ही मिलती है। इसलिए 1883 में भू नापना और उसका परिश्रण करना (लैंड सर्व्हे सेटलमेंट) यह नया खाता शुरू किया।''[2] इस प्रकार उन्होंने किसानों के उत्थान को मद्देनजर रखते हुए कार्य किया। कृषि संदर्भ में कई सारी विकास योजनाएँ चलायीं। यथा ''उन्होंने बारह हजार से अधिक कुएँ बनवाये, जिस पर तीस लक्ष से अधिक पैसे खर्च किये। इंजिन ऑयल, ट्रैक्टर हेतु किसानों को मदद की। कुएँ का पानी पीने हेतु तथा खेती के लिए उपयोग में लाया जाने लगा। पारंपरिक खेती के साथ नये बीज से किसानों को अवगत कराया। लोहे का हल के साथ–साथ खेती संदर्भ में नये–नये उपकरण उपलब्ध करा दिये। कृषि प्रदर्शन लगवाये।''[3] इस तरह राजा सयाजीराव गायकवाड ने कृषक के उत्थान हेतु कार्य किया।

भारत देश में विभिन्न धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। साथ ही इन धर्मों के अंतर्गत विभिन्न जातियाँ हैं और उनमें ऊँच–नीच का भेद है। ऊँच जाति के लोग निम्न जातियों के साथ दुर्व्यवहार करते हैं। उन्हें निम्न दर्जे का जीवन–यापन के लिए मजबूर किया जाता है। कुछ–कुछ जातियाँ हैं, जिन्हें अछूत कहा जाता है। उनके साथ रहना–खाना तो दूर, उनका स्पर्श भी निषेध माना जाता है। ऐसे समय राजा सयाजीराव गायकवाड ने अस्पृश्यों के साथ बैठकर खाना खाया। जैसे ''पूणे के महार समाज के मुखिया रा.शिवराम जानबा काबंले एवं रा. श्रीपतराव थोरात इन दोनों को महाराज ने बड़ौदा को आमंत्रित कर उनके साथ विचार विनिमय किया और उनका यथोचित स्वागत करते हुए खुलेआम राजमहल में आमंत्रित देकर टेबल पर सहभोजन किया।''[4] इस तरह राजा सयाजीराव गायकवाड केवल मंच पर आकर भाषण देनेवाले व्यक्ति नहीं थे, उन्होंने तो समाज–सुधार को स्वयं कृति में उतारा था। तो दूसरी ओर आदिवासी समाज या जंगलों में वास करता था। उन आदिवासियों की शिक्षा की व्यवस्था महाराज सयाजीराव गायकवाड ने अपने राज्य बड़ौदा में की। यथा–''1882 में शिक्षा के संदर्भ में प्रथम क्रांतिकारी निर्णय लिया, जिसके तहत बड़ौदा सोनगढ़ इस आदिवासी भाग में अछूत एवं आदिवासी के बच्चों के लिए सरकारी खर्च से स्कूल और छात्रावास शुरू किया।''[5] इस तरह सयाजीराव गायकवाड ने शिक्षा केवल उच्चवर्ग को ही मिले यह न सोचते हुए, जो जंगल में वास करते हैं, उन आदिवासियों के बच्चे भी पढ़े, इसलिए स्कूल खोले। जिसके पीछे उनकी महानता का पता चलता है। सयाजीराव गायकवाड ने स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण माना था। इसलिए स्त्री को पढ़ना–लिखना चाहिए, इसके लिए भी उन्होंने कार्य किया। जब उनकी पहली पत्नी का देहान्त हो हुआ और दूसरा विवाह जब किया, तो वह पत्नी

पढ़ी–लिखी नहीं थी, तब महाराज ने उनकी पढ़ाई की व्यवस्था की। यथा–''देवास के घाटगे की गजराबाई के साथ उनका विवाह हुआ। रानी को पढ़ना–लिखना नहीं आता था। महाराज ने शिक्षा की तत्काल व्यवस्था की।''[6] इस तरह सयाजीराव गायकवाड नारी शिक्षा के पैरवीकार थे।

महाराज सयाजीराव गायकवाड ने विभिन्न देशों की यात्राएँ कीं। इसके पीछे उद्देश्य मनोरंजन न होकर उस देश में जो भी नया है, समाज उपयोगी है, उसको बड़ौदा में स्थापित करना। यह उनका प्रमुख उद्देश्य था। वे कहते हैं कि–''परदेश में यात्रा करना यह ज्ञान का प्रमुख साधन है। यह मुझे पहली विलायत यात्रा में ही समझ आया। इसके आगे दुनियाभर की यात्रा करना और विश्व में जो–जो अच्छा है, वह बड़ौदा में लाना मैंने तय किया। इस यात्रा से मुझे यह लगने लगा कि अपने देश में उद्योग को बढ़ावा देने के लिए औद्योगिक शिक्षा की खास व्यवस्था जरूरी है।''7 इस तरह उन्होंने अपने राज्य में औद्योगिक शिक्षा को भी महत्व दिया।

वर्तमान समय में हम देखते हैं कि देश के सामने अकाल एक बहुत बड़ी समस्या बनी हुई है। हर साल देश के किसी न किसी हिस्से में सूखा पड़ता है। इसके पीछे वातावरण में हो रहा परिवर्तन हो या पानी का अपव्यय ऐसे कई कारण है, जिसके लिए सरकार द्वारा भी कई सारे उपाय किये जा रहे हैं, किन्तु 21वीं सदी में भी पानी की समस्या को लेकर हम पूरी तरह जागरूक नहीं हुए। सयाजीराव गायकवाड ने तब पानी के महत्व को जाना था। वे कहते थे कि 'पानी यानी ईश्वरी प्रसाद है और प्रसाद का इस तरह अपव्यय करते देख मुझे दु:ख होता है। इसलिए मैं आपसे विनती करता हूँ कि पानी सोने के समान है या उससे भी मूल्यवान है। यह समझते हुए पानी बचायें। पानी यह प्रति प्राण है। सोना–चांदी खर्च कर हम प्राणियों को संभालते हैं ना?उसी तरह पानी को भी सम्भालो। अकाल में कितना भी धन खर्च किया तो भी हम पानी की एक बूँद भी प्राप्त नहीं कर सकते?अपने पूर्वजों ने नदियों को देवात मानकर उनकी पूजा की, उनका मर्म अब तो तुम समझो।''[8] इस तरह पानी के महत्व को राजा सयाजीराव गायकवाड जी ने भी जाना था।

राजा सयाजीराव गायकवाड ने बड़ौदा राज्य में कई सुधारें की थीं। इसके साथ बड़ौदा के बाहर भी कई सारे कार्य किये। महात्मा फुले, डॉ. बाबा साहब अंबेडकर, कर्मवीर वि.रा. शिंदे और भाऊराव पाटील जैसे समाज सुधारकों को भी उन्होंने सर्वोपरि मदद की। दूसरे विश्वधर्म परिषद् के वे अध्यक्ष रहे। उन्होंने अप्रत्यक्ष रूप में स्वाधीनता आंदोलन में सहभाग भी लिया। क्रांतिकारियों को मदद की। जहाँ–जहाँ अच्छाई है, उसका स्वीकार तथा अन्याय का विरोध वे जीवनभर करते रहे। महाराज सयाजीराव गायकवाड के संदर्भ में मदनमोहन मालवीय कहते हैं–''ज्ञानवृद्धि, समाजसुधार एवं अनुशासनबद्ध प्रशासन इन सभी बातों में सफल 'हिन्दुस्तान का आखिरी आदर्श राजा।''[9] इस जनवादी राजा का अंत 6 फरवरी, 1939 को हुआ। वे शरीर में इस पृथ्वीलोक से विदा हुए, किन्तु कीर्ति रूप से आज भी समाज के दिलोदिमाग में अजय अमर है।

संदर्भ–

1.लोकपाल राजा सयाजीराव गायकवाड, बाबा भांड, पृ.32
2.वही, पृ. 36
3.वही, पृ. 44–45
4.ीजजचरूध्ूअपतीपदकमण्बवउ
5.लोकपाल राजा सयाजीराव गायकवाड, बाबा भांड, पृ.32
6.वही, पृ. 33
7.वही, पृ. 80–81
8.वही, पृ. 51–52
9. ीजजचरूध्उतण्ूपापचमकपंण्वतहध्ूपापध महाराज सयाजीराव गायकवाड

लघुकथा :

घोड़ा कैसे गुलाम बना

अखिलेशचन्द्र श्रीवास्तव
कल्याण, ठाणे महाराष्ट्र
912512301079

किसी जंगल में एक घोड़ा था, वो बार–बार कोशिश करता कि हिरण से दौड़ में जीत जाए। बहुत कोशिश करने पर भी वो सफल न हो पाया। वो दु:ख और ईर्ष्या से भर गया। किसी भी कीमत पर हिरण को हराना उसकी जिंदगी का एकमात्र लक्ष्य ही बन गया। किसी ने उसे सलाह दी तुम आदमी के पास जाकर सहायता माँगो। वो बहुत बुद्धिमान है, कोई युक्ति बताएगा। घोड़ा आदमी के पास गया और अपनी समस्या बतायी। आदमी ने एक क्षण सोचा, फिर बोला–अरे, तुम दौड़ते समय दूर रहोगे, मैं कैसे तुम्हें मदद करूँगा। ऐसा करो मुझे अपनी पीठ पर बैठने दो, तो शायद मैं कुछ कर सकूँ। घोड़ा मान गया। अब आदमी बोला–तुम दौड़ोगे तो मैं गिर जाऊँगा, जमकर बैठने के लिए कुछ कपड़ा आदि पीठ पर रखने दो। मान गया। आदमी बोला–तुम्हें कैसे बताऊँगा किधर मुड़ना है, तो नाक में रस्सी बाँधने दो। ईर्ष्या से पागल घोड़ा वह भी मान गया।

तय दिन घोड़ा और हिरण की दौड़ शुरू हुई। आदमी घोड़े पर जीन लगाम के साथ बैठा था। उसने एक भाला भी ले रखा था। आदमी ने घोड़े को उकसाने के लिए अपने पैर की एड़ी से उसे खूब गुदगुदाया। घोड़ा पूरी तेजी से दौड़ा और हिरण के निकट पहुँच गया। जैसे ही आदमी को मौका मिला, उसने भाला फेंककर मारा, जो हिरण को लगा और वो मरकर धराशायी हो गया। अब तो घोड़ा बहुत खुश हिरण हार भी गया और मर भी गया। क्या बात है!

घोड़े ने आदमी को धन्यवाद दिया। वो बहुत प्रसन्न था। आदमी ने मरे हिरण को भी घोड़े पर लादा और घर आ गया। उसने घोड़े की रस्सी एक खूँटे से बाँध दिया और घर से चने के दाने और घास लाया। पानी लाया। बोला–घोड़ा भाई! आप थक गये होंगे, थोड़ा विश्राम कर लो। थोड़ी देर बाद घोड़ा बोला–मुझे खोल दो, घर जाना है। आदमी बोला–दो–एक दिन और रुको। वो घोड़े को खिलाता–पिलाता उसकी मालिश करता और ऊपर सवार हो घूमता। पर उसने घोड़े को छोड़ा नहीं।

धीरे–धीरे घोड़े को समझ में आ गया कि फँस गया। उसने उछलना–कूदना और जिद्द करना शुरू किया तो आदमी ने उसे एकांत कमरे में बिना खाना–पीना के बाँध दिया। भूख और प्यास से मजबूर घोड़े ने आखिर आदमी की बात मान ली और गुलाम बन गया।

कहानी

पगडंडियाँ

नीरजा हेमेन्द्र
नीरजालय, न्यू हैदराबाद
लखनऊ (उ.प्र)

नोरा ने कॉलेज के स्टाफ रूम में आकर मेज पर अपना पर्श रख दिया। तत्पश्चात् कुर्सी पर आराम से बैठते हुए गले में लिपटे ऊनी स्कार्फ को कसकर कानों के इर्द गिर्द लपेट लिया। प्रतिदिन की भाँति खिड़की के पास रखी कुर्सी पर बैठ गयी। स्टाफ रूम की खिड़की के समीप रखी इसी कुर्सी पर बैठना उसे अत्यन्त पसंद है। कई बार कोई और इस कुर्सी पर बैठ जाता है, तो उसे किसी अन्य स्थान पर बैठना पड़ जाता है, जो उसे पसंद नहीं है। यहाँ बैठकर खिड़की से बाहर देखना उसका पसंदीदा शगल है। आजकल इस खिड़की के दरवाजे बंद रहते हैं। इसका कारण जनवरी माह की कठोर ठंडक है। उसे लगता है कि देश के अन्य स्थानों की अपेक्षा गोरखपुर में ठंडक कुछ ज्यादा ही होती है। वह गोरखपुर में रहती है, इसलिए तो ऐसा सोचती?अन्यथा वह इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं है कि सर्दी की ऋतु में समस्त उत्तर भारत में ही कठोर ठंड पड़ती है, न कि मात्र गोरखपुर में।

खिड़कियों के दरवाजे शीशे के होने के कारण वह बंद खिड़की से भी बाहर देखा जा सकता है। आज भी वह निश्चिन्त होकर बाहर की तरफ देखने लगी है। इस समय सुबह के नौ बजनेवाले हैं, किन्तु यह पूरा इलाका कोहरे की सफेद झीनी चादर से ढँका हुआ है। सूर्य की रोशनी भी इस ठंड से बचने के लिए जैसे कहीं दुबक कर बैठ गयी है।

यह स्थान जहाँ यह कॉलेज मुख्य शहर से दूर स्थित एक छोटा–सा गाँव है। गाँव के चारों तरफ धान के खेत व बाग– बगीचे हैं। यह पूरा क्षेत्र कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ के लोगों के जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि ही है। नूर का पूरा नाम नूरा फिलिप है। वह इस छोटे–से गाँव के मिशनरी कॉलेज में अध्यापन कार्य करती है। यद्यपि वह मुख्य शहर गोरखपुर के कैंट एरिया में रहती है। जहाँ ईसाई बाहुल्य आबादी निवास करती है। उसके साथ यहाँ शिक्षण कार्य करनेवाली अधिकांश आध्यापिकाएँ भी कैण्ट में ही रहती हैं। इस कॉलेज में पढ़नेवाले अधिकांश छात्र भी कैंट से यहाँ पढ़ने आते हैं। कुछ छात्र शहर के अन्य हिस्सों के अन्य हिस्सों से भी यहाँ पढ़ने आते हैं। इतने बड़े मिशनरी कॉलेज में इस गाँव के स्थानीय छात्र कम ही हैं। छात्रों को शहर से विद्यालय लाने व घर तक छोड़ने के लिए कॉलेज की बसें चलती हैं। नूरा भी कॉलेज के छात्र व अधिकांशतः अध्यापिकाएँ भी यहाँ आने के लिए कॉलेज बस पर ही निर्भर हैं।

इसी बस से पिंटो भी यहाँ पढ़ने आता है। वह भी कैंट में ही रहता है। उसका पूरा नाम पिंटो पास्कल है। वह ग्यारहवीं कक्षा का छात्र है। गेहुँए रंग का लंबा, हृष्ट–पुष्ट पिंटो प्रतिदिन बस में चढ़ते ही सर्वप्रथम नूरा को 'गुड मार्निंग' कहना नहीं भूलता। नूरा के पश्चात् अन्य अध्यापिकाओं का अभिवादन करता। नूरा को प्रतीत होता है कि वह अन्य अध्यापिकाओं की अपेक्षा उससे बातें करने में अधिक रुचि लेता है। नूरा इसे गुरु–शिष्य की आदर्श परंपरा के आगे की कड़ी मानती है। किन्तु इधर कई दिनों से नूरा का ऐसा प्रतीत हो रहा है कि पिंटो उसकी तरफ आकर्षित हो रहा है। बस में बैठकर लगातार उसकी तरफ देखना, नूरा से दृष्टि ही नजरें इधर–उधर घुमा लेना, उससे बातें करने के अवसर ढूढ़ना, कोई भी आवश्यकता पड़ने पर नूरा की मदद के लिए तैयार रहना आदि अनेक ऐसी बातें हैं, जिनसे नूरा यह सोचने पर विवश है।

आज इस सर्द सुबह कॉलेज के स्टाफ रूम की खिड़की के बाहर देखते हुए नूरा पुनः वही सोच रही है, पिंटो के विषय में। इसी विषय में कई दिनों से उसका मन–मस्तिष्क मंथन कर रहा है। उसे लगता है कि पिंटो उसकी तरफ आकर्षित हो रहा है, वह नहीं, तो क्यों पिंटो को देखते ही उसके हृदय की धड़कन भी असामान्य हो जाती है?क्या वह भी उसको अच्छा लगने लगा है?जब भी वह नूरा के सामनेवाली सीट पर बैठता है, नूरा को अपलक देखता रहता है। बीचबीच में अपनी दृष्टि उठाकर नूरा भी उसे देख लेती है। जब भी वह उसे देखती है, उसे अपनी ओर देखते हुए पाती है। न जाने क्यों?न जाने किस सम्मोहन वश?नूरा से दृष्टि मिलते ही उसके चेहरे पर लालिमा दौड़ जाती है। नूरा उसके मनोभावों को समझती है। ठीक ऐसी ही मनःस्थिति आजकल नूरा की भी होती है। उसे देखते ही नूरा को ये क्या हो जाता है?क्यों उसे भी पिंटो में आकर्षण दिखता है?पिंटो नूरा से संभवतः दस–बारह वर्ष छोटा है। नूरा तीस बत्तीस वर्ष की महिला है। उफ्फ! ये कैसा आकर्षण नूरा के हृदय में उत्पन्न हो रहा है। क्या ये गलत है। नूरा का मस्तिष्क कहता है ये गलत है। किन्तु हृदय...हृदय तो पिंटो के आकर्षण में बँधता चला जा रहा है। टन.टन टन घंटी की ध्वनियों से नूरा के मस्तिष्क में उठ रहे विचारों का प्रवाह टूट जाता है। वह उठकर क्लास रूम की तरफ बढ़ जाती है।

क्लास से वापस आकर पुनः उसी स्थान पर बैठ जाती है। खिड़की से बाहर देखते हुए उसे विचार पुनः पिंटो की स्मृतियों में उलझने लगते हैं। नूरा इस आकर्षण से दूर जाना चाहती है। इसलिए वह आजकल चर्च में अधिक समय व्यतीत करने लगती है। कभी–कभी नन के वस्त्र भी धारण कर लेती है। उसे अपने इर्द गिर्द एक अजीब से सन्नाटे की अनुभूति होती है। हृदय अकेलेपन का अनुभव करता है। यह इस पीड़ा से उबरना चाहती है। वह जानती है कि यह पीड़ा प्रभु ने उसके भाग्य में उस समय ही लिख दिया था, जब वह नवयुवती थी। जीवन के पथ पर जार्ज के साथ आगे बढ़ रही थी। टन...टन...टन पुनः वही स्वर घंटियों के।

नूरा की तन्द्रा भंग हुई। वह जार्ज को स्मृतियों को दूर करने का असफल प्रयत्न करती है। इस समय नूरा की कक्षायें हैं। वह उठकर अपनी कक्षाओं की तरफ चल पड़ती है। कक्षा में बैठ कर भी वह विचलित–सी रहती है। आज पुनः जार्ज उनकी स्मृतियों में आने लगा है बहुधा की भाँति। ये स्मृतियाँ उसे बचपन की ओर लेकर जाने लगी है।

नूरा फिलिप अपने बचपन की स्मतियों को कभी विस्मृत नहीं कर पायी। वह उन्हें विस्मृत करना भी नहीं चाहती। बचपन की उन्हीं स्मृतियों में उसकी और जार्ज की यादें समायी हुई हैं... वह और जार्ज गोरखपुर के एक मशनरी स्कूल में पढ़ते थे। तब वह सातवीं कक्षा की छात्रा थी। वह भी उसी कॉलेज में कक्षा नौ का छात्र था। उसका पूरा नाम था जार्ज रैम्सन। वह गौर वर्ण का, लंबा व आकर्षक किशोर था। वो और जार्ज कब एक दूसरे के प्रति आकर्षित हो गये, उसे पता ही न चला। वो महज बचपन का आकर्षण नहीं था। धीरे–धीरे वे एक अटूट प्रेम के बंधन में बँधते जा रहे थे। अबोध, मासूम सरल प्रेम का बंधन। मित्रों के समूह में खेलते–खेलते वे एक दूसरे के समीप आ गये, खेल में एक दूसरे का पक्ष लेने लगे। साथ पढ़ना, होमवर्क करना,

एक दूसरे की सहायता को तत्पर रहना। उन्हें यह भी नहीं ज्ञात था कि ये सब क्या है?इस आकर्षण का क्या नाम है?किशोरावस्था में यह उनकी समझ से परे की बात थी।

युवावस्था के आगमन के साथ उन्हें परिवर्तित होती ऋतुएँ, बादल, बारिश, हवाएँ, चहचहाते पक्षी, वसंत, पुष्प, नव पल्लव सब कुछ.... पूरी प्रकृति भाने लगी थी। इस उम्र में एक अजब–सी सुखद अनुभूति का अनुभव वो कर रहे थे। जार्ज के साथ वो सब कुछ नूरा को और अच्छा लगता था।

उस वर्ष वह बारहवीं कक्षा में थी। मार्च का महीना था। हवाओं में एक खनक–सी व्याप्त हो रही थी। फागुनी बयान संपूर्ण सृष्टि में उन्माद का संचार कर रही थी। चारों दिशाओं में अबीर गुलाल–सा बिखरा पड़ा था। मार्च की ओर पंचरंगी शाम को उसने व जार्ज ने एक दूसरे के साथ जीवन व्यतीत करने का संकल्प कर लिया। वह परियों की भाँति पंख लगाकर अंतरिक्ष में उड़ने लगी थी, क्षिजित से भी आगे। जार्ज भी उसका साथ पाकर अत्यन्त प्रसन्न था। दोनों मिलकर भविष्य के सुनहरे स्वप्न बुनने लगे थे। उस स्वप्न में वह जार्ज के साथ हर स्थान पर उपस्थित थी। उनके प्रेम के यह अनछुए स्वप्न सुगंध बनकर चारों तरफ फैलने लगे। कॉलेज में उनका प्रेम चर्चा का विषय बना था। उसे और जार्ज को यह बात बुरी भी नहीं लगती थी। उसने इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। जार्ज भी शिक्षा पूरी करने के उपरांत मिशनरी कॉलेज के कार्यालय में काम करने लगा था। उसे भली–भाँति स्मरण है वो दिन, जब जार्ज उसे साइकिल पर बैठाकर अपने माँ–पिता से मिलवाने उसे अपने घर लेकर गया था। उस दिन वह बहुत डरी हुई थी। उसके मन में अनेक प्रश्न थे, अनेक शंकाएँ थीं। सबसे बड़ी शंका तो यह थी कि जार्ज उससे अधिक आकर्षक था। वह साँवली–सी, साधारण दिखनेवाली लड़की थी। क्या जार्ज के माता–पिता इस साधारण–सी दिखनेवाली लड़की को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करेंगे?नूरा आशंकित थी। जार्ज के मम्मी–पापा ने उसे न केवल पसंद ही किया, बल्कि पुत्रवधू के रूप में स्वीकार भी किया। वे नूरा को देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे। नूरा जानती थी कि वह साँवले वर्ण, सामान्य कद की एक दुबली–पतली युवती है। जिसका व्यक्तित्व बहुत आकर्षक नहीं है। फिर भी जार्ज उससे प्रेम करता था। यह नूरा का सौभाग्य था। जार्ज आकर्षक व्यक्तित्व का युवक था। उसे तो कोई भी लड़की पाकर अपने भाग्य पर गर्व करती, वह ये भी जानती थी कि आजकल के युवा विवाह के लिए लड़कियों के शारीरिक सौंदर्य को महत्व देते हुए उससे प्रेम किया व सहचरी के रूप में उसे पाने को भी तत्पर था। यह जार्ज की परिपक्व समझ का परिचायक था।

जार्ज अत्यन्त साधारण घर का लड़का था। उसके पिता एक छोटे–से चर्च में पादरी थे। उनका घर, उनका जीवनस्तर सब कुछ साधारण था। नूरा को जार्ज का घर...उसके मम्मी–पापा... जार्ज से जुड़ी हर चीज पसंद थी।

जार्ज के घर से लौटने के पश्चात् नूरा की प्रसन्नता कुछ और बढ़ गयी थी। घर आकर वह इस अवसर की तलाश में रहने लगी कि किस प्रकार वह अपने मम्मी–पापा को स्वयं के व जार्ज के रिश्ते से अवगत कराये। क्योंकि जार्ज के पापा ने उससे कहा था कि वह अपने घर में बात कर ले, तो दोनों पक्ष के लोग आपस में मिल–बैठकर रिश्ता तय कर लेंगे। एक दिन अपने माँ पिता को प्रसन्नचित्त देख उसने जार्ज से अपने विवाह की इच्छा बता दी। उसकी बात ठीक से पूरी भी नहीं हो पाई थी कि उसके पापा सौमित्र भड़क गये। कारण जातिगत भेदभाव का संकुचित दृष्टिकोण था। दोनों पक्ष ईसाई धर्मावलंबी होते हुए भी उनमें उच्च और निम्न का भेद। यह सब नूरा फिलिप की समझ से परे था। मि. फिलिप के अनुसार जार्ज निम्न जाति वर्ग का क्रिश्चियन है, अतः नूरा का विवाह जार्ज के साथ नहीं हो सकता।

जार्ज को जब यह बात ज्ञात हुई, तो वह सन्नाटे में आ गया। उसके चेहरे पर फैली उदासी से नूरा अनभिज्ञ न रह सकी। उसने इस विषय में अंतिम निर्णय नूरा की इच्छा पर छोड़ते हुए कह दिया कि वह सदा नूरा के निर्णय में उसके साथ रहेगा। यद्यपि वे चाहती तो अन्य युवतियों की भाँति विद्रोह कर माता–पिता की इच्छा के विपरीत विवाह का कोई अन्य मार्ग चुन सकती थी, किन्तु साहस की कमी नूरा में थी। नूरा ने ऐसा नहीं चाहा। नूरा की इच्छा का सम्मान करते हुए जार्ज भी पीछे हट गया। नूरा जार्ज की प्रेरणा व साहस न बन सकी। दोनों की इच्छाएँ सपने पूर्ण होने से पूर्व ही उनके हृदय के साथ ही टूट गये।

नूरा ने शिक्षा आगे अनवरत रखते हुए शिक्षिका का प्रशिक्षण पूर्ण कर लिया। समय अपनी ही गति से चलता रहा। ऋतुएँ भी आती–जाती रहीं। एक ऋतु जार्ज की स्मृतियाँ लेकर आती तो दूसरी जार्ज की स्मृतियाँ लेकर आ जाती। प्रत्येक ऋतु जार्ज की स्मृतियों से ही तो जुड़ी थी। बारिश, बादल, वसंत, पतझड़, पलाश प्रकृति का प्रत्येक रूप जार्ज के प्रेम की अनुभूतियों से सराबोर होता। नूरा जार्ज की स्मृतियों में डूबती–उतराती, रोती सिसकती पुनः हृदय पर पाषाण–सा बोझ लेकर जीने लगती।

उसके पापा ने अनेक जगहों पर उसके ब्याह की बात चलायी, किन्तु बात पक्की न हो सकी। नूरा यह बात समझाती थी कि बात के सकारात्मक निर्णय पर न पहुँचने का एक कारण उसका साधारण रंग–रूप का होना भी है।

समय व्यतीत होता जा रहा था। नूरा ने शहर के दूर इस मिशनरी कॉलेज में शिक्षिका की नौकरी कर ली। नूरा उम्र की सीढ़ियाँ चढ़ती हुई आगे बढ़ने लगी। यद्यपि के उसके पिता उसकी विवाह के लिए अब भी प्रयत्नशील थे, किन्तु नूरा की इच्छाएँ विवाह के प्रति समाप्त हो चुकी थीं। शहर से इतनी दूर आकर यहाँ काम करने का एक कारण यह भी था कि नूरा को वहाँ जार्ज बेहद याद आता था। वहाँ वह जार्ज को एक क्षण के लिए भी विस्मृत नहीं कर पाती थी। इन्हीं कारणों से वह इस ग्रामीण क्षेत्र के मिशनरी कॉलेज में अध्यापन कार्य करने लगी। यह करने में उसे आत्मिक सुख प्राप्त होता। विशेषकर छोटे बच्चों के साथ उसे अवर्णनीय सुखद अनुभूति होती। बच्चे होते ही हैं बहते झरने के जल जैसे निर्मल, स्वच्छ। छल–द्वंद्व, ऊँच–नीच के भेदभाव से रहित अनाथाश्रम के निर्धन, बेसहारा बच्चों के साथ उसके दिन व्यतीत होने लगे।

नूरा को यहाँ कार्य करते हुए चार वर्ष हो गये थे। तब उस वर्ष कॉलेज के चर्च में राष्ट्रीय स्तर के धार्मिक कार्यक्रम का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम सप्ताहभर का था। उस कार्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए देश–विदेश से अतिथि आए थे। इनमें पादरी, धार्मिक वक्ता, संगीतज्ञ इत्यादि लोगों के कार्यक्रम थे। नूरा इन कार्यक्रम में अपना पर्याप्त समय व सहभागिता दे रही थी। अचानक उसे कार्यक्रम के तीसरे दिन जार्ज दिखाई दिया। वह जार्ज को एक लंबे अंतराल के पश्चात् देख रही थी। जार्ज के साथ उसकी पत्नी भी थी। जार्ज को देखते ही नूरा की आँखों से अश्रु बहने लगे। जार्ज उसे बस देखता रहा, बोला कुछ भी नहीं। नूरा का शरीर निर्जीव–सा हो गया। वह दिनभर रोती रही। जार्ज अपनी पत्नी संग कार्यक्रम में पूरे समय उपस्थित रहा। कितना आकर्षक लग रहा था वह। उसने नूरा से कुछ भी न पूछा, न ही नूरा ने उससे कोई बात की। नूरा सोचती रही कि काश! समय का पहिया पीछे की तरफ चलता। बीता समय वापस आ जाता। वह जार्ज को किसी और के पास न जाने देती। वह समाज के सभी बंधनों को तोड़कर जार्ज के साथ चल देती। आज उसमें इतना साहस है, किन्तु जब साहस की आवश्यकता थी, तब तो वह कमजोर पड़ गयी थी।

यह अनुत्तरित प्रश्न उसका सर्वस्व लेकर चला गया। समय का पहिया पीछे की ओर कब चला है भला...?चर्च के सभी कार्यक्रम सम्पन्न हो गये। जार्ज अपनी पत्नी संग प्रतिदिन उपस्थित होता रहा। कार्यक्रम समाप्त हुए जार्ज भी चला गया। नूरा वहीं खड़ी रह गयी और जहाँ जार्ज उसे छोड़कर गया था।

नूरा अब तीस–पैंतीस वर्ष की महिला है। वह जानती है कि प्रेम की यह अधूरी परिणति ही उसे पिंटो या किसी अन्य की ओर आकर्षित करती है। मन की ओर कदाचित् शरीर की भी आदिम भूख उसे सदैव उसके मार्ग से भ्रमित करते रहेंगे। वह उम्र की सीढ़ियाँ दर सीढ़ियाँ चढ़ती जा रही है, समय का लंबा अंतराल पीछे छूटता जा रहा है, किन्तु उसे लगता है कि इस जन्म में जार्ज को विस्मृत कर पान असंभव है।

घड़ी ने समय को आगे बढ़ाते हुए अगला घंटा बजाया है। इस समय नूरा की कक्षाएँ हैं। वह स्टाफरूम की खिड़की के पास से उठकर कक्षाओं की तरफ चल पड़ती है। क्लास में पहुँच कर नूरा का हृदय विचलित–सा रहता है। वह जानती है कि उसके जीवन में जार्ज का स्थान कोई नहीं ले सकता। अब तो यौवन का आकर्षण भी चुक रहा है। सौंदर्य व युवा शरीर की इच्छा रखनेवाले इस समाज में ऐसा कौन होगा, जो उसका हाथ थाम सकेगा?वह जानती है कि पिंटो के प्रति उसका आकर्षण संसार की दृष्टि में अनैतिक और शरीर की आदिम भूख मिटाने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। किन्तु नूरा इतनी निकृष्ट और स्वार्थी नहीं होगी। वह पिंटो को समझाकर उसे स्वयं से दूर कर देगी। उससे कहेगी कि वह भी अपनी दुनिया बसा ले जार्ज की भाँति। वह जीवित रह लेगी। अपना जीवन चर्च के अनाथाश्रम में पलनेवाले अनाथ बच्ची की सेवा में समर्पित कर देगी। प्रभु के बताये परोपकार के माग पर चलेगी। वह जार्ज और पिंटो को विस्मृत कर देना चाहती है। वह नन बनना चाहती है। वह मात्र नन के वस्त्र ही धारण नहीं करेगी, बल्कि हृदय से भी नन बनेगी। त्याग व सेवा की प्रतिमूर्ति नन...। समस्त जगत उसका अपना होगा।

इस समय कक्षा में बैठकर उसका विचलित हृदय असीम शान्ति का अनुभव कर रहा है। उसने अपने दोनों नेत्र बंद कर लिये हैं। हृदय में प्रभु प्रेम का प्रकाश फैलता जा रहा है...समस्त सृष्टि उसमें आलोकित हो रही है। नूरा उस प्रकाश में डूबती जा रही है.....समाती जा रही है....।

लघुकथा

सैम्पल पुस्तकें

उर्मिला प्रसाद
मेंहदी बगान, बर्दमान, पश्चिम बंगाल
मो० : 9933553195

जनवरी महीने से ही पुस्तक प्रकाशकों के कई एजेंट किताबों के बंडल लेकर एक एक करके स्कूल में आने लगे थे। सबको अपनी किताबें स्कूल में लगवाने की जबरदस्त ख्वाहिशें थीं। सैम्पल किताबों से ऑफिस के बगल वाला कमरा और ऑफिस दोनों भर गया था। एक से बढ़कर एक रंग–बिरंगी पुस्तकें, चमकीली आकर्षक किताबें, सुनहली, रूपहली कवरवाली और अंदर के पेज भी कितने खूबसूरत। मँहगी भी उतनी ही। इन्हें देखते ही बच्चों में पढ़ने की ललक पैदा हो जाए...हर प्रकाशक चाहता है कि उसकी किताब ज्यादा से ज्यादा स्कूल में लग जाए। एजेंट जब पुस्तक लेकर आता है, तो चाहता है कि हेड श्रुति उन्हें ध्यान से देखें और अपने स्कूल के सेलेबस में इसे लगवा ही लें। इसलिए वे अपनी किताबों की खूबियाँ गिनवाते, पन्ने पलट पलटकर उसे दिखलाते, ये देखिए मैडम, ये हमारे प्रकाशन की एकदम लेटेस्ट किताब लांच हुई है। इसमें एकदम नये तरीके से बच्चों को पढ़ाने की टेक्निक है, जो बात इसमें है, वो दूसरी किताबों में नहीं मिलेगी। श्रुति सबको यह कहकर आश्वासन देती कि रख जाइए, बाद में देख लूँगी। सैम्पल देने के बाद कंपनी का एजेंट जाते–जाते भी बड़ी विनम्रता से बोलते, देखिएगा जरूर मैडम, अगर हमारी एक–दो किताब लग गई तो मुझे कुछ कमीशन मिल जाएगा। कुछ कमीशन के लिए ही दिनभर यहाँ वहाँ स्कूलों में दौड़ते रहते हैं। गरीब आदमी हैं, कोई दूसरा काम नहीं है। श्रुति के वश में रहता तो इस एजेंट की सब नहीं, तो आधी किताब लगवा ही लेती, लेकिन इस जैसे सभी एजेंट यही रोना रोते हैं, वो क्या करे...तो... इन किताबों की कवर की ही तरह श्रुति भी अपने कोमल मनोभावों पर कछुए की सख्त खोपड़ी का एक आवरण चढ़ा रखी थी। यह समय और पद की गरिमा की माँग थी...वह सभी को स्वीकार में यूँ ही सर हिला देती, जिससे साफ पता चल जाता कि स्वीकार नहीं है...इतने प्रकाशन...सभी की किताबों को सेलेबस में लगाना असंभव...फि भी मात्र आश्वासन।

जब एजेंट चला जाता, तो किताबों को वे बड़े से उलटती पलटती। उसे कुछ याद आता, 'अपने स्कूल के समय की वो काली सादी किताबें...कितनी नीरस थी वो...। कभी–कभी तो सेकेंड हैंड से ही काम चलाना पड़ता था....बड़ी दीदी की पढ़ी हुई पुरानी किताब....जिसके कुछ पेज गायब रहते थे...। खैर, लिए जगह ही नहीं है...शहर के लाइब्रेरी वाले भी इन किताबों की पूछ नहीं करते। अगर इस स्कूल के बच्चों में भी फ्री बाँट भी दी जाय, तो ये उसकी कद्र नहीं करेंगे, उनके पास अपनी किताबों को ही पढ़ने का समय नहीं होता...हर साल की तरह इस साल भी इन्हें कबाड़ी की दुकान पर रद्दी के भाव बेचना पड़ेगा, उफ् नहीं इस बार पैसा नहीं होगा...।

कुछ दिनों के बाद श्रुति के सहयोग से, विषय से संबंधित शिक्षकों ने, सारी सैम्पल किताबों को छाना, उसके बाद अगले दिन बची हुई किताबों में से कुछ किताबें श्रुति ने एक बड़े से बोरे में भरा और रिक्शे पर लादकर चल पड़ी। रिक्शा जाकर रुका शहर के चाइल्ड केयर सेंटर के दरवाजे पर। चाइल्ड केयर सेंटरएक एनजीओ है, जो अनाथ और घर से भागे हुए बच्चों की देखभाल पुलिस प्रशासन और कोर्ट की मदद से करता है। सेंटर में पहुँचकर उसने वहाँ के इंचार्ज से बात की और अपने हाथों एक–एक करके सभी किताबें बच्चों में बाँट दी। बच्चे बड़े खुश हुए थे। जैसे ही उनके हाथ में किताब आती, वे उसे उलट–पुलटकर देखने लगते। उन्होंने इससे पहले इतनी सुंदर और रंगीन किताबें देखी न थी। बच्चों के चेहरे की खुशी देखकर श्रुति को अपार प्रसन्नता हो रही थी। उसे उन किताबों के सदुपयोग पर काफी संतोष हो रहा था।

कहानी:

तोहफा

–रामकिशोर
भागलपुर, 8084820005

शानो–शौकत से ब्याही गई रुद्रानी खुश नहीं थी। उसके चेहरे पर दुःख ऐसा व्याप्त था, जैसी गंगा की लहरें हिलोरें मार रही हों। उसने अपने रूम के सुसज्जित बिछावन युक्त पलंग पर बायाँ ठेहुना पसार रखा था। ठेहुने के आगे का पैर साठ डिग्री का कोण बनाते हुए दाहिना पैर की ओर फैला था। उसका दाहिना ठेहुना खड़ा था और आगे का पैर पचहत्तर डिग्री के कोण पर पसरा था। उसने ललाट को ठेहुना पर टिका रखा था और दाहिने हाथ को माथे पर रख लिया था। उसे अपनी शादी की याद आ रही थी।

गाजे–बाजे के साथ चार सौ बाराती यहाँ आये थे। यहाँ आये सवासिनों और सगे–संबंधियों की संख्या डेढ़ सौ थी। उसके बाबा (पिता) के संतानिकों (भूसामन्तों) की प्रतिष्ठा के अनुरूप छः–सात तरह के मिष्टान्न और मनमाना (खानेवाले की इच्छा भर) दही का भोज किया था। भोज में गाँव के सभी लोग शामिल हुए थे। पलक झपकते ही उसे आगे की बातें दिखने लगीं।

शादी के तीन दिन पूर्व से ही मिष्टान्नों की मीठी खूशबू और दही की खट्टी–मीठी सुगंध घर आंगन के बाहर तक हवा में तैरने लगी थीं। शादी सम्पन्न होने के अगले दिन बारातियों और संगे–संबंधियों को विदा कर दिया गया। गृहस्वामी महेश सिंह ने अपने नये जमाई बाबू और बड़ी बेटी शिवरानी को कुछ दिनों के लिए यहाँ रोक लिया था।

आह! ओह!! देह में पीड़ा उभर आने के कारण रूद्रानी की कराह फूटी। उसने मुँह उठाकर एक तरफ देखा। वह निराशमन से हथेली और अगुलियों से दर्दवाली जगह को सहलाने लगी। कुछ देर ऐसा करते रहने से उसे थोड़ी राहत मिली। उसके सोचने का क्रम आगे बढ़ा।

हमारा राष्ट्र बुलेट ट्रेन चलाने, स्मार्ट नगर बसाने और आदमी को इंटरनेट से जोड़ने का प्रयास कर रहा है। पर गाँव!... आजादी के अड़सठ वर्षों बाद भी अर्द्धसामन्ती व्यवस्था और मानसिकता में जी रहा है...। गाँव में नारी स्वतंत्रता की बात बेमानी है। नारी स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव नगरों में, महानगरों तक सीमित है। जब कॉलेज में पढ़ने लगी, तब मैं इसका पक्षधर हो गयी। इसी की पक्षधरता ने मेरी देह की ऐसी हालत बना दी है। भला पुरुष के चंगुल से गाँव की नारी मुक्त हो सकेगी?उसने सिर उठाकर रूम के द्वार की ओर देखा। क्षण देर बाद उसने अपने हाथ को पुनः ठेहुना पर टिका दिया।

कई दिनों के बाद भी मिष्टान्न की मीठी खूशबू और दही के खट्टेपन का स्वाद यहाँ व्याप्त थे। आज भी ढेर सारे मिष्टान्न और आठ–नौ हंडी दही बचे हुए थे। चिंतित उसकी आँखें बरसना चाहती थीं, परन्तु उसने बलपूर्वक आँसुओं को रोक रखा था। उसके सामने आगे का दृश्य उभर आया।

बाबा ने मेरी पढ़ाई में कभी कोथाई नहीं की। मैट्रिक प्रथम श्रेणी से पास करने के बाद इंटर क्लास में मेरा नामांकन एस.एम. कॉलेज में करा दिया गया। मेरे रहने की व्यवस्था कॉलेज के हॉस्टल में हुई। मैंने इंटर और बी.ए. ऑनर्स की परीक्षा उसी कॉलेज से प्रथमवर्ग से पास की। मेरी आगे की पढ़ाई यह कहकर रोक दी गई कि लड़की जात बेशी पढ़कर क्या करेगी! शादी होते ही वह पति संग रहकर अपने बच्चों का लालन–पालन करेगी। ऐसे सोच पर उसे दुःख हुआ। वाह रे सोच! गाँव की लड़की नौकरी कर अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकती। वह तो केवल घर की शोभा है बाल–बच्चे जन्माने की मशीन है...।

आह! ओह.... एक बार फिर उसकी देह की पीड़ा उभर आई। उसने पूर्व की प्रक्रिया अपनाकर क्षण देर बाद राहत पा ली। उसके सामने स्कूल के दिनों की तस्वीर उभर आई। उन दिनों वह गाँव के पास स्थित हाई स्कूल में नौवीं क्लास में पढ़ती थी। इसी स्कूल में पड़ोसी गाँव के प्रभाकर भी मैट्रिक क्लास में पढ़ता था। एक दिन की बात है, छुट्टी होते ही छात्र–छात्राएँ स्कूल से अपने–अपने घर की ओर चल दिये। कुछ देर पूर्व वर्षा हुई थी, सो रास्ते में कहीं–कहीं फिसलन थी। मैं आगे चल रही थी। मेरे पीछे प्रभाकर था। एक जगह अचानक फिसलकर मैं गिरने लगी। तभी प्रभाकर ने पकड़कर मुझे गिरने से बचा लिया। ऐसा होने से मेरे चेहरे पर लज्जा की लाली दौड़ गई। लेकिन उसके स्पर्श से मेरे शरीर में सुखद अनुभूति हुई। उस वक्त मैं पन्द्रह साल की थी। अबतक मुझमें नारी के सभी गुण विकसित हो चुके थे। उस घटना के बाद से मेरा मन प्रभाकर की ओर खींचा जाने लगा। उसका भी यही हाल था। फिर तो दोनों एकांत जगहों पर मिलने जुलने लगे। यह सिलसिला लंबे समय तक जारी रहा। पता नहीं, हमारा मिलन कब गहरे प्रेम में तब्दील हो गया।

उसने याद करना जारी रखा। उसके सामने आगे का चित्र भी साकार हो उठा। मेरी पढ़ाई रोके जाने के वक्त प्रभाकर ने तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय से एम.ए. प्रथम वर्ग से पास कर लिया था। फिर उसने पटना में रहकर बी.पी.एस.सी की पढ़ाई की, उसे आज से तीन माह पूर्व बौद्ध गया प्रखंड में पंचायत अधिकारी की नौकरी मिल गयी।

उसने अब दाहिना पैर को पसार दिया और हाथ को कमर के एक बित्ता आगे टिका दिया। दुधिया प्रकाश के बीच रूम के अंदर एक जगह अगरबत्ती जल रही थी। उसका सुगंधित धुआँ हवा में तैर रहा था। रूम में यथोचित स्थान पर गुलाब, वेला, चमेली, गेंदा आदि फूलों को करीने से सजाया गया था।

उसके सामने बीस दिन पूर्व की घटना साकार हो उठी। उस दिन माघी पूर्णिमा थी। बाबा किसी काम से कचहरी गये थे। चाचा और भैया रैंचा तैयार करवाने गाँव से बाहर स्थित खलियान पर थे। माँ, चाची और दोनों चचेरी बहन कर्णगढ़ स्थित मनसकामना नाथ मंदिर पूजा–अर्चना करने गयी थीं। घर में वह अकेली थी। वह आंगन की कुर्सी पर बैठकर मोबाईल से प्रभाकर से बात कर रही थी। प्रभाकर! यहाँ अकेली मेरा दम घुटता है। मुझे जल्दी से अपने पास ले चलो। उधर से आती आवाज–जल्द तुम्हें अपने पास लाऊँगा। एक–सवा महीना और धैर्य रखो।

और सवा महीना इंतजार करना होगा?

हाँ।

नहीं, उतने दिन और मैं धैर्य नहीं रख सकूँगी। तुम जल्दी यहाँ आ जाओ। मैं यहाँ से तुम्हारे संग चलूँगी।

तभी पीछे से चोटी खींचे जाने लगी।

ओह! ओह! वह बिलबिला उठी।

उसने शीघ्रता से अपनी चोटी को पकड़कर खिंचाव के विपरीत बल लगाया और कुर्सी से उठती हुई पीछे देखा। वह अपने भैया से चोटी छुड़ाने की कोशिश करने लगी। इसी जद्दोजहद में उसके हाथ से मोबाईल छूटकर नीचे गिर गया।

मोबाईल नीचे गिरा देखकर भारत ने झट से उसकी चोटी छोड़ दी और झपटकर नीचे से मोबाईल उठा लिया। खड़ेखड़ भारत ने चबा जानेवाली दृष्टि से उसे देखा।

भाई की लाली आँखें देखकर वह सहम गई।

'हरजाय, छिनार! तुम प्रभाकर के संग भागने का प्लान बना रही है। तलवार से तुम्हारी मुंडी काटकर धड़ से अलग कर दूँगा, समझी! कहते हुए गुस्से से उसके नथुने फड़क रहे थे।

भय से रूद्रानी की हालत ऐसी हो गयी थी,मानो काटो तो उसके शरीर में खून नहीं हो।

भारत ने फिर से उसपर वार नहीं किया। वह आंगन से उस ओर बढ़ा, जहाँ पाटि (शिला) रखी थी। पाटि के पास पहुँचकर वह रुक गया। उसने जलती आँखों से मोबाईल को देखा, फिर जोर से उसे पाटि पर पटक दिया। वह मोबाईल को तबतक देखता रहा,जबतक टूटकर मोबाईल कई टुकड़ों में बँट नहीं गया। मोबाईल विनाश कर वह तेजी से आंगन से बाहर चला गया। यहाँ रूद्रानी फूट–फूटकर रोने लगी थी। उसका रोना ऐसा लग रहा था, मानो टूटकर पहाड़ उसके ऊपर गिरा हो।

अन्य दिनों के मुकाबले आज रूद्रानी को बेशकीमती आकर्षक साड़ी–ब्लाउज पहनायी गयी थी। सौंदर्य प्रसाधन से सजाने–सँवारने के अलावा उसकी देह पर सेंट छिड़का गया था। अन्य समय होता तो ऐसे लिवास और मेकप से उसके गेहुँए चेहरे की रौनक कई गुणे बढ़ जाती, लेकिन उन सबके बावजूद उसका चेहरा मलिन था। फूलों और अगरबत्ती की सुगंध भी उसके मन की पीड़ा हर नहीं पा रही थी।

ओह! ओह! एक बार फिर उसकी देह की पीड़ा टहक उठी। उसने ठेहुनों पर अपना मुँह उठाया और पास में बगल रखी मेज पर नजर डाली। इसी मेज पर तो टेबलेट रखी थी। बाबा ने एक पत्ता पेन किलर टेबलेट ला दिया था। टेबलेट खाने से राहत मिलती थी। आज संध्या वेला टेबलेट नहीं खा सकी। शाम के वक्त मेरे रूम से सभी सामान बाहर निकाला गया था। भाभी, शिवरानी दीदी और चचेरी बहनों ने मिलकर मेरे रूम की सफाई की, फिर रूम को फूलों से सजा दिया गया। मेज पर उसकी दृष्टि जमी थी। मेज पर किताब कलम रहा करती थीं। उसी के पास तो टेबलेट रखा था। आज उस जगह फूलों से सजा गुलदस्ता रखा है। टेबलेट नहीं मिलने का उसे मलाल हुआ। टेबलेट तो कहीं रखा ही गया होगा। बाहर निकलकर भाभी से पूछूँ! नहीं–नहीं, कहीं फिर नया हंगामा खड़ा न हो जाए। आज रातभर दर्द सहने के सिवा दूसरा उपाय नहीं है। सहलाते रहने से उसे थोड़ी राहत मिल गयी। उसने तलवों को पलंग पर टिकाकर ठेहुनों को ऊँचा कर लिया। उसका भाव गतिशील था।

मेरे रूम को जिस तरह सजाया गया है, जैसे यहाँ अभी यादगार उत्सव होनेवाला हो। उन लोगों को क्या पता है, यह उत्सव नहीं, मेरे जीवन को नष्ट करने का कारण बनेगा। अब शादी के तीन दिन पूर्व की घटना उसके सामने नाचने लगी।

शाम का वक्त था। उसकी चाची अपने बरामदे पर बैठी चूल्हे में आँच लगा रही थी। चूल्हे पर चढ़ी हंडी में दूध खौल रहा था। उस हंडी में अनुमान से कतरनी चावल डाला गया था। कतरनी चावल की खुशबू हवा में तैर रही थी।

आज दोपहर बाद से यहाँ चहल–पहल शुरू हो गयी थी। एक तरफ के बरामदे पर हलवाई विभिन्न तरह के मिष्टान्न बनाने में सक्रिय थे। दोपहर में पंद्रह दहियारों ने बीस क्विंटल दूध यहाँ पहुँचा गया था। उन दहियारों से कहा गया था कि कल भी वे लोग इतने दूध और यहाँ पहुँचा दे। उस दूध के आधे भाग का दही पौरा गया ओर शेष दूध मिठाई बनाने के लिए हलवाई को सौंपा गया।

रूद्रानी इन गतिविधियों को समझाने की कोशिश में थी। वह धीरे से चाची के पास आई और उसकी बगल में बैठ गई। उसने पूछा–चाची! हंडी में क्या सीझा रही हो?

खीर। चाची ने छोटा–सा उत्तर दिया।

खीर क्या करोगी?

तुम्हीं को खिलाना है।

मुझे, सो क्यों?

चाची ने उसकी आँखों में झाँकते हुए कहा–तुम कितनी भोली हो रे! बी.ए. पास लड़की अबतक समझी न हो, आश्चर्य है! चाची के व्यंग्य से वह सकपका गई। उसने सोचा–चाची भी तो जमींदार घराने की बी.ए. पास है। फिर क्यों न ऐसी बात करेगी। खैर! उसे जाने–समझे बिना चैन मिलनेवाला नहीं था। सो उसने मनुहार से पूछा–चाची! बताओ न!

बताना क्या है। तुम्हारी शादी की लगनपत्री आज सूरज उगने के वक्त दी जा चुकी है।

लेकिन मेरी वरतुहारी कब की गई!

चाची मुस्कुराकर बोली–माघी पूर्णिमा के दिन। तुम्हारी बातों ने घरभर के लोगों की नींद उड़ा दी। फिर तो 'चट मंगनी पट विवाह' का निर्णय लेना पड़ा।

क्षणभर रुककर वह आगे बोली–माघी पूर्णिमा के एक रोज बाद तुम्हारे बाबा और चाचा हरमादीपुर गये। वहाँ उन दोनों ने तुम्हारी बरतुहारी तय कर दी। चूँकि पिछले साल तुम अपनी मसेरी बहन की शादी में तुलसीपुर गाँव गई थी। उस विवाहोत्सव में तुम्हारे होनेवाले दुल्हा के माँ–बाप भी पहुँचे थे। उन लोगों ने तुम्हें वहीं देखा था। उनलोगो ने उसी वक्त तुम्हें पसंद कर लिया था। इसी कारण तुम्हारी बरतुहारी करने में परेशानी नहीं हुई।

वह तनिक रुकी। दम भरकर वह आगे बोली–तय हुए दहेज की रकम पहुँचाने हेतु तुम्हारे बाबा ने कल अपने गाँव आजादपुर के पाँच–छः प्रमुख लोगों को साथ लिया और अनादीपुर गाँव पहुँचकर दुल्हे के बाप को देहज की रकम थमा दी। फिर आज सुबह लगन पत्री वहीं लिखकर दे दी और तुम्हारे बाबा के संग सभी लोग वहाँ से चल दिये–कहकर वह दम भरने के लिए रुकी।

दम भर लेने के बाद उसने कहना शुरू किया–वहाँ से प्रस्थान करने के साथ ही तुम्हारे बाबा ने मोबाईल से भारत को सभी बातें बताकर आज ही दूध का इंतजाम करने का निर्देश दिया। उन लोगों ने कहलगाँव स्टेशन आकर सुपरफास्ट ट्रेन पकड़ी और सुबह साढ़े सात बजे भागलपुर स्टेशन उतर गये। फिर सभी लोग वहाँ से ऑटो से नाथनगर आ गये। नाथनगर मार्केट से तुम्हारे बाबा ने साथ रहे लोगों के सहयोग से भोज और शादी की सारी सामग्री खरीदी और ट्रैक्टर पर लादकर दोपहर तक अपने घर आ गये।

क्षणभर रुककर उसने आगे बताया–'वहाँ साथ गये गाँव के गणेश राय ने चंपानगर से हलवाई को साथ लिया और दोपहर तक वे भी यहाँ आ पहुँचे। फिर तो...कहकर चाची चुप हो गई। चाची की सारी बातें सुनकर रूद्रानी सोच में पड़ गई।

कुछ देर बाद वह बोली–मैं यह शादी नहीं करूँगी।

क्यों?

मेरी मर्जी!

तुम्हारी मर्जी नहीं चलेगी।

चाची की सख्त आवाज सुनकर वह चुप हो गयी। फिर वह वहाँ से हट गयी। शादी की बात जानने के बाद से रूद्रानी का मन व्याकुल होता जा

रहा था। वह विवाह के झंझट से बरी होना चाह रही थी। परन्तु उसे कोई रास्ता सूझ नहीं रहा था। उसे इस वक्त प्रभाकर की खूब याद आ रही थी। वह सोच रही थी, इस वक्त प्रभाकर यहाँ आज जाए तो मैं उसके संग भाग जाऊँ। वह यहाँ कैसे आएगा?वह तो यहाँ से सौ कोस दूर है। उसे तो इस शादी की जानकारी भी नहीं होगी। कैसे जनाऊँ उसे?मेरे पास मोबाईल भी तो नहीं है।इसी उधेड़बुन में वह उलझी हुई थी।

तभी भाभी के पास आकर उससे कहा–रूद्रानी जी! सूरज डूब चुका है। चलिए, चलकर खीर खा लीजिए। उसके बाद आपको उबटन लगाया जाएगा।

मुझे न खीर खाना है, न ही उबटन लगवाना है। उसने रुखा सा उत्तर दिया।

सो क्यों?

मुझे यह शादी नहीं करनी है।

भाभी जानती थी कि उसकी ननद अब्बल दर्जे की जिद्दी है। सो, उससे बात नहीं बनेगी। अतः उसकी भाभी ननद के पास से लौट गयी। रूद्रानी उलझन की ऊहापोह में समायी रही।

कुछेक देर बाद ही उसकी माँ, चाची, भाभी, अड़ोस– पड़ोस की पंद्रह–सोलह महिलाएँ उसके पास आ पहुँची। उन सबने रूद्रानी को समझाने बुझाने , डराने धमकाने और मनुहार करने लगीं। आखिर अन्यमनस्क मन से वह खीर खाने के लिए सहमत हो गयी।

रात का वक्त। मरकरी का प्रकाश फैला हुआ था। वह पलंग पर लेटी थी। उसके शरीर से उबटन की गंध निकल रही थी। वह निरंतर सोचे जा रही थी कि उसकी शादी गैर पुरुष के साथ न हो। पर यह शादी रुकेगी कैसे?कैसे का उत्तर उसके पास नहीं था। लेकिन उसका मन सोचने से बाज नहीं आ रहा था। इसी सोच–विचार में रात का तीसरा पहर बीत गया। तभी उसके मन में एक विचार कौंध गया। उसने दृढ़ होकर निर्णय लिया कि सुबह होने पर माँ के जरिये बाबा को कहलवाऊँगा कि वे बारात यहाँ आने से मना कर दे। इस निर्णय से उसे थोड़ी राहत मिली। फिर पता नहीं, उसे कब नींद आ गयी।

मरकरी की दुधिया रोशनी और अगरबत्ती की सुगंधित धुओं तथा फूलों की खुशबू के बीच रूद्रानी ने ठेहुनों पर से अपना सिर हटा लिया और तनकर बैठ गयी। वह सोचने लगी–वे किसी भी क्षण यहाँ आ सकते हैं। अगर वे यहाँ आ गये तो?तभी रूम के द्वार के पास से उसकी भाभी की आवाज सुनाई पड़ी–श्रीमान नन्दोसी जी! परम सुन्दरी मेरी प्यारी ननद और आप नयी नवेली दुल्हन वहाँ पलंग पर बैठी है, आप अंदर जाइए और सुहाग रात मनाइये। कहकर भाभी ने ठेलकर उन्हें अंदर कर दिया और किवाड़ भिड़काकर वह वहाँ से वापस चली गई। उनके आगे बढ़ते ही रूद्रानी पलंग से उतरकर एक बगल खड़ी हो गयी। उसने आधा घूँघट तान लिया

उसके दुल्हा का नाम पुष्पकांत था। चार रोज पूर्व उन दोनों का विवाह हुआ था। आज सुबह चौठा–चौठी (चतुर्थी) विद भी हो चुकी थी। पुष्पकांत आगे बढ़ आये और पैर लटकाकर पलंग पर बैठ गये। उन्होंने अपनी दुल्हन की ओर देखा, फिर बोले–यहाँ आकर मेरे पास बैठो। उनके भय से दिल धड़क रहे थे, वह चुपचाप खड़ी रही।

क्षणेक बाद वे पलंग से उतरकर उसकी ओर बढ़े। पास पहुँचकर उन्होंने हौले से उसका हाथ पकड़ लिया और कहा–चलो पलंग पर। कहकर उन्होंने बल लगाकर उसे पलंग पर लाना चाहा। उनके बल का प्रतिरोध करती हुई वह बोली–नहीं, मुझे छोड़ दीजिए।

क्यों?

मैंने दिल से आपको पति के रूप में अंगीकार नहीं किया है।

मतलब?

वह चुप रही।

रूद्रानी! योग्य समझकर ही तुम्हारे बाबा ने तुम्हारा विवाह मेरे साथ कराया है।

आप मेरे बेजान शरीर के पति हो सकते हैं, मेरी आत्मा का नहीं।

उसकी बात सुनकर उन्होंने उसका हाथ छोड़ दिया। फिर बोले–अगर ऐसी बात है, तुमने इस विवाह का विरोध क्यों नहीं किया।

खूब विरोध किया, पर मेरी एक न चली।

सोचकर वे बोले–मेरे साथ रहोगी, तो यथोचित सम्मान मिलेगा।

मैं आपके साथ खुश नहीं रह सकती। अगर आप जबरन अपने साथ रखना चाहेंगे तो मौका पाकर मैं अपने जीवन को नष्ट कर दूँगी।

उसकी बातों ने उनको विचलित कर दिया। देर तक वे सोचते रहे, फिर बोले–'मैं एम.ए., पीएच.डी. हूँ। पिछले महीने ही मैं जे.पी.कॉलेज, नारायणपुर में व्याख्याता के पद पर बहाल हुआ हूँ। तनिक रुककर बोले–मैं संवेदनशील, न्यायप्रिय और विवेकधारी युवक हूँ। तुम अपनी वेदना का सच बता दो।

मेरा सच जान लेने पर आप बर्दाश्त नहीं कर सकोगे। अन्य पुरुषों की तरह आप मेरी पिटाई करेंगे, प्रताड़ित किया करेंगे।

ऐसा कदापि नहीं होगा। मैं अन्य पुरुष से अलग हूँ।

उन्होंने अविश्वास की नजरों से उन्हें देखा और चुप रही।

उसकी नजरों से पुष्पकांत को चोट लगी। उन्होंने सोचा इसके अविश्वास ने मेरे व्यक्तित्व को बौना बना दिया। नहीं–नहीं, हर हाल में इसे विश्वास दिलाना होगा। वे बोले रूद्रानी! माता– पिता ने संसार में संचालित प्रकृति के नियमानुसार हमारा विवाह करा दिया। मैं विहंगम योग संत समाज का एक साधक हूँ। साधना के बल पर आदमी प्रकृति स्वभाव पर नियंत्रण पाकर उससे ऊपर उठ जाता है।

रूद्रानी मौन बनी रही।

वे आगे बोले–जब मैं हाई स्कूल का छात्र था, उसी वक्त मेरे पड़ोस के गाँव में दो दिनों तक सत्संग हुआ था। मैं दोनों दिन सत्संग में शामिल रहा। संतों ने अध्यात्म की जो दिशा बतायी, मनुष्य के जो प्रमुख लक्ष्य बतलाये, उनसे मैं प्रभावित हुआ और समापन के दिन मैंने भी अध्यात्म की दीक्षा ली। वहाँ शिष्यों को बतलाया गया कि सुबह–शाम और भोर की अमृतवेला में प्रत्येक रोज 15 मिनट से आधे घंटा ध्यानरूपी साधना करने से परमात्मा की प्रति अनुराग बढ़ेगा और धीरे–धीरे प्रकृति स्वभाव पर नियंत्रण होता जाएगा।

क्षणभर रुककर उन्होंने बताना जारी रखा–विगत सोलह वर्षों से नियमित योगाभ्यास, धारणा एवं ध्यानरूपी साधना करते रहने के फलस्वरूप मुझमें तेज, बल, सत्यभाषी और वैराग्य भाव प्राप्त कर चुका है। सच मानो तो मैं शादी करने के पक्ष में नहीं था।

रूद्रानी ने तपाक से सवाल पूछ लिया–फिर आपने विवाह क्यों कर लिया?

उन्होंने उत्तर देना शुरू किया–तुम्हारा प्रश्न सही है। लेकिन जन्म से ही मनुष्य को मनुष्य बनाने का काम उनके माता– पिता करते हैं। इसलिए मनुष्य भी माता–पिता के प्रति जवाबदेह है। उनका सम्मान करना और उन्हें खुशी रखना आदमी के कर्तव्य में निहित है। क्षणभर रुककर आगे बोले– यह सच है कि मैं विवाह नहीं करना चाहता था। इस कारण माँ मुझसे रुष्ट होकर रोने– विलखने लगी। पिताजी भी मुझसे दुःखी रहने लगे। आखिर मैं उनका पुत्र हूँ। माता–पिता को खुश रखना मेरा पुनीत कर्तव्य है। इसी वजह से मैं विवाह करने के लिए सहमत हो गया। तब भी मुझे अकेला रहना पसंद

है।

कहते–कहते उनके चेहरे पर दृढ़ता के भाव उभर आये। फिर बोले–तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम्हारा सच जाने लेने के बाद भी मैं तुम्हारे साथ किसी तरह का अप्रिय व्यवहार नहीं करूँगा, न ही कटुवचनों से प्रताड़ित करूँगा। कहते हुए उसकी मुट्ठियाँ कस गयीं, फिर बोले–तुम्हारे हालात में मैं हर तरह से मददगार रहूँगा। उनकी आवाज में अपने वचन पर दृढ़ रहने का वजन था।

उनके आश्वस्त करने पर रूद्रानी ने बताना शुरू किया– उन दिनों की बात है, जब मैं अपने गाँव स्थित हाई स्कूल में पढ़ती थी। पड़ोसी गाँव का प्रभाकर भी उसी स्कूल का छात्र था। पढ़ाई के क्रम में हम दोनों के बीच प्रेम हो गया। मैं उसी के साथ जीने के लिए समर्पित हूँ। कहकर वह चुप हो गयी।

उसकी बात सुनकर वे बोले–अगर यह बात पहले मुझे मालूम होती तो मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करता। सोचकर वे बोले–तुमने प्रभाकर के साथ विवाह क्यों नहीं कर लिया। विवाह का दूसरा नाम साथ–साथ जीने का संकल्प लेना भी है न?

हाँ। दो साल पूर्व ही हम दोनों ने मनसकामना मंदिर में भगवान शंकर के समक्ष साथ–साथ जीने का संकल्प किया है।

संकल्प लेने की बात तुमने अपने परिवार को नहीं बताया?

नहीं।

क्यों?

प्रभाकर छोटी जात का है। यह बात बताने पर समाज में बवंडर उठ खड़ा होता। दोनों जातियों के बीच खून–खराबा होने लगता। इसी वजह से मैं चुप रही। हाँ, बहुत दिनों के बाद यह बात माँ को बताया–तो माँ ने मुँह बिचकाकर कहा–शादी–ब्याह गुड़िया का खेल नहीं है। तुम संकल्प–बनकल्प की बात भूल जा। तुम्हारी शादी संतानिक घराने के अफसर लड़के के साथ की जाएगी। ताकि तुम्हें किसी तरह की दिक्कत न हो, समझी!

कुछ क्षण रुककर उसने दम भरा, फिर कहने लगी–मैं चुप रहकर प्रभाकर को अपने पैरों पर खड़ा होने की प्रतीक्ष करने लगी। मैंने सोच रखा था कि जैसे ही प्रभाकर कमाने लगेगा, तैसे ही मैं चुपचाप घर से निकलकर उसके पास पहुँच जाऊँगी और हम साथ–साथ रहने लगेंगे। कहकर वह चुप हो गयी।

देर बाद उन्होंने पूछा–प्रभाकर कहाँ है?

हाल ही में उसकी नौकरी हुई है। अभी वह बौद्ध गया में है। कहते–कहते उसकी देह की पीड़ा फिर उभर आयी। ओह!ओह! वह दर्द से व्याकुल होने लगी। उसने दर्द से राहत पाने के लिए फिर से पूर्व की प्रक्रिया अपना ली।

उसकी बेचैनी देखकर पुष्पकांत भी संवेदित हुए। उन्होंने चाहा कि पास पहुँचकर उसक पीठ सहला दें; परन्तु उनके विवेक ने ऐसा करने से रोक दिया। वार्ता के क्रम में कुछ देर पहले वे पलंग पर जा बैठे थे। देह सहलाने से पीड़ा थोड़ी कम हो गयी।

उसे शांत पाकर उन्होंने पूछा–तुम्हारी देह में यह कैसी पीड़ा है?

उसने जवाब नहीं दिया।

उसके नहीं बताने के कारण पुष्पकांत को जानने की जिज्ञासा और तेज हो गयी। सो, वे बोले– तुम पीड़ा का कारण तो बता दो।

आप नहीं जानें तो अच्छा रहेगा।

नहीं जानने से मेरी बेचैनी बढ़ती जाएगी।

इस पीड़ा का राज प्रकट करने से आपको क्या लाभ मिलेगा?

लाभ–हानि की मीमांसा जानने के बाद ही की जा सकेगी। तुम उस राज का शीघ्र प्रकट करो।

जब आप जिद्द पर आयें हैं तो बताना ही पड़ेगा। तो सुनिये–रूद्रानी ने खड़े–खड़ बताना शुरू किया। विवाह के दो रोज पूर्व की बात है। सुबह के नौ बजे थे। आसमान में सूरज चमक रहा था। झिमिर–झिमिर पछिया बह रही थी। यह मास फागुन होने के कारण न गर्मी थी, न ठंढ। दादा द्वारा निर्मित पोखरा पाटन पक्का मकान के चारों ओर के बरामदे पर लोग विवाहोत्सव की तैयारी में जुटे थे। चाची अपेन हिस्से के मकान के बरामदे पर कतरनी चावल बीन रही थी। उसकी दोनों बेटियाँ माँ के काम में सहयोग कर रही थीं। भाभी अपने रूम के अंदर काम में व्यस्त थी। माँ आंगन में बिछी खटोली पर बैठकर सभी के काम को देख परख रही थी। बताकर वह रुकी। साँस लेने के बाद उसने बताना शुरू किया–उसी वक्त, मैं अपने रूम से निकली और आंगन में आकर माँ के सामने खड़ी हो गयी।

माँ ने मुझे देखा, फिर पूछा–बेटी! कुछ बात है क्या?

हाँ माँ!

बता तो सही।

मुझे यह शादी नहीं करनी है।

क्या बकती हो। हर माँ–बाप का धर्म है कि अपने बेटे–बेटी की शादी कराकर घर बसा देना। बारात आने से मना कर हम अपने धर्म से जाएँ। ऐसा नहीं हो सकता है। माँ ने अपनी राय उसे सुना दी।

सोचकर वह बोली–माँ! मैं अपना घर बसाऊँगी।

तुम्हारा घर बसाने के लिए ही यह सब किया जा रहा है।

माँ! मुझे अपने अनुकूल वर चाहिए।

तुम अपनी इच्छा से वर चुनना चाहती है?

हाँ!

तुम्हारा वर कौन होगा, बता सकती है?

प्रभाकर।

उसका नाम सुनते ही माँ का गुस्सा मगज पर चढ़ गया। वह बोली–रूद्रानी! तुम आफत मोल ले रही हो।

जो भी हो। मैं यह शादी हरगिज नहीं करूँगी।

माँ उसके जिद्दी स्वभाव से अवगत थी। सो, उसने सोचा–लाख समझाने के बाद भी यह मेरी बात नहीं मानेगी। अब जो कुछ करना है, इसका बाप ही करेंगे।

सो माँ बोली–तुम्हारी बात तुम्हारे बाबा के पास पहुँचा देती हूँ। कहकर वह खटोली से उठी और दरवाजे की ओर बढ़ गई। कुछ देर बाद महेश बाबू, अपने छोटे भाई, पुत्र भारत और पाँच छः गोतिया–दियाग सहित वहाँ पहुँच गये।

रूद्रानी अबतक आंगन में ही खड़ी थी। सभी यहाँ आकर उसके अगल–बगल खड़े हो गये।

आते ही महेश बाबू ने उससे पूछा–रूद्रानी क्या बात है?

मैंने सारी बात माँ को बता दिया है।

तो तुम यह शादी नहीं करोगी?

नहीं।

तुम पड़ोसी गाँव के सलोकन जात के प्रभाकर के साथ रहना चाहती है?

हाँ।

उसकी हाँ ने आग में घी डालने का काम किया। उनका चेहरा गुस्से से लाल हो गया। वे तेज आवाज में बोले–तुम प्रभाकर के साथ रहकर

भूमिहार जात के संतानिक बाप की नाक कटवाओगी। मेरी पगड़ी उतरवाओगी। कहते हुए उनकी आँखें आग उगल रही थीं। वे दाँत पीसकर आगे बोलते गये–मैं ऐसा कभी नहीं होने दूँगा। तुम्हें यह शादी हरहाल में करनी पड़ेगी। कहते–कहते वे गुस्से से हाँफने लगे थे। बाप के ऐसे आक्रोश का भी उसे डर नहीं लगा। उसने इनकार में अपनी मुंडी हिला दी। महेश बाबू सोच में पड़ गये। लाड़ली बेटी के जिद्द के आगे वे नरम पड़ने लगे। वे बेटी को मनाने के लिहाज से बोले–बेटी! सोचो तो सही। तुम्हारी शादी के लिए होनेवाले दूल्हा के बाप को बारह लाख देना पड़ा है। बाकी व्यवस्था में छः–सात लाख रुपये अलग से खर्च करना पड़ रहा है। अगर तुम अपनी जिद्द पर अड़ी रहोगी, तो बड़ी रकम की हानि होगी।

हानि होगी तो हो, पर मैं...।

उसकी आवाज ने जहाँ महेश बाबू के अंदर हताशा बढ़ा ही, वहीं भारत के अंदर चिनगारी फूट पड़ी। भारत गुस्से से बोला–लात का देवता बात से नहीं मानता। इसे अभी सिखा देता हूँ। वह तेजी से बरामदे की ओर बढ़ा। वहाँ पहुँचकर उसने दीवार से टिकाकर रखी लाठी उठा ली और तेजी से पुनः आंगन लौट आया। पास आते ही उसने सटाक! सटाक! रूद्ररानी की पीठ पर लाठी से मारना शुरू किया।

मार खाने के कारण जमीन पर गिर गयी और जोर–जोर से रोने लगी।

तेजी से भारत की पत्नी उसके पास गई और लाठी पकड़ ली।

छोड़ो लाठी। आज इसे मारकर ठंढा कर दूँगा। कहकर झीकाझोर करते हुए उसने लाठी पत्नी से छुड़ाना चाहा।

पास खड़े उसके चाचा ने भी लाठी पकड़ ली और वे तेज आवाज में बोले–इसे जान से मार दोगे, लाठी छोड़ो।

चाचा की डाँट से वह परम पड़ गया। चाचा ने उससे लाठी छीन ली।

रूद्ररानी के रोते जाने से भारत का गुस्सा पुनः भड़क गया। उसने पत्नी से कहा–इसे रूम में ले जाओ और बाहर से ताला जड़ दो। देखता हूँ, यह कैसे शादी नहीं करती है।

खड़े–खड़े बातें कहती हुई वह दम भरने के लिए रुकी। दम भरकर उसने आगे बताना शुरू किया–मैं रूम में बंद कर दी गयी। दिशा–मैदान, स्नान, भोजन आदि क्रिया संपादन में भाभी, चाची, दीदी ओर सात–आठ महिलाएँ मेरी पीछे लगी रहती थीं।

क्षणभर रुककर वह आगे बोली–मेरे साथ अन्याय किया जा रहा था, परन्तु इसके विरोध में गाँव–घर के एक भी लोग खड़ा नहीं हुआ। आखिर मैं अन्याय के सामने हार गयी और बेवस होकर बाबा और भैया के निर्देश पर यंत्रवत् काम करने लगी। फिर मेरी शादी आपके साथ करा दी गई। कहकर वह चुप हो गयी।

ध्यान से उसकी सारी बातें सुनकर पुष्पकांत बोले– रूद्ररानी! तुम्हारे साथ घोर अत्याचार किया गया है। यह तो अमानवीयता का ताण्डव नृत्य है।

उनसे सहानुभूति पाकर वह आदेश में आ गई। उसने झट से माथे पर से आँचल उतार दिया और ब्लाउज के बटन खोलती हुई बोली–मार के कारण से ही देह में घाव हो गये हैं। घाव में मवाद भर जाने के कारण उससे जब–तब टीस (दर्द) उठती रहती है। आप मेरी देह की हालत देख सकते हैं।

रुको, इसकी जरूरत नहीं है। तुम्हारी झूठ नहीं हो सकती।

उसने बटन खोलना बंद कर दिया और आँचल माथे पर रख लिया। सोचकर पुष्पकांत बोले–रूद्ररानी! आदिकाल से भारत ब्रह्मलीन सृष्टियों में महर्षियों का देश रहा है। उन्हीं ऋषियों–महर्षियों ने वेदशास्त्र की रचना की है। उन्हीं ऋषि–महर्षि परंपरा में कबीर साहब थे, उन्होंने कहा है–जो आदमी अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए किसी को जबरन बंधन में रखता है, वह अन्यायी है। अन्यायी व्यक्ति को ईश्वर कभी नहीं मिल सकता है।

वे तनिक देर रुके, फिर बोले वैरागी जीवन जीना मेरी जरूरत है। मेरे जैसा आध्यात्मिक साधक, जो परमात्मा को पाने के लिए हर क्षण प्रयास कर रहा हो, वह कदापि स्वार्थी और अन्यायी नहीं हो सकता। आवेश भरे उनके कथन में दृढ़ता का वजन था।

क्षणेक बाद वे बोले–रूद्ररानी! तुम अपना स्वतंत्र जीवन जी सको, इसलिए मैं इसी क्षण तुम्हें अपने बंधन से मुक्त करता हूँ। कहकर वे पलंग पर से उतर गये।

उनकी बातों से रूद्ररानी का चेहरा गुलाब की तरह खिल गया।

पुष्पकांत आगे बोले– मैं अभी दरवाजे पर जाकर शेष रात्रि व्यतीत करता हूँ। सबेरा होते ही मैं अपना घर चला जाऊँगा। कहकर वे आगे बढ़े और किवाड़ खोलकर बाहर चले गये।

यहाँ से उनके जाते ही रूद्ररानी का चेहरा ऐसे चमकने लगा, जैसे इक्कीसवीं सदी के उसके हक का तोहफा मिल गया हो।

ग़ज़लें

जब उन्हें महसूसता हूँ

–विज्ञानव्रत
नोयडा
9810224571

1.
तपेगा जो
गलेगा वो
गलेगा जो
ढलेगा वो
ढलेगा जो
बनेगा वो
बनेगा जो
मिटेगा वो
मिटेगा वो
रहेगा वो।

2.
आप से रिश्त रहा
और में जिन्दा रहा
था नहीं मैं उस जगह
बस वहाँ दिखता रहा
ख़त कभी भेजा नहीं
पर उन्हें लिखता रहा
वो न थे मंज़िल मेरी
जिनका मैं रस्ता रहा
मैं कहीं पहुँचा नहीं
यूँ सदा चलता रहा

3.
उनसे तो अब क्या पूछूँगा
मैं खुद को खुद ही ढूँढूँगा
तुमसे जितनी बार मिलूँगा
और नया हर बार लगूँगा
एक सुबह ऐसी आएगी
मैं सूरज होकर निकलूँगा
खुद को साथ लिये फिरता हूँ
खुद को और कहाँ रक्खूँगा
पहले उनकी बातें सुन लूँ
फिर मैं अपनी बात कहूँगा।

4.
जब उन्हें महसूसता हूँ
रब उन्हें महसूसता हूँ
अब किसी को क्या बताऊँ
कब उन्हें महसूसता हूँ
आज जो हस्सास हूँ कुछ
तब उन्हें महसूसता हूँ
आज अपनी जिंदगी का
ढब उन्हें महसूसता हूँ।

5.
वो मेरा हो जाए तो
एक ऐसा दिन आए तो
उसका जी बहलाने में
मेरा जी भर आए तो
उससे नफरत है लेकिन
वो मेरा कहलाए तो
घर का मालिक अपने घर
मेहमाँ होकर आए तो
लमहे भर का कर्ज कोई
जीवन भर लौटाए तो।

कहानी :

मिलन की एक आश

वीणा सिंह
38 महाराजा अग्रसेन नगर
सीतापुर रोड लखनऊ मो0 8005419950

पति की बीमारी का तार पाकर सुमन अंदर तक कराह उठी, वैसे तो हर क्षण पति वियोग की पीड़ा को मौन रहकर ही सहन करती थी, पर बीमारी का समाचार वह सह न सकी और फफक–फफककर रो पड़ी। छिप–छिपकर रोनेवाली आँखें आज खुद को रोक न सकी और सावन के बादलों की भाँति बरस पड़ी। अश्रुधारा ऐसी बही कि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को विचलित सा कर दिया। माँ, बहन, भाभी, ताई, चाची, भाई सभी ने दौड़कर उसको चारो ओर से घेर सा लिया सभी की जुबान पर एक ही सवाल था कि क्या हुआ?क्या हुआ?वह कुछ भी न बोल सकी, बस हाथ में दबा हुआ पत्र भाई को पकड़ा दिया। सभी ने उसके बहते आँसुओं के दर्द को भाँप लिया और बिना कुछ विचार किये उसे भाई के साथ ससुराल भेज दिया। सुमन का ब्याह बड़ी ही धूमधाम से हुआ था। ब्याह की विदाई पंडित जी के अनुसार एक दिन की ही घड़ी शुभ थी। इसलिए सुमन अगले ही दिन मायके आ गई थी। वह तबसे मायके में ही थी। कई साल बीत चुके थे ससुराल वालों ने उसकी खबर ही न ली थी। मायके में वह सभी की बहुत दुलारी थी। सब उसे बड़े ही प्यार से रखते थे। वह कभी भी किसी को बोझ–सी न लगी थी। पर उसके ससुराल वालों के रूखे व्यवहार से सभी चिंतित थे।

सुमन काफी समय के बाद वह भी अकस्मात् ससुराल जा रही थी, सो उसके मन में बड़ी उथल–पुथल मची हुई थी। रास्ते भर वह अपने पति की सलामती के लिए ईश्वर से प्रार्थना करती रही। उसका मन अधीर हुआ जा रहा था कि पता नहीं, वे किस हाल में होंगे। रास्ता तो जैसे लंबा हुआ जा रहा था, उसे अपने अधीर मन को समझाना बहुत ही मुश्किल हो रहा था, फिर भी वह पूरी तरह खुद को तसल्ली दे रही थी कि तू थोड़ा संयम रख। उसके पास पहुँचकर जी जान से उनकी सेवा करूँगी और वह जल्दी ही स्वस्थ हो जायेंगे। फिर हम दोनों एक दूसरे पर प्यार लुटायेंगे और हमेशा एक साथ रहेंगे। बहुत दूरियाँ सह ली, अब कभी भी उनसे दूर नहीं जायेंगे, रास्ते भर वह यूँ ही ताने–बाने बुनती रही।

ससुराल पहुँचते–पहुँचते उसे शाम हो गयी। घर पहुँची तो वह हैरत में थी, वहाँ पर सब कुछ सामान्य था। ननद खाना बना रही थी। सासू–माँ लिहाफ सिल रही थी। ससुरजी चौपाल पर हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सब के सब शान्त तथा अपने–अपने काम में मशगूल थे। अंदर से जिठानीजी निकली तो भाई से पलंग पर बैठने को कहा। सुमन के लिए भी आसन बिछाते हुए बैठने का इशारा किया। जेठानी के बच्चे छिप–छिपकर सुमन को देख रहे थे और आपस में कानाफूसी कर रहे थे कि माँ ने बताया यह चाचीजी हैं और जो साथ में आये हैं वह मामाजी हैं। सुमन ने बच्चों को पास बुलाया, दुलार किया और मिठाई खाने को दी। सुमन ने मन ही मन विचार किया कि शायद इनकी तबियत ठीक हो गई है, इसीलिए सब चिंता मुक्त है और अपने–अपने काम में लगे हैं। पर पतिदेव है कहाँ?उसकी आँखें लगातार खोज रहीं थी। तबतक भाई ने जेठानी से पूछ ही लिया कि जीजाजी कहाँ है, उनकी तबियत कैसी है?हम सब तो बीमारी का समाचार सुनकर परेशान हो गये थे। इसपर जेठानीजी ने कोई उत्तर न दिया। अब तो वह शंकाओं आशंकाओं के बीच घिरने लगी। आखिर बात क्या है, सब मुझसे क्या छिपा रहे हैं। बात को संभालते हुए सासू माँ ने कहा कि वह अपने कमरे में दवाई खाकर सोए हैं। डॉक्टर ने आराम करने को कहा है। इसलिए उसे अभी न जगाना। सुमन शान्त मन हो गई सोचा नींद से जगाना ठीक भी नहीं जब रात को मिलूँगी, तब हाल पूछूँगी और ढेर सारी बातें भी करूँगी। रात को सभी खाना खा–खाकर अपने–अपने कमरों में सोने चले गये। पर सुमन जब से आई थी चुपचाप उसी जगह पर बैठी थी। कुछ देर बाद ननद ने थाली परोसकर सामने रख दी खाना खाने के बाद वह कमरे की राह ताकने लगी। पर ननद ने कहा भाभी आओ मेरे साथ सो जाओ। वह सकुचाई सी ननद के बाद वह कमरे की राह ताकने लगी। वह सकुचाई सी ननद के पास लेट तो गई पर नींद कहाँ?जिसको देखने के लिए वर्षों से आँखें प्यासी थी, वह पास आकर भी प्यासी रह गई थी। वह असमंजस में थी कि क्या वास्तव में वह इतनी गहरी नींद सो रहे हैं, जो कि मेरे आने का उन्हें आभास तक न हुआ। या फिर वह किसी बात से नाराज है, जो कि मुझसे मिलना नहीं चाहा। यही सोचते विचारते रात बीत गयी। सोना तो दूर उसकी आँखों ने एक बार झपकी तक न ली।

सुबह भाई के वापस घर चले जाने के बाद सासू माँ घर के सारे काम समझाकर पड़ोस में चली गई। घर के कामों में उसका मन नहीं लग रहा था। बार–बार उसकी आँखें बंद कमरे पर जाकर ठिठक जाती कि पता नहीं।

कब वो सोकर जागेंगे जब मैं उन्हें देख सकूँगी। वह भी मुझे देखकर हतप्रभ रह जायेंगे, उन्हें मालूम तक नहीं कि मैं आ गई हूँ। बहुत रोकने पर भी मन न माना। धीरे से उसने दरवाजा खोलकर झांका तो कमरा खाली देखकर सन्न रह गई। जो बंद कमरा उसके कौतूहल का विषय बना था, वह खाली था। अब तो अनगिनत प्रश्न उसके मन में कौंध गये। यदि मेरे पतिदेव कमरे में नहीं हैं, तो फिर है कहाँ?क्यों सब मुझसे झूठ बोल रहे हैं। आखिर सब लोग मुझसे छिपा क्यों रहे हैं?सुमन इसी ऊहापोह में थी कि पति ने घर में प्रवेश किया। सुमन शीघ्रता से पास गई और पाँव छूकर कहा–आप कहाँ थे, आपकी तबियत कैसी है?माँ ने तो बताया कि आप दवाई खाकर सो रहे हैं, उन्हें न जगाना। इसलिए मैं.... पति ने बीच में ही कड़क आवाज में रोका–चुप। मुँह क्या खोला कि सवाल पर सवाल किये जा रही। इतनी पूछताछ तो मेरी माँ नहीं करती और तू कौन होती है, कहाँ गये थे, कब गये थे, पूछनेवाली?कहते हुए वे अपने कमरे में चले गये। सुमन सहम सी गई। उसका सुन्दर मन कुम्हला सा गया। फिर भी स्वयं को संभालते हुए अपनी ही गलती मानी, सोचा शायद मैं अचानक कुछ ज्यादा ही बोल पड़ी, इसीलिए उन्हें गुस्सा आ गया। चलो, कोई बात नहीं, आज रात को प्यार से मना लूँगी। रात को फिर उसे ननद के कमरे में ही सोना पड़ा। वह पति से मिलने को बेचैन थी। स्वयं को वह रोक नहीं पा रही थी तो वह चुपके से पति के पास जाने के लिए उठी, पर ननद ने टोककर पूछ दिया–क्या बात है भाभी जी! कुछ चाहिए था क्या?कुछ नहीं, कहकर वह चुपचाप अपने स्थान पर लेट गई। उसे रात को कई बार उठकर जाना चाहा, पर हर बार ननद ने टोक लगा दी। तब उसे लगा कि ननद उसकी पहरेदारी कर रही है। सुबह हुई तो फिर घर के कामों में लगा दी गई। बस ऐसे ही दिन और रातें बीतने लगीं। दिनभर की थकान के बाद भी उसे रात को नींद नहीं आती। कभी वह अपनी वर्तमान स्थिति पर आँसू बहाती तो कभी अतीत में खोती चली जाती। वह मिलन की पहली रात उसके जहन में जिंदा हो लेती। सब कुछ उसकी आँखों के सामने मानो हू–ब–हू चित्रित होने लगता। उस रात की प्यार भरी वह सौगात उसे अंदर तक गुदगुदा देती। कितना प्यार कितना अपनापन कितनी खुशियाँ। पति का पहला आलिंगन याद कर उसे लगता जैसे सारा संसार सिमटकर उसके आंचल में समा गया हो और अगले ही क्षण वह खुद को अकेला पाती। प्रसन्नता के भाव अचानक ही शून्य में विलीन हो जाते। तब उसे लगता है सारा संसार उदास है और उसकी आँखों में आँसू बादलों की तरह मड़राने लगते। वह सोचती ही क्या उन्हें वह मिलन को अधीर हूँ, वैसे ही उनका मन मुझसे मिलने को व्याकुल क्यों नहीं हो उठता?क्या वह रंगीन रात एक छलावा थी?पर क्यूँ आखिर मेरा कुसूर क्या है?यह सारी बातें वह स्वयं से करती रहती उसकी व्यथा सुनने समझने वाला वहाँ कोई न था। अनगिनत प्रश्न उसके मन में उमड़ते–घुमड़ते रहते, लेकिन एक प्रश्न का भी उत्तर उसे

नहीं सूझता।

अब तो उसका दिन–रात के इंतजार में बीतता कि क्या पता आज की रात उनसे मिलन की रात हो जाए और रात सुबह होने के इंतजार में बीतती कि शायद आज वह मुझे प्यार से निहारे। बस इसी तरह दिन और रात बीतने लगे। पर एक मिलन की आस उसे हर संभव समझौता करने के लिए विवश कर रही थी। वह कुछ भी सहने को तैयार थी, बस उसे अपने पति के प्यार की चाह थी, जो कि उसके नसीब में नहीं था। घर में केवल दादी माँ ही उससे ठीक से बात करती थी,बाकी सब या तो बोलते ही नहीं और यदि बोलते तो झिड़की देकर। एक दिन दादी को अकेला पाकर सुमन ने पूछा कि घर के सभी सदस्य मुझसे क्यों असंतुष्ट हैं, कोई मुझसे बात क्यों नहीं करता?दादी भी दबे शब्दों में आधी अधूरी ही बात बता सकी कि तुम्हारे बाबूजी ने दहेज की पूरी रकम नहीं दी, इसीलिए तुम्हें इतने दिनों तक मायके में रहना पड़ा और जब खुद से आ गई हो तो कोई तुम्हें स्वीकार नहीं रहा। पर पिताजी के लिए और दहेज दे पाना संभव नहीं है। सुमन ने दुखी मन से कहा कि मेरे विवाह में पिताजी ने अपनी हैसियत से दुगुना सामान दिया, वे और भी देना चाहते थे, परन्तु भाई की पढ़ाई और छोटी बहन के ब्याह की जिम्मेदारी की वजह से वह विवश है। इसका मतलब यह तो नहीं कि मुझसे नाता तोड़ लिया जाए। सुमन हतप्रभ थी कि दहेज के कारण मेरे पति ने मुझे अपने से दूर रखा और वजह तक न बताई। यह कैसा उनका प्यार है, जिसे चंद पैसों ने रोक दिया। वह अपने पति तथा परिवारवालों के इस ओछी सोच और दुर्व्यवहार से बहुत आहत हुई। मन में आया कि वापस घर चली जाऊँ पर कैसे चली जाती पिया मिलन की आस ने उसे रोके रखा। अगले ही दिन पिताजी को पत्र लिखकर सारी बात बताई और बाकी रकम देने का आग्रह किया। सुमन अपने नाम के अनुरूप ही सुन्दर मनवाली सहज और सरल भी थी और पति के प्रेम की प्यासी भी।उसने सोचा कि यदि पिताजी पूरी रकम दे जायेंगे, तो वह अपने पति का सान्निध्य पा सकेगी। बाबूजी और दहेज दे पाने में असमर्थ थे, फिर भी बेटी का भविष्य बिगड़ता देख बड़ी ही मुश्किल से पैसों की व्यवस्था करके बाकी रकम भी दे गये।

आज सुमन बहुत प्रसन्न थी, उसके मन में पिया मिलन की आस जो जाग उठी थी। उसे लगा कि मेरे और उनके बीच की अड़चन समाप्त हो गई। इन्हें दहेज की पूरी रकम मिल गई। अब तो इनकी सारी शिकायतें दूर हो गयी, अब हम दोनों एक होकर रहेंगे। वह आत्मविश्वास से भर गई और अपने पिया से मिलने की तैयारी में लग गई। आज उसे सजने सँवरने में कोई कसर न छोड़ी। हाथों में लाल चूड़ी, माथे पर टिकुली कान में झुमके नाक में नथुनी, पैरों में पायल। हर अंग को उसने प्यार से सजाया। लाल जोड़े में वह नई नवेली दुल्हन सी लग रही थी। उसके चेहरे पर आज अनोखी चमक तथा मन में तीव्र उमंग थी। वह शीशे में स्वयं को देखकर शर्म से सुर्ख हुई जा रही थी। वह बार–बार खुद को निहारती कि कहीं कोई कमी तो नहीं रह गई। वह प्रयासरत थी कि जब वह मुझे देखे तो अवाक् रह जाए और मेरे सौंदर्य में ऐसे डूबे कि फिर कभी निकल ही न पाये। आज वह ननद के पास न जाकर अपने पति के कमरे में शान से बैठी थी। बार–बार उठकर दरवाजे से झाँक रही थी। आज उससे देरी सही नहीं जा रही थी। जरा सी आहट होती तो वह हया से सिकुड़ जाती, उसे लगता कि वह आ गये। उनकी मौजूदगी न पाकर उदास हो जाती। इंतजार के अतिरिक्त कोई दूसरी राह भी तो नहीं थी। इसी तरह पूरी रात वह ताकती रही पर पति का पदार्पण न हुआ। रात का अंधेरा तो छटने लगा पर उसके हृदय में घनघोर अंधकार छाने लगा। उसका खिला चेहरा मुरझाने सा लगा तथा सौंदर्य का आभामंडल क्षीण होने लगा। जो आँखें प्यार बरसाने को उतावली थी उनसे आँसुओं की बरसात होने लगी। उसका हृदय जो अबतक उसके बस में नहीं था, अब व्यथित, शांत तथा खुद से छला–सा महसूस कर रहा था। सुमन एक बार फिर बिना आवाज की चोट से लहूलुहान हो गयी थी। जब से वह ससुराल आई थी, हर रोज अपमान के घूँट पी पीकर रह जाती थी। पर आज इस अपमान से वह तिलमिला उठी थी। बाहर चहल–पहल सुनकर वह अनमने मन से उठी और अपने जिन हाथों से उसने स्वयं को सजाया था, उन्हीं हाथों से मिटाने लगी। आज उसने तय कर लिया कि अब वह और न सहेगी।

बहुत चुप रह लिया, अब और चुप नहीं रहूँगी। आज वह जिस समय भी आयेंगे मैं उनसे अपने हर सवाल का जवाब लेकर रहूँगी। अब तो मेरे पिताजी ने देहज भी पूरा दे दिया है। फिर क्यों वह मुझसे अलग–थलग हैं?आखिर उन्हें मुझसे क्यों अलगाव हो गया है। क्या कमी है मुझमें?मुझे तो उन्हीं ने पसंद किया था और कहा भी था कि यदि संसार में कुछ सुंदर है तो वह सिर्फ तुम हो। मैं तुम्हारा साथ पाकर धन्य हो गया हूँ। परन्तु ऐसा क्या हो गया कि वह मुझे देखना तक नहीं चाहते?सुमन ऐसी ही अनेक बातों में उलझी हुई थी कि किसी के तेज कदमों की आहट ने उसका दिल धड़का दिया। अगले ही क्षण पति को सामने खड़ा देख वह हतप्रभ हो गयी। पति के साथ एक बांकी छोरी थी जो कि नैन नक्श से काफी आकर्षक थी, पूरी सजधज के साथ मांग में सिन्दूर और गले में मंगलसूत्र भी पहने थी। पति ने उसका हाथ बड़ी मजबूती से पकड़ रखा था। सुमन कुछ समझ पाती या कोई प्रश्न कर पाती, इससे पहले ही पति ने सारी स्थिति को स्पष्ट कर दिया। उसने सुमन से बताया कि जब तुम्हारे घर से दहेज के बचे पैसे देने की कोई खबर नहीं आई, तब मुझे लगा कि वह लोग तुम्हें वहीं रखना चाहते। इसी बीच यह (लड़की की ओर इशारा करते हुए) मेरी जिंदगी में आ गई। मैंने इससे विवाह कर लिया, अब यह ही मेरी पत्नी है। मैं तुम्हें अपनी पत्नी नहीं मानता। मैंने वर्षों पहले ही तुम्हारा परित्याग कर दिया। तुम चाहो तो यहाँ रहो और न रहना चाहो तो अपने बाबूजी के पास चली जाओ। ऐसा कहकर वे दोनों तेज कदमों से अपने कमरे में चले गये। सुमन काफी समय तक एक ही जगह पर बैठी अपने चारो तरफ सन्नाटे को एकटक निहारती रही। आज उसने मिलन की आस छोड़ दी।

लघुकथा

सीमा

–सविता मिश्रा 'अक्षजा'
हिलहाउस खंदारी अपार्टमेंट खंदारी, आगरा
9411418621

''माँ ऐसे गुमसुम बाहर क्यों बैठी हैं?चलिए अंदर टीवी पर आपका पसंदीदा नाटक आ रहा है।''

''क्या नाटक देखूँ बहू, घर में ही नाटक होता देख रही हूँ।''

''कहना क्या चाह रही हो माँ?'' बहू जरा नजर रख अंशुल पर। कहीं मेरी तरह तेरी तकदीर में भी अकेलापन न लिख दिया जाए।''

''माँ, आप भी अपने बेटे पर शक कर रही हैं और कल सब्जी लेते समय सुमन भी कुछ ऐसा ही संकेत कर रही थी।''

''ठीक कह रही हूँ बहू, छूट देने का खामियाजा खुद भुगती हूँ। अब वही दुःख तुझे भी भुगतते नहीं देख सकूँगी।''

''जी माँ, आप चिंता न करें।'' सामने से अंशुल को आता देख मुस्कुराहट की चादर ओढ़ ली। अंशुल के कमरे में आते ही कुसुम ने प्रश्नों के बौछार उसपर शुरू कर दी। अंशुल बड़ी चालाकी से हर प्रश्न का उत्तर साफ गोई से देकर बचता रहा। कुसुम के सिर की कसम खाकर अंशुल ने कहा–तुम्हें धोखा देने की तो मैं सपने में भी नहीं सोच सकता।''

कुसुम को विश्वास हो गया अंशुल कुछ नहीं कर सकता। फिर भी माँ की बात उसके दिल में खटक रही थी। बच्चे का क्रंदन भी ना सुन पाई। अंशुल ने कहा–''अब तो सब क्लियर हो गया, फिर भी क्या सोच रही हो?''

वह चुपचाप अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए दरवाजे की तरफ पीठ कर बैठ गयी।उसने पीठ किया ही था कि कामवाली के पायल की आवाज गूंजी। अंशुल भी दबे कदम कमरे से बाहर चला गया, उसने रसोई में जाकर कामवाली का हाथ पकड़ा ही था कि दरवाजे पर खड़ी कुसुम को देख घबरा गया।

कुछ समय बाद माँ अंशुल के घावों पर हल्दी लगाते हुए बोली–''कहा था न, बाप की राह पर मत चलना।मैं कमजोर थी, पर बहू नहीं।''

कविता :

–रुचि भल्ला

अंजाम न जाने क्या होगा

बिके जहाँ ईमान वहाँ नीलाम न जाने क्या होगा
मजबूर हुए बिकने को, उनका दाम न जाने क्या होगा
जहाँ पेट में आग लगी है, अति–आँत में ऐंठन है
भूख ज्वाल से झुलस गया, वह चाम न जाने क्या होगा
नायाब हुस्न भी तो अभाव में रोटी से तौले जाते
जहाँ विवशता इस हद तक, बदनाम न जाने क्या होगा
जहाँ निठल्ले अगणित ऐसे, नहीं काम से तलब है
ऐसे बैठे ठाले उनका, काम न जाने क्या होगा
बढ़ी आबादी की सुरसा मुँह फैलाये खड़ी जहाँ
नहीं भगाई गई अगर परिणाम न जाने क्या होगा
आजादी की अंगुरी तो रखा नहीं आवाम जहाँ
दूर रहे हमेशा होठों से वह जाम न जाने क्या होगा
यंत्र छलावा मात्र स्वार्थ है सस्ती और रुग्न व्यवस्था है
प्रज्ञा किंकर्तव्यविमूढ़ जहाँ परिणाम न जाने क्या होगा
बिके जहाँ ईमान वहाँ नीलाम न जाने क्या होगा
मजबूर हुए बिकने को उनका दाम न जाने क्या होगा।

जिंदगी

खोजने से मौत को खुलती है जिंदगी
लेके सहारा मौत का बढ़ती है जिंदगी
मौत में ही तो छिपा नवरूप जिंदगी का
मौत की ही गोद में पलती है जिंदगी
मरता रहा हर पल वही डरता जो मौत से
हारता है हिम्मत जभी रुकती है जिंदगी
जीता जो संशय में सदा पीड़ित रहा करता
शांति तो मिलती नहीं खलती है जिंदगी
सीखते मरना सही वही जीते हैं शौक से
खुशनुमा उनको बहुत लगती है जिंदगी
कर्म जो तजता नहीं वो बँधता नहीं कभी
साधक जो ऐसा है उसे जँचता है जिंदगी
धुंध जो अज्ञान का वह मौत से कुछ कम नहीं
धुंध यह फटता तभी खिलती है जिंदगी
खोजता भीतर 'सखा' गहरा जो पैठ कर
खुलती नजर जिसकी उसे मिलती है जिंदगी।

इरादा

इरादे की ऊँचाई से सारे जहाँ को देख
इरादे नेक तो फिर सारा जहाँ है नेक
इरादे के आईने में झाँको तो दिखेगी
तस्वीर जिंदगी की जीवन का अभिलेख
कितने को नये रंग में रंगता है इरादा
कितने को नये ढंग से गढ़ता है इरादा
पक्के है इरादे तो मन पर लगाम है
हर काम भरोसे का करता है इरादा
आगे बढ़े कदम कहते सना ऐसा
आगे बढ़ कदम क्या बढ़ता है इरादा
पर्वत पे चढ़े पाँव कहते यही कितने
पर्वत पे चढ़े पाँव क्या चढ़ता है इरादा
दुश्मन से लड़े हम ऐसा ही कहा जाता
दुश्मन से लड़े हम क्या लड़ता है इरादा
किस काम का वह आदमी हिम्मत नहीं जिसमें
काँपता है आदमी जब हिलता है इरादा
जिसमें लगन उत्साह वो बेखौफ बढ़ता है
रुकता है आदमी जब थकता इरादा
ऊँचे हैं इरादे तो उठता है आदमी
गिरता है आदमी जब झुकता है इरादा
इरादे हैं नेक तो फिर दिखता है इरादा
पक्के हैं इरादे तो मजबूत आदमी
जीवन में रंगों मस्ती भरता है इरादा
जिसका बुलंद हौसला लड़ता है पति से
मरता है आदमी जब थकता है इरादा
कितनों को नये रंग में रंगता है इरादा
कितनों को नये ढंग से गढ़ता है इरादा

अनिला राखेचा
कोलकाता–9051806915

1. कोरे कागजों संग

कोरो कागजों संग मैं जिंदगी बाँट रही हूँ
कलम की स्याही से खुद को आँक रही हूँ
परत दर परत लगी तहे कागजों की
साल दर साल बीती उमर जिंदगी की
कुछ कड़वी चुभती कुछ दर्दीली डसती
है अति खतरनाक वारदातें जिंदगी की
मगर कुछ हसीन अप्सराओं से भी है
ख्वाब सजीले सौगातें बातें जिंदगी की
उन्हीं में अपने जीने का मकसद साध रही हूँ
अक्षर–अक्षर मन की बातें शब्द शब्द सब साथी
मेरे गम में रोती हर पंक्ति खुशी में मेरे मुस्काती
कुछ आँधी सी उड़ आती है, कुछ शर्माती सी है जाती
कुछ सुस्ती से कुछ तेजी से तुम तक जाने की राह बनाती
अब तो रितु त्योंहार जुड़े इसी से जुड़ा मरना और जीना
उड़ते उड़ते पहुँचेगा कभी तुम तक भी कोई पन्ना
इसी आस में पन्ने दर पन्ने कदम नाप रही हूँ
कलम की स्याही से मैं खुद को आँक रही हूँ।

2. दिल की मरम्मत

सुन रहे तो तुम यह आवाज
यह दिल धड़कने की नहीं
भीतर दिल की दीवारों की
मरम्मत हो रही है
जिंदगी तुम आओगी
यह जान वहाँ भी
तुम्हारे स्वागत में
एक नई हरकत हो रही है
भेजा जा रहा है चुन चुनकर
केवल मीठे ख्वाबों को ही
और खुशनुमा ख्यालों की
लड़िया पिरो ली गयी है
न जाने कितने एहसास आ रहे हैं
न जाने कितने एहसास जा रहे हैं
मगर हर बात तुम से ही शुरू
तुम पे ही खत्म हो रही है
आज दिल ने खोल रखा है
इक–इक झरोखा अपना
न जाने किस झरोखे से
दिखला दो तुम हमको
वह मासूम चेहरा अपना
रुक गया है वक्त यह
सिर्फ दुनिया चल रही है
बदले हैं कालखंड और
जिंदगी बदल रही है
चलो आज हम तुम चले
उन पलों को ढूंढने
धड़कनें जिस वक्त को
जीने को मचल रही है
अब हर बात तुमपे ही शुरू
तुमपे ही खत्म हो रही है

कवीता

ईमानदारी

कृष्णमोहन सिन्हा 'किसलय'
बड़ी पोस्टऑफिस के नजदीक
भागलपुर 8051421801

ईमानदारी के बँटवारे हुई कुछ इस कदर
जमीन दीवार छत मिट्टी सब बँट गये
नजदीक रहकर भी दूर कर गये
माँ बँट गई बाप बँट गये
भाई पर भाई के जो नजर थी
नजर से भाई की नजर हट गयी
बसर करने लगे बीबी बच्चों के संग वो
वक्त के संग फिर उनके वक्त बँट गये
हम राह न हम सफर कोई भी नहीं
घर अपना बनाये थे और खुद हट गये
ईमानदारी बँटवारे में अब हो गई इतनी
इधर मैयत उठी इनकी उधर किवाड़ सट गई

अंजनी कुमार शर्मा
सुलतानगंज, भागलपुर
7549599367

ग़ज़ल

जोश में

जोश में ही होश खोकर वो समर्पित हो गये
चोट खाकर घात से तब पूर्ण परिचित हो गये
भद्रता से जो किया करते सामाजिक काम को
समझिए वह आदमी हर तरफ वर्जित हो गये
बादलों को देखकर खुश हो गये मजदूर सब
बिन पटाये ही सभी अब खेत सिंचित हो गये
प्रेम श्रद्धा अगर है तो देवताओं से हमें
देखकर ही समझ लो फूल अर्पित हो गये
चोट पड़ती अंजनी को अब धरा की मार से
महल पर महल नदियों में जब विसर्जित हो गये।

गज़ल

जिगर के जख़्म

बच्चू चौधरी अकेला
मो० 8936090887

समन्दर है मुनव्वर और पानी तिलमिलाता है
पनाहों में लिये चाँदनी तो छटपटाता है
करोज़ाँ रात भर होकर रहा है इश्क़ में खोया
सुबह जब हो गयी तो देखिये आँसू बहाता है
जमीं को देखकर रानाइयाँ ये मुज़्तखि रहता
अगर तूफाँ नहीं आता सुनामी को बुलाता है
छुपाये है बहुत गहराइयाँ औ आँधियाँ दिल में
चला जब ना खुदा कि़श्ती लिये उसको डुबाता है
फ़लक पे कहकशाँ औ चाँद सूरज गुफ़्तगू करते
निगलने के लिए ये रात–दिन आफत मचाता है
करोड़ों मर गयी हैं मछलियाँ ज़िन्दा नहीं कोई
ज़हर को घोलकर अंदर समन्दर मुस्कुराता है।

2
जिगर के जख़्म में है दर्द लाखों शल चुभते हैं
चलें जितने नज़र से तीर उनसे घाव भरते हैं
दिखा देंगे अभी हम चाँक कर सोना तो देखोगे
लहू की बाढ़ में उनकी जफा के ख़ार बहते हैं
बहायें अश्क़ आँखों से कभी सीखा नहीं हमने
निगाहों में छुपा महबूब की तस्वीर रखते हैं
खुदा है इश्क़ औ पूजा इबादत इसलिए आशिक़
बने हम याद में खोये सनम के पास रहते हैं
नज़र इक बार भी जिनकी नज़र से मिल गयी वे तो
उठी जो टीस सहलाकर कलेजा घुट के मरते हैं
हमारे जिस्म में दिल का चमन सूखा नहीं क्यूँ के
उसी दिल में मुहब्बत औ वफा के फूल खिलते हैं
खड़े हम राह में सदियाँ बिताईं वे नहीं आयें
उन्हीं की जुस्त–जू में हम चराग़ाँ रोज़ करते हैं।

मधु प्रसाद,
कलोल महेसाणा राजपथ
चांदखेड़ा अहमदाबाद–382424

आस्था लगी है कंपने

आँधियों को देख सम्मुख
हम लगे विस्तार नपने
रेत से जलते पलों को
सौंपकर कुछ मृदुल सपने
वक्त के बटमार मिलकर
जाल कुछ ऐसा बिछाते
पंख वालों के बराबर
पंख हीनों को बिठाते
धैर्य उड़ना भूल जाता
आस्था लगती है हंपने
जब कभी आलाप साधा
पकड़ कुछ रूठी लगी थी
छन्द बेपरवार से थे
ताल कड़वाहट पगी थी
तार सप्तक तक पहुँचकर
ज्यों लगे थे साज कंपने
धूप वाले उन दिनों में
द्वार तक सीलन जमी थी
नेह में जाला पड़ा था
और ममता में कमी थी
हाय! चंदन की व्यथा से
कुँज भी लगते हैं तपने
प्यास क्यों बुझती नहीं है
पूछती नदियाँ लहर से
घाट पर संवदेनाएँ
कसमसाईं दोपहर से
गुप्त गाथाएँ प्रणय की
भेजती क्यों अश्रु छपने।

सुसंभाव्य
प्रिंटिंग प्रेस, भागलपुर

designed by : birjoo kumar, bgp # 9771512533